नेशनल बेस्टसेलर

ज़िंदगी वो जो आप बनाएं

प्यार, आशा और
विश्वास की ऐसी कहानी
जिसने नियति को भी हरा दिया

प्रीति शेनॉय

अनुवाद : शुचिता मीतल

यात्रा

VISIT…

नेशनल बेस्टसेलर

ज़िंदगी वो जो आप बनाएं

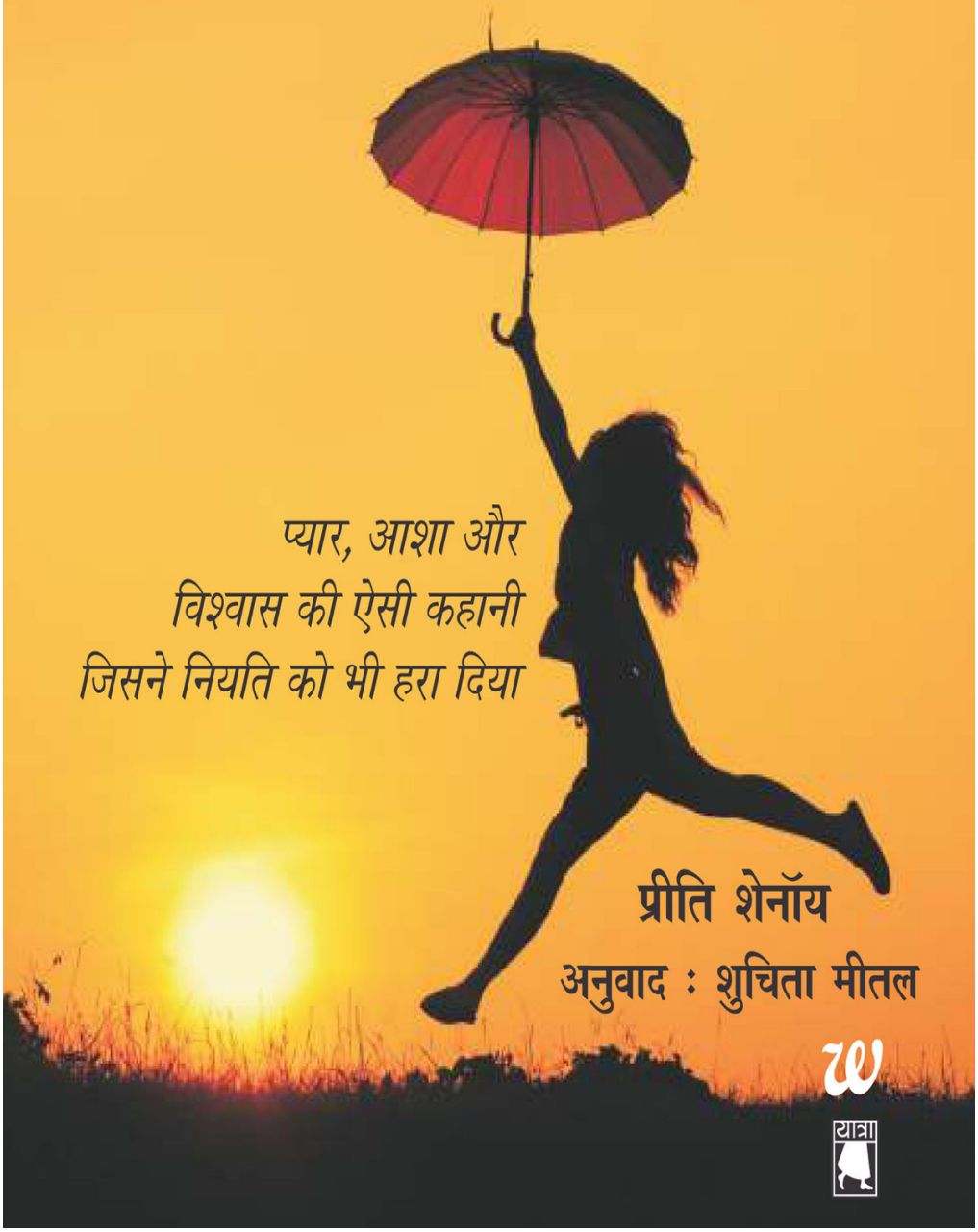

प्यार, आशा और
विश्वास की ऐसी कहानी
जिसने नियति को भी हरा दिया

प्रीति शेनॉय

अनुवाद : शुचिता मीतल

यात्रा

ज़िंदगी वो जो आप बनाएं

प्रीति शेनॉय का शुमार भारत के सबसे ज़्यादा बिकने वाले लेखकों में किया जाता है (स्रोतः नीलसन सर्वे)। आप *फ़ोर्ब्स इंडिया* की सबसे प्रभावशाली शख़्सियतों की सूची में भी हैं।

इंडिया टुडे ने बेस्ट सैलिंग लीग में एकमात्र महिला के तौर पर आपको अनूठा क़रार दिया है। पूर्व में आपने *टाइम्स ऑफ़ इंडिया और रीडर डाइजेस्ट* सरीखे प्रकाशनों के लिए भी लेखन किया है। वर्तमान में आप *द फ़ाइनेंशियल क्रॉनिकल* में नियमित कॉलम लिखती हैं।

आपने आईआईटी एवं आईआईएम जैसी कई शैक्षिक संस्थाओं में अनेक वार्ताएं भी प्रकाशित की हैं। आप चित्रांकन में महारत प्राप्त कलाकार भी हैं। यात्रा, फ़ोटोग्राफ़ी एवं योग आपकी अन्य अभिरुचियां हैं।

शुचिता मीतल कई वर्षों से अनुवाद कार्य से जुड़ी हुई हैं।

ज़िंदगी वो जो आप बनाएं

प्यार, आशा और विश्वास की ऐसी कहानी
जिसने नियति को भी हरा दिया

प्रीति शेनॉय

अनुवाद
शुचिता मीतल

यात्रा बुक्स

वैस्टलैंड लिमिटेड

61 , द्वितीय तल, सिल्वरलाइन बिल्डिंग, अलपक्कम मेन रोड, मदुरावोयल, चेन्नई-600095

93 , प्रथम तल, शाम लाल रोड, दरियागंज, नई दिल्ली-110002

अंग्रेज़ी का प्रथम संस्करणः सृष्टि पब्लिशर्स एंड डिस्टिब्यूटर्स, 2010

हिंदी का प्रथम संस्करणः वैस्टलैंड लिमिटेड, यात्रा बुक्स के सहयोग से, 2015

कॉपीराइट © प्रीति शेनॉय, 2010

सर्वाधिकार सुरक्षित

10 9 8 7 6 5 4 3 2 1

आई.एस.बी.एनः 978-93-84030-79-7

प्रीति शेनॉय दृढ़तापूर्वक अपने नैतिक अधिकार व्यक्त करती हैं कि उनकी पहचान इस पुस्तक के लेखक के रूप में हो।

यह पुस्तक इस शर्त पर विक्रय है कि प्रकाशक की लिखित अनुमति के बिना इसे व्यावसायिक अथवा अन्य किसी भी रूप में उपयोग नहीं किया जा सकता। इसे पुनः प्रकाशित कर बेचा या किराए पर नहीं दिया जा सकता। इसका जिल्दबंद या खुले या किसी भी अन्य रूप में इस्तेमाल नहीं किया जा सकता। ये सभी शर्तें पुस्तक के खरीदार पर भी लागू होगीं। इस संदर्भ में सभी प्रकाशनाधिकार सुरक्षित हैं। इस पुस्तक का आंशिक रूप में पुनः प्रकाशन या पुनः प्रकाशनार्थ अपने रिकॉर्ड में सुरक्षित रखने, इसे पुनः प्रस्तुत करने, इसका अनूदित रूप तैयार करने अथवा इलैक्ट्रॉनिक, यांत्रिकी, फोटोकॉपी और रिकॉर्डिंग आदि किसी भी तरीके से इसका उपयोग करने हेतु समस्त प्रकाशनाधिकार रखने वाले अधिकारी और पुस्तक के प्रकाशक की पूर्वानुमति लेना अनिवार्य है।

सतीश, अतुल और पूर्वी के लिए,
उनके बिना मैं कुछ नहीं हूं।
डैड और मॉम के लिए जो मुझे शक्ति प्रदान करते हैं।
मेरे सबसे करीबी मित्रों अजय और चौरिसा के लिए
जो मुझे जस का तस स्वीकार करते हैं।

विषय-सूची

1 एक नई दुनिया
2 कोई रोक सके तो रोके
3 इलेक्शन-विलेक्शन
4 मोटरसाइकिल पर सवार एक लड़की
5 ज़िंदगी वो जो आप बनाएं
6 प्यार का मौसम
7 पल में बदल जाती है किस्मत
8 उड़ने के लिए तैयार
9 प्यार कभी कम न करना
10 आगे ही आगे
11 मस्ती के पल
12 ज़िंदगी में उतार
13 कुछ पल का साथ
14 ज़िंदगी फिसलती रेत
15 गहरा अंधेरा
16 स्याही के धब्बे
17 रोशनी बुझ गई
18 अंतिम प्रस्थान की ओर
19 बंद गली
20 उम्मीद की नन्ही सी किरण
21 विश्वास में बहुत ताक़त है
22 एक बार में एक क़दम
23 मेरा भाग्य मेरे हाथ में है।
उपसंहार पंद्रह वर्ष बाद—आख़िरकार क्या हुआ
लेखकीय टिप्पणी

अजेय

विलियम अर्नेस्ट हेन्ली

एक छोर से दूसरे छोर तक पाताल सी काली
इस रात में जो मुझे ढांपे हुए है,
अपनी अजेय आत्मा के लिए
मैं अनदेखे देवताओं का आभारी हूं।

हालात के भयानक शिकंजे में
मैं न सहमा, न चीखा।
किस्मत के घोर थपेड़ों से
मैं लहूलुहान हो गया, मगर झुका नहीं।

आंसुओं और रोष से भरी इस जगह के पार
मौत की भयावहता फैली है,
पर फिर भी काल की घुड़कियों ने
मुझे निर्भय पाया है और निर्भय ही पाएंगी।

मोक्ष का द्वार चाहे जितना संकरा हो,
राह में चाहे जितनी मुश्किलें हों,
अपनी नियति का स्वामी मैं हूं!
अपनी आत्मा का खेवैया मैं हूं।

प्राक्कथन

डॉक्टर के ऑफ़िस के बाहर कुर्सी पर बैठी मैं अपनी बारी का इंतज़ार कर रही हूं। वास्तव में, मनोचिकित्सक के ऑफ़िस के बाहर। तथाकथित विशेषज्ञ के। इस मुलाक़ात के लिए हम मुंबई से बंगलौर आए हैं। यहां अपॉइंटमेंट पाना वैटिकन सिटी में पोप के साथ अपॉइंटमेंट पाने जैसा है। मैं नहीं जानती वहां अपॉइंटमेंट लेने के लिए कितने महीने इंतज़ार करना पड़ता है। मुझे बताया गया है कई महीने। यहां समय लेने के लिए डैड को बहुत जोड़-तोड़ बिठानी पड़ी थी। आख़िरकार उनके सबसे पुराने दोस्तों में से एक ने किसी तरह अपॉइंटमेंट दिलवाया। यह भारत के सर्वश्रेष्ठ मानसिक स्वास्थ्य सेवा केंद्रों में से एक है। या कम से कम मुझे ऐसा ही बताया गया है। शायद ऐसा है भी। सारी मैगज़ीन और अख़बार जैसे इसी की बात करते हैं और मानसिक स्वास्थ्य से जुड़े किसी भी मसले पर इसके विशेषज्ञ डॉक्टरों को उद्धृत करते हैं।

यहां तक का रास्ता ही मनहूसियत भरा लगने लगा है। सड़क किनारे खड़े बड़े-बड़े पेड़, जिनकी शाखाएं पूरी सड़क को ढककर एक अजीब उदास सा माहौल बना रही हैं, हमारी किराए की कार आगे बढ़ रही है, और मेरी इच्छा होती है कि मैं उतरूं और भाग जाऊं। लेकिन मैं ऐसा कुछ नहीं करती। मैं बैठी अपने आसपास के माहौल को देखती रहती हूं। एक नीले रंग के बोर्ड पर सफेद अक्षर मानसिक स्वास्थ्य संस्था के नाम का ऐलान कर रहे हैं, जो दस एकड़ के विशाल कैंपस में फैला हुआ है, और जो धुंधलाते पीले पेंट वाली पुरानी इमारतों, गंदे गलियारों, पेड़ों, झाड़ियों, एक कैफेटीरिया और बीसियों ऐसी गाड़ियों से भरा है जिनमें किसी उम्मीद की तलाश में रोगी अपने परिवारों के साथ आए हुए हैं। मेरे अंदर कोई उम्मीद नहीं बची है। मेरे अंदर सिर्फ मायूसी और लगातार बढ़ती निराशा की भावना है।

हम एक बड़ी सी इमारत के पास से गुजरते हैं जिस पर लगा एक बोर्ड बता रहा है कि यह किसी किस्म का गैस्ट हाउस है। मैं यहां भी उखड़ते पेंट को देखती हूं। कार दूसरी इमारतों के पास से गुजरती है, मनोरोग वार्ड, हताहत व आपातकालीन सेवाएं, नशामुक्ति केंद्र, जनरल वार्ड, निगरानी वार्ड, और आंतरिक रोगियों के लिए यूनिट नाम की कुछ धुंधले पीले रंग की कुटियां। ये किसी भी दूसरे अस्पताल जैसा लग रहा है, और अगर आप ध्यान से बोर्डों और लोगों को न देखें, तो किसी भी बात से ऐसा नहीं लगता कि यह कोई मानसिक अस्पताल है। मुझे इस सबसे चिढ़ हो रही है। यह मुझे एक प्रकार के भय से भर रहा है। मेरी जगह यहां नहीं हैं। मुझे यहां आना ही नहीं चाहिए था। लेकिन अब तो आ चुकी हूं, और मैं इस बारे में कुछ कर भी नहीं सकती।

ड्राइवर कार को पार्क करता है और हम एक बिल्डिंग में प्रवेश करते हैं जो कि एक बाहरी रोगी जांच खंड है। यहां सौ से ज़्यादा लोग और उनके परिवार हैं, और सब इंतजार कर रहे हैं। बहुत से लोगों के एक जगह इकट्ठा होने पर उनके बदन से निकलने वाली गंधों की मिलीजुली भभक मेरी नाक से टकराती है, और मैं अनायास ही अपनी सांस रोक लेती हूं। डैड काउंटर पर जाकर कछुए की गति से आगे बढ़ रही सर्पीली कतार में लग जाते हैं और मैं दरवाजे पर लगे बोर्ड को पढ़ने लगती हूं जिस पर मोटे अक्षरों में लिखा है:

"नेशनल मैंटल हैल्थ इंस्टीट्यूट में पहली बार आने वाले रोगियों से निवेदन है कि वे परामर्शचिकित्सा के लिए इस खंड में अपना पंजीकरण करा लें।

पंजीकरण रविवार व कुछ निश्चित अवकाशों के अतिरिक्त प्रतिदिन सवेरे 8:00 से 11:00 बजे के बीच किया जाता है।

कृपया कतार में रहें।"

मैं डूबते मन के साथ महसूस करती हूं कि रोगी से मतलब मैं हूं। मैं असहाय महसूस कर रही हूं। मैं खोया हुआ सा महसूस कर रही हूं। मैं ग़ुस्सा महसूस कर रही हूं।

और मुझे लगने लगता है कि यह मानसिक स्वास्थ्य संस्था वाली सारी बात ही बकवास है। महज प्रचार है। वे बस बकवास करते हैं और उन्हें जरा भी अंदाजा नहीं होता कि वे क्या कर या कह रहे हैं। मैं यहां नहीं होना चाहती। मैं किसी मनोचिकित्सक या डॉक्टर से नहीं मिलना चाहती। लेकिन अब मेरे चाहने न चाहने का कोई महत्व नहीं है। मुझे मौका मिला था जिसे मैंने बर्बाद कर दिया। अब मेरे पास इसके अलावा कोई रास्ता नहीं है कि मैं अपने माता-पिता की बात सुनूं और जो वे कहें वही करूं। यह नतीजा है आजाद होने की मेरी कोशिशों का। यह नतीजा है वयस्क होने की मेरी कोशिशों का।

मैं अपने माता-पिता के बीच बैठी हूं। मैं किसी बच्चे जैसा महसूस कर रही हूं, हालांकि मैं 21 साल की हूं। कम से कम तकनीकी रूप से। कुर्सी धातु की है और ठंडी महसूस हो रही है। मैं अपनी कलाई के निशानों को छिपाने की कोशिश करती हूं, और आदतन अपनी घड़ी के चौड़े से चमड़े के पट्टे को एडजस्ट करती हूं। जिज्ञासा भरी नजरों से, और उससे भी बदतर दया भरी नजरों से मुझे खीझ हो रही है। मुझे ये सब नहीं चाहिए। खासकर, आज तो नहीं। मुझे अपनी पिछली हरकतों पर कोई पछतावा नहीं है। मानसिक पीड़ा के मुकाबले शारीरिक पीड़ा को सहना कहीं ज़्यादा आसान है। ईमानदारी से कहूं तो अगर मुझे दोबारा मौका मिला, तो मैं फिर से वही करूंगी। मैं अपने पिता के चेहरे पर व्यथा और मां के माथे पर

लगातार मौजूद चिंता के भाव को देखती हूं, जो सड़क किनारे की दीवारों पर चिपकाए गए अनचाहे नोटिसों की तरह हैं। मुझे उनके लिए जरा भी दुख महसूस नहीं हो रहा है, हालांकि होना चाहिए था। मेरी यह इच्छा तक नहीं हो रही है कि इन भावों को पोंछ डालूं। मैं उन्हें दिलासा देना या बेहतर महसूस कराना भी नहीं चाहती। मैं असहाय हूं। देखभाल से परे हूं। मुझे जरा भी परवाह नहीं। मै चाहती हूं कि ये सब खत्म हो जाए। मैं अब और किसी डॉक्टर से नहीं मिलना चाहती। मैं इस सबसे थक चुकी हूं। यह डॉक्टर मुझे ऐसा क्या बताएगा जो दूसरे डॉक्टरों ने नहीं बताया है?

मुझे उन सबसे चिढ़ है। सारे डॉक्टरों से। वे कुछ नहीं जानते। मेरा चेहरा भावहीन है। मैं कोई भी जज़्बात महसूस करने में लाचार हूं। ऐसा लगता है जैसे मेरा दिल काठ का हो गया है। सड़ती, पकती लकड़ी जो मेरी अंतरात्मा को कचोट रही है और मुझे अंदर घसीट ले जाने की कोशिश में लगी है। हमेशा से सब कुछ ऐसा नहीं था। लेकिन वह तब था और यह अब है।

मैं बाहर अपनी बारी का इंतजार कर रहे दूसरे मरीजों को देखती हूं जिनकी तादाद कम से कम एक सौ साठ या शायद इससे भी ज़्यादा है। प्रतीक्षा कक्ष दरअसल पचास गुणा तीस फुट का एक लंबा गुफा जैसा हॉल है जहां एक के पीछे एक कतारों में लोहे की कुर्सियां लगी हुई हैं।

यह किसी रेलवे स्टेशन के प्रतीक्षा कक्ष जैसा लग रहा है और लगभग उतना ही भीड़ भरा भी है। एक कुर्सी पर एक आदमी अपनी टांगों पर बांहों को लपेटे लगातार आगे-पीछे झूल रहा है। लगभग मेरी उम्र की ही एक लड़की खाली-खाली निगाहों से बाहर देख रही है। “मैं तुम जैसी नहीं हूं। मैंने अपने कॉलेज में चुनाव जीता था। मैं आर्ट्स एसोसिएशन की सेक्रेटरी हुआ करती थी। मैं एक अच्छे बिजनेस स्कूल से मैनेजमेंट कर रही थी। मैं बिल्कुल भी तुम जैसी नहीं हूं।” मैं चिल्ला-चिल्लाकर उन सबसे यह कहना चाहती हूं। मैं उन्हें बताना चाहती हूं कि मैं कुछ हूं, कम से कम अपनी दुनिया में जहां कॉलेज है, घर है, दोस्त हैं, मस्ती है, फिल्में हैं—सामान्य दुनिया, न कि यह अस्पताल जहां वे लोग मदद लेने के लिए आते हैं जो जिंदगी से जूझ नहीं पाते हैं। मैं ‘शिक्षित’, श्रेष्ठ, ज्ञानी और स्मार्ट हूं। इस समय मैं जिस दयनीय और असहाय स्थिति में हूं, उसके कारण मेरा मन कर रहा है कि मैं साबित कर दूं कि मैं उन सबसे बेहतर हूं। लेकिन ऐसा लगता है जैसे किसी ने मुझे बोलने से रोकने के लिए मेरे मुंह में कपड़ा ठूंस दिया है। मैं कुछ भी बोलने में नाकाम हूं। दिमाग़ के किसी कोने में मुझे ऐसा भी लग रहा है कि शायद वास्तव में मैं उनसे किसी भी तरह बेहतर नहीं हूं। मैं कुछ नहीं हूं। मैं मात्र एक रोगी हूं, जो बीसियों दूसरे लोगों के साथ बस डॉक्टर से मिलने का इंतजार कर रही हूं।

मेरी नजरें अधेड़ उम्र के एक आदमी पर टिक जाती हैं जो अपने हाथ के अंगूठे को लगातार गोल-गोल घुमा रहा है। हवा रूखी, घुटन भरी और असह्य है। बाहर धूप है लेकिन यह छायादार जगह है। अंदर जो मनोचिकित्सक है वह मेरी जांच करके बताएगा कि आगे क्या करना है।

वह क्या जानता है? क्या वह मेरे दिमाग़ के अंदर झांक सकता है? क्या वह जानता है कि मैं किस दौर से गुजर रही हूं? क्या मैडिकल स्कूल दूसरों के दर्द को महसूस करना या दूसरे की जगह पर खुद होना सिखाता है? मैंने जितने भी डॉक्टरों से बात की है, उनमें से ज़्यादातर वैयक्तिक और भावशून्य थे। उन्हें ऐसा ही होने का प्रशिक्षण दिया जाता है। मुझे नहीं लगता कि यह डॉक्टर उन सबसे भिन्न होगा।

आखिरकार, नर्स मेरा रोगी नंबर पुकारती है। किसी को कतई परवाह नहीं कि मेरा नाम क्या है या मैं क्या हुआ करती थी। मैं अंदर जाने के लिए खड़ी होती हूं। मेरे माता-पिता भी खड़े होते हैं। डॉक्टर हमसे बात करता है। मेरे पिता मेरे 'लक्षण' बता रहे हैं। मुझे चिढ़ होने लगती है। मैं चिल्लाना चाहती हूं कि ऐसा नहीं है। लेकिन मैं नहीं चाहती कि वे सोचें मैं नियंत्रण से बाहर हूं। इसलिए खुद को बोलने से रोकने के लिए मैं अपने नाखून अपनी खाल में धंसा देती हूं। मैं दांत पीसते हुए सुनने लगती हूं। डॉक्टर मेरे डैड और मॉम को बाहर इंतजार करने के लिए कहता है।

फिर वह मुझे देखता है। वह भला लगता है। वह जवान है। वह दयालु दिखता है लेकिन मुझे बेवकूफ नहीं बना सकता। वह बस एक पेशेवर कमीना है जिसे मेरी जांच करने का पैसा मिलेगा। मैं सहयोग करने का फैसला कर लेती हूं। यही सबसे अच्छा रहेगा।

फिर वह सवाल पूछना शुरू करता है। मुझे अपनी जिंदगी में किसी का इस तरह से झांकना बिल्कुल पसंद नहीं है। फिर से इसी सबसे गुजरने से मुझे नफरत हो रही है।

वह अपने सामान्य सवालों से शुरुआत करता है। बचपन, स्कूल, कॉलेज। मैं बेजान ढंग से उसे देखती हूं। मेरी इच्छा उसे कुछ भी बताने की नहीं होती।

"देखो," वह कहता है, "मुझे ये सारी जानकारी यहां भरनी है। तुम खुद बताओगी या फिर मैं तुम्हारे माता-पिता से पूछूं?"

मैं फंसा हुआ सा महसूस करती हूं, मैं हताश, बेतहाशा नाराज और थका हुआ महसूस करती हूं। मेरा दिल करता है कि बस ये सब किसी तरह खत्म हो जाए।

इसलिए मैं जवाब देना शुरू कर देती हूं।

1

एक नई दुनिया

1989

3 जुलाई

कोचीन

डियर वैभव,

मुझे बेहद खुशी है कि तुम्हारा आईआईटी-डी में दाखिला हो गया है।

मां-बाप थोड़े ज़्यादा समझबूझ वाले क्यों नहीं हो सकते? मेरी कितनी इच्छा है कि मैं दिल्ली में पढ़ूं। अपने शैक्षिक रिकॉर्ड के साथ, मुझे यकीन है कि मैं आसानी से एलएसआर में एडमिशन पा सकती हूं। साथ में मस्ती करना कितना मजेदार होगा;

लेकिन मेरी मां मना करती हैं। डैड भी उनकी हां में हां मिलाते हैं, वे लोग चाहते हैं कि मैं यहीं पढ़ूं।

कॉलेज बहुत बुरा नहीं है। यह राज्य का सबसे अच्छा कॉलेज है, और सबसे पुराना भी। इसमें दाखिला मिलना बड़ी प्रतिष्ठा की बात होती है। मेरे माता-पिता हर किसी से शेखी मारते फिरते हैं कि मेरा दाखिला सेंट एग्निस में हो गया है। यह एक सप्ताह में शुरू हो जाएगा।

मुझे अपने स्कूल वाले गैंग की कमी खलती है। काश डैड ने यहां ट्रांसफ़र नहीं लिया होता। तो हम अभी भी साथ हो पाते।

अपना ध्यान रखना

अंकिता

1989

9 जुलाई

दिल्ली

डियरेस्ट अंकिता,

जिन चीज़ों को हम बदल नहीं सकते, हमें उन्हें स्वीकार करना ही पड़ता है। मुझे तुम्हारी बहुत याद आती है।

मुझे तुम्हारी चिट्ठी अभी मिली और मैं तुरंत ही जवाब देने बैठ गया हूं।

मेरा ओरियंटेशन कल है। मैं बहुत उत्साहित हूं! मुझे यकीन ही नहीं हो रहा है कि अब मैं एक आईआईटियन हूं! मुझे कैंपस, होस्टल, सब कुछ अच्छा लग रहा है।

मैंने तुम्हें फ़ोन करने की कोशिश की थी। लेकिन तुम्हारी मां ने फ़ोन काट दिया। लगता है मुझे तुम्हारी चिट्ठियों का ही इंतज़ार करना पड़ेगा। चिट्ठियां तुम्हारे पोस्ट करने के पांचवें दिन मेरे पास पहुंच पाती हैं। पांच दिन बहुत लंबे लगते है; लेकिन फिर भी कुछ नहीं से तो यह बेहतर ही है।

मुझे बताना तुम्हें अपना कॉलेज कैसा लग रहा है। मेरा ख़त पहुंचने तक शायद कॉलेज शुरू हो चुका होगा।

लव

वैभव

इंटरनेट या कंप्यूटर के आने से पहले हम हाथ से चिट्ठियां लिखते थे और डाकिए द्वारा उनके पहुंचाए जाने का बड़ी बेचैनी से इंतजार करते थे। ये बुनियाद जैसे मशहूर टीवी ड्रामों और चित्रहार जैसे कार्यक्रमों के दिन थे, जब टीवी का मतलब बस एक राष्ट्रीय चैनल हुआ करता था और जब वीडियो कैसेट रिकॉर्डर अभी भी प्रचलन में थे।

अब सोचने पर मुझे आश्चर्य होता है। यह देखते हुए कि मेरे माता-पिता कितने रूढ़िवादी, सख़्त और भारतीय थे, वे मुझे एक लड़के को चिट्ठियां लिखने देते थे जबकि मुझे घर पर लड़कों को बुलाने की या किसी लड़के के घर जाने की इजाजत नहीं थी चाहे मैं दूसरी लड़कियों के साथ ही क्यों न होऊं। जब बारहवीं कक्षा की बोर्ड परीक्षाओं के बाद चार लड़कों और तीन लड़कियों का मेरा ग्रुप फिल्म देखने और बाद में आइसक्रीम खाने के लिए जाने वाला था, तो मैं अकेली थी जिसे जाने की अनुमति नहीं मिली थी। शायद वे मुझे चिट्ठियां इसलिए लिखने देते थे कि कोई देखेगा नहीं, जबकि फिल्म या आइसक्रीम के लिए जाने का मतलब होता कि लोग देखते और बातें बनाते।

कॉलेज के गेट पर पहुंचने पर मुझे सबसे पहला जो अहसास हुआ वह था हांफने का अहसास। कॉलेज के पहले दिन समय से पहुंचने के लिए मैं जल्दी करती हुई आई थी। मुझे विश्वास नहीं हो रहा था कि मेरे स्कूल के दिन वाकई खत्म हो चुके थे और मैं अधिकृत रूप से कॉलेज छात्रा बन चुकी थी।

स्कूल यूनिफॉर्म से छुट्टी। सख़्त नियमों से छुट्टी। बच्चों की तरह बर्ताव किए जाने से छुट्टी। मैं अपने अगले जन्मदिन पर अठारह की हो जाऊंगी और अधिकृत रूप से बालिग हो जाऊंगी। मैं उत्साहित थी क्योंकि कानूनी रूप से इसका मतलब था कि मैं शादी और वोटिंग कर सकूंगी। लेकिन

तुरंत ही इसका दूसरा पहलू भी दिमाग़ में कौंध गया। मैं नाबालिग नहीं रहूंगी और मुझे गिरफ़्तार किया जा सकेगा। बेशक उस समय मुझे यह अंदाजा भी नहीं था कि मैं सचमुच गिरफ़्तारी के कितना करीब पहुंच जाऊंगी। यह बहुत ही खुशगवार सा अहसास था—जैसे एक कमला अपने कोष से बाहर निकल रहा हो। मुझसे इंतजार ही नहीं हो रहा था।

वैभव को अपने कॉलेज के बारे में बताने में बीस पन्ने भर जाते। इमारतें सुंदर, आधुनिक और एकदम साफ-सुथरी थीं। प्रांगण के बीच में एक अकेला पेड़ गर्व के साथ तना खड़ा था, जिस पर एक घंटा लटका हुआ था। पेड़ के चारों ओर एक गोलाकार चबूतरा था और उस पर कुछ छात्राएं बैठी थीं, कुछ खड़ी थीं, और सब बड़े उत्साहपूर्वक बातें कर रही थीं। घंटा पीरियड के अंत पर दिन भर बजाया जाता होगा।

कैंपस लगभग पांच एकड़ में था और इमारत लंबवत बनी हुई थी। इसके तीन विंग थे—पुराना, नया और होस्टल। पुराने विंग की बनावट मंत्रमुग्ध कर देने वाली थी और उसके खूबसूरत मेहराबों को मैं बस देखती ही रह गई। इसी विंग में तीन मंजिलों में समाई बहुत बड़ी, और सुस्थापित लाइब्रेरी, प्रशासनिक और प्रिंसिपल के कार्यालयों के अलावा फार्म जमा करने, फीस जमा करने और शैक्षिक संस्थान से जुड़े दूसरे क्रियाकलापों के विभिन्न काउंटर भी थे। चमचमाते शीशों वाले लकड़ी के चार बेदाग़ शोकेस फ़ख़्र से उन चमकती-दमकती ट्रॉफ़ियों का प्रदर्शन कर रहे थे जिन्हें एग्निस की छात्राओं ने पिछले अस्सी वर्षों में जीता था। ट्रॉफ़ियां दो गहरे ब्राउन रंग की रोज़वुड की एंटीक मेज़ों पर भी रखी हुई थीं। उन्हें देखकर मेरा मन अजीब से ख़ौफ़ और इज़्ज़त से लबरेज हो गया, कुछ-कुछ वैसा ही भाव जो देश के किसी भी सैन्य बल की इमारत में दाख़िल होने पर दिल में भर जाता है। यह बहुत ही सकारात्मक और जोशीला भाव था। चमचमाती लकड़ी में मैं अपना अक्स तक देख पा रही थी।

ऑडिटोरियम विशाल था और उसमें आसानी से सारी छात्राएं समा सकती थीं। स्टेज की सज्जा सुरुचिपूर्ण थी और वहां कॉलेज का प्रतीकचिह्न था, एक बहुत बड़ा क्रैस्ट जिस पर गर्व से कॉलेज का आदर्श-वाक्य उद्घोषित हो रहा था। ऑडियो सिस्टम, स्पीकर और पूरा सैट अप बहुत ही प्रभावशाली था। साथ ही कॉलेज की प्रिंसीपल सिस्टर इवेंजेलीन नाम की नन भी, जिन्होंने सटीक अंग्रेज़ी में हमारा स्वागत किया था, हमें कॉलेज, इसके इतिहास, इसकी उपलब्धियों, इसकी कल्पना, इसके लक्ष्य और प्रत्येक एग्नाइट से अपेक्षित उच्च मापदंडों के बारे में बताया। मुझे अपने भीतर हौले-हौले उमड़ता-घुमड़ता गर्व महसूस होने लगा था।

ज़िंदगी में कभी मैंने एक ही जगह पर इतनी सारी औरतों या लड़कियों को नहीं देखा था। सारी ज़िंदगी मैं को-एजुकेशनल स्कूलों में पढ़ी थी जहां पुरुष मेरी दुनिया का हिस्सा रहे थे। अचानक पुरुषहीन माहौल में धकेल

दिए जाने ने मुझे पूरी तरह से अचंभित कर दिया था। जहां भी मैं मुड़ती, देखती या जाती, वहां औरतें, औरतें, और ज़्यादा औरतें होतीं। कॉलेज में कम से कम तीन हज़ार छात्राएं रही होंगी और लगता था नए शैक्षिक वर्ष के शुरू होने पर स्वागत और अधिष्ठापन के लिए मानो लगभग सब की सब कॉलेज ऑडिटोरियम में चली आई थीं। मुझे याद है मैं हैरानी से तक रही थी और सोच रही थी कि इसका मतलब है ऑडिटोरियम में इस समय छह हज़ार वक्ष और तीन हज़ार योनियां हैं। अपनी इस वाहियात सोच पर मैं मन ही मन मुस्कुरा दी थी।

मुझे उत्सुकता से कक्षाओं का इंतज़ार था जो जल्दी ही शुरू होनी थीं।

2

कोई रोक सके तो रोके

कॉलेजों में गुट कैसे बनते हैं? कुछ कहते हैं कि गुरुत्वाकर्षण बल से हम आप ही आप ऐसे लोगों की तरफ़ खिंचे चले जाते हैं जिनसे जुड़ाव महसूस कर सकते हैं और फिर धीरे-धीरे कुछ महीनों में आपस में एक लगाव पनप जाता है।

मेरी कक्षा में ऐसा नहीं था। मुझे ऐसा लगा मानो स्नूकर के किसी खिलाड़ी ने एक तेज़ स्ट्राइक मारा हो और हम स्नूकर की बॉलों की तरह सभी दिशाओं में बिखर गए हों, और कुछ बेतरतीब सी बॉलें बिना किसी पूर्वयोजना के एक साथ आ गई हों। लेकिन बेशक, हक़ीक़त में, हर शॉट बारीकी से प्लान किया गया था और हरेक स्ट्राइक एक उद्देश्य को मद्देनज़र रखकर मारी गई थी, और गहराई से सोचने पर आपको अहसास होता है कि बॉलें अंततः किसी वजह से ही एक-दूसरे के पास आई थीं।

लगभग तुरंत ही हम एक गैंग या गुट में खिंच गए थे। हम साठ लड़कियां थीं लेकिन सब अपने-अपने ग्रुप में बंट गई थीं, जिनके साथ हम रहतीं, नोट्स का आदान-प्रदान करतीं और मस्ती करतीं। मेरा चार लोगों का ग्रुप था। मेरे अलावा उसमें सुवी, जेनी और चारु थीं।

सुवी निस्संदेह ग्रुप में सबसे ज़्यादा चुलबुली थी। वह छोटी सी थी लेकिन लंबाई की कमी की भरपाई वह अन्य क्षेत्रों में कर लेती थी। वह स्मार्ट, स्टाइलिश और जोशीली थी और उसका व्यक्तित्व सबको अपनी गिरफ़्त में ले लेता था। ज़्यादातर लोग उससे प्रभावित हो जाते थे। वह ऊर्जा का भंडार थी, हमेशा कुछ न कुछ करने को तैयार, और कभी-कभी थोड़ी सी इंपल्सिव और लापरवाह भी।

तमिल ब्राह्मण चारु उन आम धारणाओं का जीता-जागता रूप थी जो उनके बारे में कायम की जाती हैं। वह पढ़ाकू, स्मार्ट और बुद्धिमान थी। वह चश्मा तक पहनती थी। उसका लक्ष्य चार्टर्ड अकाउंटेंट बनना था।

जेनी भली, शांत और समझदार लड़की थी। उसकी महत्वाकांक्षा नन बनने या एमएसडब्ल्यू करके समाजसेवा करने की थी। हम पैचवर्क के लिहाफ की तरह एकजुट हुए और अपनी बेहद मुख़्तलिफ शख़्सियतों के बावजूद हमारी अच्छी पटने लगी थी।

लेकिन कॉलेज में जो चीज़ इतनी जल्दी सीखने की मुझे उम्मीद नहीं थी, वह थी 'अच्छी—एग्निस—किसी मर्द—की—उसके—गुप्तांग—को—घूरकर—लज्जित—करती—है' परंपरा। हमें इस परंपरा की जानकारी,

निर्देश और दीक्षा हमारी सीनियर्स ने तब दी थी जब हमने उनके साथ मर्केंटाइल लॉ का एक लेक्चर अटैंड किया था, जो सारे कॉलेज में एकमात्र ऐसा विषय था जिसे कोई पुरुष पढ़ाता था। इस परंपरा के एक-बिंदु वाले एजेंडा पर सहयोग करने के लिए प्रचंड हॉरमोनों के साथ ही सारी शर्मो-हया को छोड़ देना, जो कि लड़कियों का कॉलेज आपको सिखाता है, सबके लिए पर्याप्त वजह था। उस टीचर को पोरुक्कीमर्की नाम दिया गया था। 'पोरुक्की' स्थानीय भाषा में एक देशज शब्द था जिसका मोटा-मोटा अनुवाद गोबर-गणेश या 'नाकारा' बंदा किया जा सकता है, जिसका निहितार्थ था कि वह लड़कियों के पीछे भागता था। जो कि वास्तव में व्यंग्यपूर्ण था क्योंकि यहां वह नहीं, बल्कि लड़कियां ही पीछे भाग रही थीं।

पूरे लेक्चर के दौरान लड़कियां ज़्यादातर बेहद पैनेपन से उनके गुप्तांग को तकती रहती थीं। वे ध्यान न देने का बहाना करते हुए शुरू करते। लेकिन बेशक, उन्हें पता होता था। ऐसा हो ही नहीं सकता था कि वे इतनी स्पष्ट और अपमानजनक चीज़ को नहीं देख पाते, लेकिन वे कुछ कर नहीं सकते थे। मर्केंटाइल लॉ क्लास में यह एक अनकहा नियम था कि आपको केवल मर्की के गुप्तांग को देखने की इजाज़त थी। वहां हम करीब एक सौ बीस लड़कियां होती थीं, सभी पुरुषों के साथ को तरसती और मर्की की निगाहें हमें ज़रा भी नहीं डगमगाती थीं। मर्की अधेड़ उम्र के, नाटे, थोड़े से भारी बदन और गोल पेट वाले प्रोफेसर थे, और हमेशा अपनी शर्ट अंदर दबाकर पहनते थे। उनके सिर पर घने काले, तेल लगे घुंघराले बालों का बड़ा सा ढेर था और टॉयलेट साफ करने के ब्रश के ऊपरी सिरे जैसे आकार की मूंछें थीं। गदबदे चेहरे पर छोटी-छोटी काली आंखें थीं और वे तेज़ी से हर दिशा में घूमती रहती थीं। वे मलयालम फ़िल्मों के किसी हीरो के भद्दे कार्टून जैसे हो सकते थे। वे बड़ी गंभीरता से मर्केंटाइल लॉ की किसी धारणा को समझाना शुरू करते, और फिर दस मिनट के अंदर उनके माथे पर पसीने की बूंदें उभरने लगतीं। फिर वे अपना बेदाग़ सफ़ेद रुमाल निकालते और बार-बार अपनी भौंह को पोंछते। लड़कियां बेरहम थीं। वे अगर कोई सवाल भी पूछते, तब भी जवाब देने को खड़ी होने वाली लड़की उनके गुप्तांग से नज़रें नहीं हटाती थी। मुझे उस बेचारे बंदे पर सच में तरस आता था। लेकिन मन ही मन यह भी सोचती थी कि असल में वे ख़ुद भी इसका मज़ा ले रहे होंगे या नहीं। मुझे लगता नहीं था कि कॉलेज के गेट के बाहर कोई औरत उनकी ओर देखती भी होगी।

वैभव को जो ख़त मैं लिखती थी, उनमें इस सबके साथ और भी बातों का ब्योरा होता था। एक-दूसरे को लिखे हमारे ख़त लंबे और लंबे होने लगे थे। हम यह अनुमान लगाने में माहिर हो गए थे कि हर ख़त पर कितनी पोस्टेज लगेगी। हफ़्तों के गुज़रने के साथ-साथ एक-दूसरे को लिखे हमारे

ख़त हमारा सतत संपर्क, हमारी कड़ी और उनसे हासिल होने वाली वह ख़ुशी बन गए थे जो हम दोनों को सक्रिय रखती थी।

दिन में किसी गतिविधि के बीच जिसमें मैं तन्मयता से जुटी होती थी, अचानक मैं ख़ुद को किसी ऐसी बात को सोचते पाती जो उसने लिखी होती थी और मैं बेसाख़्ता मुस्कुरा देती। मैं ख़ुद को उसे बताने के लिए उन छोटी-छोटी बातों को दिमाग़ में दर्ज करता पाती जो तभी-तभी घटी होती थीं। वह भी लिखता था कि उसके साथ भी ऐसा ही है। वह कहता कि उसे याद नहीं कि इससे पहले कभी ज़िंदगी को लेकर उसने इतनी उमंग महसूस की हो। वह कहता कि मैंने उसे एक सहारा, एक मक़सद दिया है और उसके वजूद को एक मायने अता किए हैं। मैं उससे कहती कि वह 'सेंटीमेंटल फूल' है और उसे शेरो-शायरी लिखनी चाहिए। बेशक मन ही मन मुझे यह भाता था। वह भी यह जानता था। मुझे सराहा जाना अच्छा लगता था। मुझे किसी के लिए इतना अहम होने का अहसास अच्छा लगता था। मुझे किसी की दुनिया का केंद्र होना अच्छा लगता था।

एक साल फुर्र से उड़ गया और मुझे उसके गुज़रने का अहसास तक नहीं हुआ। फिर जब मेरा अठारहवां जन्मदिन आने वाला था, तो उसने तय किया कि अब ख़त काफ़ी नहीं हैं। उसने कहा कि वह मुझसे बात करना चाहता है।

फ़ोन पर वैभव से बात करने की योजना बनाना दूसरे विश्वयुद्ध में अमेरिकी पैराट्रूपर्स की हवाई टुकड़ी के बेहद पेचीदा जंगी मिशन को अंजाम देने जैसा था। उन दिनों मोबाइल फ़ोन तो होते नहीं थे। इसके लिए बहुत लंबी-चौड़ी, बारीकी से बहुत सोच-विचार और आख़री तफ़्सील तक तालमेल के साथ बनी योजना की ज़रूरत थी। उसने एक बार सीधा रास्ता अपनाने की कोशिश की और एक बहुत ही शालीन समय पर फ़ोन किया। मां ने फ़ोन उठाया। उसने उन्हें नमस्ते की और उन्होंने बहुत तीखेपन से "हां?" कहा। उन्होंने नमस्ते का जवाब तक नहीं दिया। उन्होंने कहा, "अंकिता अभी फ़ोन पर नहीं आ सकती" और रूखेपन से फ़ोन रख दिया। मैं अपने कमरे में थी और मैंने एक-एक लफ़्ज सुना था। ग़ुस्से से मेरे कान तमतमाने लगे और आंखों में आंसू उबल पड़े। लेकिन मैंने उन्हें सफ़ाई से छिपा लिया। उनसे बहस करने का तो कोई सवाल ही नहीं था।

मगर यह भी हमें रोक न सका। हम दोनों ही इस बात पर राज़ी थे कि अगर हम एक-दूसरे से कम से कम चार मिनट बात कर सकें तभी कोई फ़ोन कॉल कामयाब समझी जा सकती है। वैभव ने 'ऑपरेशन मिशन फ़ोन-कॉल' के लिए तीन हिस्से बनाए थे।

पहले हिस्से में मिशन-पूर्व योजना के विचारणीय बिंदु थे जो थे:

1 . मेरा भाई सोया हुआ हो।

2 . मेरे माता-पिता सुबह की सैर के लिए निकले हुए हों जिसे आमतौर पर वे कभी नहीं छोड़ते थे।

दूसरे हिस्से में सहायक बल थे जो थेः

1 . उस टेलीफ़ोन बूथ वाला बंदा जगा हो जहां से वैभव सुबह-सवेरे फ़ोन करता। (वैभव ने बाद में मुझे बताया था कि उसे उस बंदे को झिंझोड़कर हिलाना या उसके कान में बहुत ज़ोर से चिल्लाना पड़ता था। वह हमेशा दस रुपए अतिरिक्त वसूला करता था—सुबह-सवेरे के दाम, उसका कहना था।)

2 . मैं भी समय से जग जाऊं ताकि पहली घंटी बजते ही फ़ोन उठा लू —वर्ना मेरे भाई के जग जाने का अंदेशा रहता।

तीसरा हिस्सा पूर्वानुमानित ख़तरों का था जिनकी वजह से 'मिशन रद्द' करना पड़ सकता था और इसमें थेः

1 . मेरे माता-पिता का सामान्य समय से पहले लौट आना।

2 . मेरे भाई का टेलीफ़ोन एक्सटेंशन पर फ़ोन उठाकर सुन लेना।

वैभव को मेरा फ़ोन करना ख़ारिज कर दिया गया था, क्योंकि रात में मेरा चोरी-छिपे टेलीफ़ोन बूथ तक जा पाना मुमकिन नहीं था। दिन में मैंने दो बार कोशिश की थी, मुझे उसके होस्टल के फ़ोन पर कॉल करनी थी। उसके बैचमेट उसे आवाज़ लगाते। मैं रख देती और पांच मिनट बाद फिर फ़ोन करती। दोनों ही बार मुझसे कह दिया गया कि वह कमरे में नहीं है। उसके बाद मैंने कोशिश छोड़ दी, क्योंकि इसका मतलब था कि मैं क्लासों में अपने ब्रेक के दौरान चोरी से कॉलेज से निकलूं और अगली क्लास के लिए झटपट वक़्त से वापस पहुंचूं। कॉलेज में हर घंटे में हाज़री लगती थी, स्कूल की तरह सुबह बस एक बार नहीं।

अपने अठारहवें जन्मदिन पर मैं सोने का बहाना करती अपने बिस्तर पर चुपचाप लेटी रही और अपने माता-पिता को सैर के लिए जाते सुनती रही। गेट पर लोहे की खड़कन ने मुझे बता दिया था कि वे चले गए हैं। मैं खामोशी से दबे पांव बैठक में पहुंची जहां टेलीफ़ोन का एक्सटेंशन था और उसका प्लग निकाल दिया। फिर मैं अपने माता-पिता के कमरे में गई और फोन उठाकर डायल टोन सुनी। वह संतुष्टिपूर्वक घरघरा रहा था। इत्मीनान करके मैंने उसे वापस रख दिया। फिर यह देखने के लिए दोबारा जांचा कि मैंने उसे ठीक से रखा है या नहीं।

जब आप किसी के फ़ोन का इंतज़ार कर रहे होते हैं तो वक़्त की रफ़्तार जैसे थम जाती है। अगर आपने कभी किसी के फ़ोन का इंतज़ार किया होगा तो आप समझ सकते हैं कि मैं क्या कहना चाह रही हूं। कुछ समझ नहीं आता कि क्या करें। आप बस यही कामना करते हैं, चाहते हैं,

इच्छा करते हैं कि फ़ोन बस बज जाए। आप चाहते हैं कि वक़्त को पंख लग जाएं। मैं फ़ोन के पास बैठी इंतज़ार करती रही। कुछ समय बाद मैं फ़र्श पर पसर गई और इंतज़ार करती रही।

ठीक प्लान के मुताबिक फ़ोन बजा और मैंने पहली घंटी पूरी होने से पहले ही उसे उठा लिया।

"हाइ," मैं किसी तरह फुसफुसाई।

ख़ामोशी।

"हैलो?"

फिर ख़ामोशी।

फिर मुझे संगीत शुरू होता सुनाई दिया। कुछ पल तो मुझे कुछ समझ नहीं आया कि क्या हो रहा है। फिर दिमाग़ खुला।

क्रेग चौकीसो के एकल गिटार के सुरों ने ग्रेस स्लिक की आवाज़ के साथ घुलमिलकर उस दिन जादू कर दिया था, जब मैं सैकड़ों मील दूर फ़ोन लाइन पर, सुबह पौने छह बजे अपने माता-पिता के बेडरूम में फ़ोन को कान से सटाए ठंडे फ़र्श पर सिकुड़ी बैठी उसे सुन रही थी। यह मुहब्बत का नग़मा था जो जब रिलीज़ हुआ था तो बिल बोर्ड हॉट हंड्रेड की फ़ेहरिस्त में ऊपर जा पहुंचा था। उस समय तो मैं बैंड या कलाकार को पहचान नहीं सकी थी, लेकिन बाद में मैंने जाना कि इसे जैफ़रसन स्टारशिप के बैंड ने गाया था। बाद में मैंने गाने के बोल लिखे थे, उन्हें याद किया था और कोई सौ बार सुना होगा।

"लुकिंग इन युअर आइज़ आई सी ए पैराडाइज़

दिस वर्ल्ड दैट आय'व फ़ाउंड

इज़ टू गुड टू बी ट्रू

स्टैंडिंग हियर बिसाइड यू

वांट सो मच टू गिव यू

दिस लव इन माइ हार्ट

दैट आय'म फ़ीलिंग फ़ॉर यू"

यहां एक गिटार सोलो बजाया जा रहा था। और फिर यह बजता ही रहा। सारा गाना क़रीब साढ़े चार मिनट चला। बीच में मैंने उससे कहने की कोशिश की कि गाना रोक दे और कि मैं इसके पीछे छिपे जज़्बात को समझ गई हूं। लेकिन पूरा गाना ख़त्म होने तक वह इसे बजाता ही रहा।

फिर वह लाइन पर आया और बोला, “हैप्पी बर्थडे, अंकिता, और मैं इस गाने के एक-एक लफ़्ज़ से इत्तफ़ाक़ रखता हूं।”

मैं वहीं के वहीं मर जाती और धरती की सबसे ख़ुश इंसान होती। मुझे समझ ही नहीं आया कि क्या कहूं।

“इडियट,” आखिर मैंने कहा। “पूरा गाना बजाने में वक़्त क्यों बर्बाद किया? हम इतनी देर और बात कर सकते थे।”

“बातें अब कर लो।”

“मैं क्या कहूं? मुझे नहीं पता क्या कहूं,” मेरे चेहरे पर एक बड़ी सी मुस्कुराहट फैल गई।

“तुम यह कहकर शुरू कर सकती हो कि मैं कितना अच्छा बंदा हूं।”

“बकवास। तुम घामड़ हो और बुद्धू हो। तुमने यह किया कैसे?”

“मेरे अपने तरीके हैं।”

उन दिनों संगीत के लिए न एमपी3 होते थे, न सीडी या आईपॉड। हम कैसेट में लिपटे टेप पर गाने सुनते थे जिन्हें हम टेप रिकॉर्डर में लगाते थे। इस गाने के लिए उसने टेप तलाशा होगा, टेप को रीवाइंड किया और ठीक उस जगह पर छोड़ा होगा जहां से गाना शुरू होता था, टेप रिकॉर्डर के लिए वह बैटरी लाया होगा और फिर सुबह-सुबह उसे फोन बूथ पर लेकर गया होगा। उसके इतनी सब जद्दोजहद करने पर मैं हैरान भी थी और भावुक भी।

मैं उससे कुछ और देर बात करना चाहती थी। मेरा दिल चाह रहा था कि कॉल कभी ख़त्म न हो। मैं ख़ुश थी और सातवें आसमान पर थी। अचानक मुहब्बत में गिरफ़्तार लोगों द्वारा की जाने वाली वे सारी पागलपन भरी हरकतें मायनाखेज लगने लगी थीं जिनके बारे में मैं किताबों में पढ़ती थी। साथ ही वे बेशुमार छोटी-छोटी बातें भी जो फ़िल्मों में आशिक किया करते हैं।

लेकिन मन में कहीं तर्क जीत गया क्योंकि मुझे यह भी पता था कि अगर मेरे माता-पिता वापस आ गए तो जन्मदिन की बहुत बढ़िया शुरुआत बर्बाद हो जाएगी, वह भी ऐसे जन्मदिन की जो जिंदगी का अहम पड़ाव है।

“आई लव यू, बेबी,” उसने कहा। यह कहते हुए जिस तरह उसकी आवाज़ बेसाख़्ता नर्म और मद्धम हो गई थी, उसने मेरे रोंगटे खड़े कर दिए थे। उसने सच में ये शब्द बोले थे।

“अब रखो,” मैंने कहा। “और अपना ध्यान रखना। बाई।”

उसके रखने से पहले ही मैंने फ़ोन रख दिया। मैं फ़र्श पर ही बैठी रही और एक बड़ी सी मुस्कुराहट मेरे होठों पर फैल गई थी।

मेरा दिल गा रहा था। मैं हवा में उड़ रही थी। जब गेट की खड़कन फिर से मेरे कानों में पड़ी तब भी मैं मुस्कुरा रही थी। मैं भागकर अपने कमरे में गई, बिस्तर पर कूदी, कंबल में ख़ुद को लपेटा और मुस्कुराती रही, "नथिंग्ज गोन्ना स्टॉप अस नाउ" के बोल मेरे दिलोदिमाग़ में गूंज रहे थे।

जब यह पता लग जाए कि किस दिशा में जाना है, तो उसकी राह ढूंढ़ना आसान हो जाता है। उस ज़बर्दस्त सुरूर का मज़ा लेने के बाद, जो 'ऑपरेशन फ़ोन कॉल' ने हम दोनों को दिया था, हम इसे और ज़्यादा पाना चाहते थे। इसकी तुलना में ख़तों का इंतज़ार करना बहुत रसहीन लगता था। वैभव ने कहा था कि वह मुझे हर बृहस्पतिवार को फ़ोन करेगा। बृहस्पतिवार उसने इसलिए चुना था क्योंकि मेरा जन्म बृहस्पतिवार को ही हुआ था। मुझे यह अंदाज़ दिलकश लगा था। लेकिन फिर, मुझे वह हर चीज़ ही दिलकश लगने लगी थी जो वह मेरे लिए करता था।

हरेक बृहस्पतिवार को जब वह फ़ोन करता तो उसे बताने के लिए कितना कुछ होता था। यह ख़तों के अलावा था। मैं उससे बहुत कुछ शेयर करना चाहती थी। हर छोटी से छोटी बात शेयर करनी होती थी, और वह भी सुनने के लिए उतना ही उत्सुक होता था। वह कहता था कि उसे मेरी आवाज़ की खनक पसंद है। कहता कि अपने माता-पिता के बेडरूम में फ़र्श पर बैठकर उससे बातें करते हुए वह मेरी कल्पना कर सकता था। वह हमेशा अपनी उस मद्धम नर्म सी आवाज़ में "हे" कहते हुए शुरू करता था जो मुझे बहुत अच्छी लगने लगी थी और हमेशा "टेक केयर, ओके? आई लव यू।" से बात ख़त्म करता। जब वह यह कहता था तो उसकी आवाज़ हमेशा बेहद धीमी और शीरीं हो जाती थी। मुझे यह बहुत भाता था।

वह हज़ारों बार इस लाइन को दोहरा सकता था और मैं इसे सुनने से कभी न थकती। हम दोनों को ही यह बात हैरान करती थी कि हमारे पास कहने के लिए हमेशा ढेरों बातें होती थीं। हमारी बातों का पिटारा कभी ख़ाली नहीं होता था। हर कॉल क़रीब छह-सात मिनट की होती थी क्योंकि वह इतना ही अफ़ोर्ड कर सकता था और पता नहीं कैसे यह कभी भी काफ़ी नहीं लगता था। एक बार मैंने उससे कहा था कि मैं उसे फ़ोन कॉल्स के लिए पैसे भेज सकती हूं क्योंकि मुझे अपराधबोध होता था कि वह इतना पैसा ख़र्च कर रहा है। लेकिन वह तो यह सुनने को भी तैयार नहीं हुआ और हमने दोबारा कभी यह बात नहीं उठाई।

एक बृहस्पतिवार, हमारे एक और ऑपरेशन फ़ोन कॉल के दौरान मेरे माता-पिता उम्मीद से पहले वापस आ गए। जब मैंने घर का दरवाज़ा खुलने की आवाज़ सुनी तो जैसे मेरी जान ही निकल गई थी। मैं बातों में

इतनी डूब गई होऊंगी कि गेट के खड़कने की आवाज़ मुझे सुनाई ही नहीं दी। कमरे से बाहर भागने का वक़्त नहीं था। मैं घबरा गई, फ़ोन रखा और बेड के नीचे घुसकर छिप गई।

कुछ ही सैकंडों बाद, डैड और मॉम सीधे अपने बेडरूम में चले आए। मेरा दिल ज़ोरों से धड़क रहा था, मैं ख़ुद को किसी चोर जैसा महसूस कर रही थी। मैं बेतहाशा उन सारे बहानों को खंगाल रही थी जो पकड़े जाने पर कहती। फ़ोन फिर बजा। वैभव ने समझा होगा कि लाइन कट गई है। डैड ने फ़ोन उठाया और जब दूसरी ओर से कोई आवाज़ नहीं आई तो उन्होंने फ़ोन रख दिया। मैं बेड के नीचे लेटी रही, पत्थर की तरह निश्चल। और मेरी खुशकिस्मती थी कि उनमें से किसी ने मुझे नहीं देखा। डैड के कमरे से बाहर जाने तक मैं कम से कम पैंतालीस मिनट वहां लेटी रही होऊंगी। मां रसोई में थीं। खटपट से मैं यह अंदाज़ा लगा सकती थी।

बाद में मैं बेड के नीचे से निकली और जंग के दौरान एक खंदक से दूसरी खंदक में जाते किसी कमांडो की तरह महसूस करते हुए सुरक्षित अपने कमरे में पहुंच गई। मुझे पता था वैभव अगले दिन फिर फ़ोन करेगा। और मैं वापस फ़ोन के पास बैठी थी, प्रतीक्षारत।

उसने फ़ोन किया।

“इडियट,” मैंने कहा। “मेरी तो जान ही निकल गई थी। मुझे पैंतालीस मिनट बेड के नीचे छिपे रहना पड़ा। तुम अव्वल दर्जे के मूर्ख हो। भला तुमने दोबारा फ़ोन क्यों किया? कुछ तो अक़्ल लगानी चाहिए थी;”

वह हंसा, और हंसा। मैं भी उसके साथ हंसने लगी, उसकी हंसी सुनना अच्छा लगा था।

“मुझे कैसे पता चलता?” आख़िरकार हंसना बंद करके उसने कहा। “जब तुम्हारे डैड ने फ़ोन उठाया तो मैं ख़ुद उछलकर फ़ोन बूथ से बाहर ही आ गया था।”

उस दिन मैंने जल्दी फ़ोन रख दिया। एक और खंदक की मुहिम का ख़तरा लेने की हिम्मत मुझमें नहीं थी।

3

इलेक्शन-विलेक्शन

केरल में कॉलेज के चुनाव एक बड़ा आयोजन होते हैं और बहुत ज़्यादा सियासी रंग लिए होते हैं। ये काफ़ी मज़बूत इशारा होते हैं कि कौन सी पार्टी अगली सरकार बनाने वाली है। यह जगजाहिर था कि सियासी पार्टियां अपनी-अपनी पार्टी की छात्र शाखाओं के प्रचार ख़र्चों को स्पॉन्सर करती हैं। सारा शहर, ख़ासकर ऐसी जगहें पोस्टरों से पट जाती हैं जहां छात्रों की आवाजाही ज़्यादा रहती है। सारे कैंपसों में छात्रों के गुट जीपों में लाउडस्पीकर लगाए जोर-शोर से ऐलान करते घूमते हैं। पर्चे बंटते हैं, और चुनावी भाषण होते हैं। ज़बर्दस्त मुक़ाबला होता है और माहौल में उत्तेजना छाई रहती है। ऐसी भी घटनाएं होती थीं जब गुटों के अंदरूनी झगड़ों में उम्मीदवारों को चाकू घोंपकर मार डाला जाता था। यह बहुत गंदा खेल था।

सेंट एग्निस इस सबसे दूर रहना चाहता था, और इसलिए हमारे कॉलेज के चुनाव पूरी तरह से सियासत से मुक्त होते थे। यह कुछ-कुछ स्कूल के चुनाव जैसा था, लेकिन थोड़ा बड़े पैमाने पर। इसमें आठ अधिकृत पद थे जिनमें अध्यक्ष, आर्ट्स क्लब सेक्रेटरी और जनरल सेक्रेटरी सबसे महत्वपूर्ण पद थे। चुनाव की तिथियों और पदों के लिए नामांकन आमंत्रित करने की घोषणा के साथ नोटिस लगा दिया गया था। किसी भी पद के लिए कोई भी किसी भी छात्रा का नामांकन कर सकता था। नामांकन पत्र को तीन प्रतियों में भरकर जमा करना था। दो अन्य लोगों को इसका अनुमोदन करना था।

सुवी अपने होस्टल से रॉकेट की तरह दनदनाती कॉलेज कैंटीन में घुसी और बोली, “तुम लोगों ने नोटिस देखा?”

“हां,” जेनी ने कहा। “कल देखा था।”

“और...?” सुवी ने कुरेदा।

“और क्या?” मैंने पूछा।

“गैस करो,” उसने कहा, उसकी आंखें चमक रही थीं। उसके जोश ने सबको अपनी लपेट में ले लिया। वह उत्तेजित दिख रही थी।

“क्या तुम खड़ी हो रही हो? वाह! क्या बात है” मैं उत्साह से बोली।

“नहीं तुम, इडियट, तुम खड़ी हो रही हो।”

मैं भौचक्की रह गई। फिर मैंने ख़ुद को समेटा।

“क्या? क्या बकवास है! मैं कैसे खड़ी हो सकती हूं?” एक सैकंड बाद मैंने उत्सुकता से पूछा, “किस पोस्ट के लिए?”

“दरअसल हम फ़ॉर्म भर भी चुके हैं और हमने तुम्हारा नाम आर्ट्स क्लब सेक्रेटरी के लिए दे दिया है,” वह नाच रही थी।

“तुम कितनी इडियट हो। तुम्हें यह भी नहीं सूझा कि पहले मुझसे तो पूछ लो? और मेरे नामांकन का अनुमोदन किसने किया?” मैं बड़बड़ा रही थी, एक साथ मुझे थोड़ा ग़ुस्सा, बहुत ज़्यादा इठलाहट और हल्का सा अनमनापन महसूस हो रहा था।

“स्मिता और हाना ने,” उसने कहा। वे होस्टल में उसकी रूममेट थीं।

“चिंता मत करो,” सुवी ने मुझे दिलासा दिया। “तुम्हारा सारा प्रचार हम करेंगे। मज़ा आएगा।”

“हां, सही है। मज़ा तुम्हें आएगा। उन सब लोगों के सामने जा-जाकर वोट तो मुझे मांगने होंगे ना। मैं यह नहीं कर सकती।”

“तुम स्कूल में हैड गर्ल नहीं थीं क्या?”

“तो? वह अलग बात थी। उन्होंने ही चुना था मुझे। मुझे वोट नहीं मांगने पड़े थे।”

“तो—हम चुन रहे हैं तुम्हें,” सुवी ने कहा। “वोट फ़ॉर...,” उसने हुंकारा भरा।

और मुझे हैरान करते हुए जेनी और चारु ने सुर मिलाया “अंकिता” और उन्होंने मेरा हाथ पकड़कर ऊपर उठा दिया, जैसे बॉक्सिंग मैच में रैफरी विजेता का हाथ उठाता है।

कैंटीन में सब पलटकर देखने लगीं और वे अपना नारा लगाती रहीं। “आर्ट्स सेक्रेटरी के लिए अंकिता। वोट फ़ॉर अंकिता,” उन्होंने चिल्लाना जारी रखा और कैंटीन में मौजूद मेरी कक्षा की लड़कियां भी उनके साथ शरीक हो गईं।

जब मेरी शुरुआती झिझक ख़त्म हुई तो उसकी जगह प्रतिस्पर्द्धा की भावना ने ले ली। मेरी सारी कक्षा जुट गई थी। सुवी ने खुद को मेरा मुख्य प्रचार संयोजक नियुक्त कर लिया था और उसने पैसे भी जमा कर लिए थे। मैं यह देखकर हैरान थी कि लोग सच में इतना पैसा दे रहे थे। सारा होस्टल भी मेरे साथ था। सुवी के वहां होते उन्हें होना ही था! सुवी थी ही ऐसा बवंडर। उसने सबको प्रेरित कर दिया था। उन्होंने पोस्टर बनाए। उन्होंने पर्चे बनाए और मैं असली भारतीय नेता की तरह उनका नेतृत्व करती थी। हम सारे कैंपस में घूमते थे। सुवी ने कहीं से एक बड़ा सा ड्रम भी जुटा लिया था, और स्मिता, हाना और उसके बीच वे उसे लेकर घूमती और ख़ूब

शोर मचातीं। संध्या एक बिगुल ले आई थी। और वह 'बैंड' का नेतृत्व करती थी। मुझे मानना होगा कि उसे बहुत अच्छा बिगुल बजाना आता था और शोर मचाकर हौसला बढ़ाते, तख्तियां और पोस्टर उठाए सबसे अपने उम्मीदवार—'आर्ट्स सेक्रेटरी के लिए अंकिता' को वोट देने की गुज़ारिश करते इस अनूठे संगीतात्मक काफ़िले को देखने सब बाहर निकल आते। शुरू में तो ऐसा करना मुझे अहमक़ाना सा लगता था, लेकिन जब मैंने दूसरी उम्मीदवारों का जोशोख़रोश देखा तो फिर मुझे कुछ अजीबोग़रीब नहीं लगता था।

मेरी विरोधी प्री-डिग्री की पहले वर्ष की एक छात्रा थी, जो कि कक्षा ग्यारह के समकक्ष था। हम अब स्नातक डिग्री के अपने दूसरे वर्ष में थे और स्वाभाविक रूप से हमारे प्रचार की शैली, सामग्री और हमारा अपने लिए जुटाया समर्थन उससे कहीं ज़्यादा बेहतर और प्रभावशाली था जो वे लोग जुटा पाई थीं।

प्रचार दौरों और भाषणों के बीच हम कैंटीन में ब्रेक लेते थे। हम अपने अगले पैतरों पर चर्चा करते, हमारे मज़बूत पक्ष क्या हैं, मुझे कहां ध्यान केंद्रित करना है और कहां हमें ज़्यादा ताक़त से प्रचार करने की ज़रूरत है, कौन से क्षेत्र हमारे हैं और कौन से नहीं हैं।

"अध्यक्ष के पद के लिए तुम किसे वोट दोगी?" चारु ने पूछा।

"बिना किसी शुबह के, संजना मेनन को।" मैंने कहा।

संजना हमसे दो साल सीनियर थी और पोस्टग्रेजुएशन के पहले साल में थी। मेरे लिए तो वह 'संपूर्ण नारी' का प्रतिमान थी। तराशे हुए तीखे नैन-नक़्श, हल्के रंग की चमकती आंखों, साफ़ रंगत, फ़ैशनेबल हेयरकट और इससे मेल खाते शानदार भाषा-विन्यास के साथ वह बेहद ख़ूबसूरत लगती थी। वह लंबी थी, ट्रेंडी कपड़े पहनती थी, अच्छा बोलती थी और आत्मविश्वास उससे टपकता था। उसने कुछ प्रिंट मीडिया के विज्ञापनों के लिए मॉडलिंग तक की थी और एक क्षेत्रीय पत्रिका की कवर-गर्ल भी रही थी।

हम चारों ने ही अध्यक्ष के लिए संजना को वोट दिया।

जब परिणाम घोषित हुए, तो उन्होंने चीखते-चिल्लाते, उत्साह बढ़ाते हुए मुझे सारे कैंपस में घुमाया। मैं भारी अंतर से जीती थी। संजना भी जीत गई थी और प्रिया नई जनरल सेक्रेटरी थी।

मैं वैभव को बताने के लिए बेताब थी।

नए पदाधिकारियों का अलंकरण समारोह एक भव्य आयोजन था जिसमें लगभग सारी छात्राएं और फ़ैकल्टी शामिल हुई थीं। मुख्य अतिथि एक लोकप्रिय क्षेत्रीय फ़िल्म अभिनेता थे। मीडिया से रिपोर्टर आए थे और

हर कुछ सैकंड बाद फ़्लैश लाइट चमक रही थीं। साड़ी में लिपटी आठ लड़कियों से घिरा एक ख़ूबसूरत फ़िल्म स्टार तो स्वाभाविक रूप से फ़ोटो खींचने का अच्छा मौका था।

अपनी ज़िंदगी में पहली बार मैं कम से कम तीन हज़ार लोगों की भीड़ से रूबरू थी। वहां स्टेज पर खड़े होकर, उन्हें संबोधित करते हुए, जबकि स्पॉटलाइट मुझ पर केंद्रित थी, यह सब कुछ किसी सपने जैसा लग रहा था। मैं थोड़ा सा नर्वस थी और मेरी हथेलियां ठंडी हो रही थीं लेकिन किसी तरह मैंने बिना किसी गड़बड़ी के अपना छोटा सा, पहले से तैयार किया हुआ भाषण दे दिया।

आयोजन के बाद आठों नए पदाधिकारी सेंट एग्निस की प्रिंसीपल सिस्टर इवेंजेलाइन के साथ अधिकारिक डिनर पर गईं। यह ऐसी परंपरा थी जिसका बहुत बरसों से पालन किया जा रहा था। उन्होंने हमें हमारी ज़िम्मेदारियों, हमारे अधिकृत कर्तव्यों और यह बताने में जरा भी वक़्त जाया नहीं किया कि हमें किस तरह अपने व्यवहार से मिसाल कायम करनी चाहिए। उन्होंने हमें पिछली पदाधिकारियों और उनके द्वारा किए गए शानदार काम के बारे में बताया, उन्हें विश्वास था कि हम भी वैसा ही करेंगे। हमारा पहला काम हमारे लिए तय किया भी जा चुका था—कोचीन यूनिवर्सिटी के मैनेजमेंट स्कूल का सालाना सांस्कृतिक उत्सव 'सिंफ़नी' होने वाला था और हमारे कॉलेज को उसमें भाग लेने के लिए आमंत्रित किया गया था। सेंट एग्निस पिछले साल समग्र चैंपियन रहा था और सिस्टर इवेंजेलाइन अच्छी शुरुआत के साथ साल शुरू करने पर बल दे रही थीं।

इसकी ज़रूरत ही नहीं थी। हम तो रेस शुरू होने से पहले उतावले हो रहे रेस के घोड़ों की तरह थे। हम ख़ुद भी अपनी काबलियत साबित करना चाहते थे। हम तो कामयाबी के लिए फड़फड़ा रहे थे।

समारोह में कम से कम पंद्रह आयोजन होने थे जिनमें फ़ेस पेंटिंग, एड वर्ल्ड, डंब शैरेड जैसे मज़ेदार कार्यक्रमों से लेकर वैस्टर्न डांस, लघु कहानी लेखन, पेंटिंग और वाक्-प्रतियोगिताओं जैसे गंभीर कार्यक्रम भी थे। कॉलेज की बस हमें समारोह स्थल तक लेकर जाती जो कि पैंतालीस किलोमीटर दूर था और शाम को वापस लेकर आती।

***

"कोई बेहूदा डांस नहीं होगा, लड़कियों, और न ही छोटी स्कर्टें पहनी जाएंगी। हम 'बूयज़्ज' को 'टैंप्ट' नहीं करना चाहते," संजना ने सिस्टर बर्था (जो साहित्य विभाग की प्रमुख थीं और सभी छात्र गतिविधियों में शामिल रहती थीं) की नकल बनाते हुए 'टैंप्ट' पर बल देते और 'बॉयज' को खींचते हुए जोर से कहा। हम तीनों—संजना, प्रिया और मैं—टीम को वैस्टर्न डांस की प्रेक्टिस करते देख रही थीं।

“तुम्हारा मतलब ऐसे?” जुआना ने कहा, साथ ही अपनी शर्ट के बटन खोलकर अपने वक्ष सामने कर दिए जो लेस की लॉन्जरी से बाहर छलके पड़ रहे थे और फिर अपना दायां हाथ नाभि के नीचे रखकर उसने कूल्हों को बहुत शानदार ढंग से आगे धकेला, कुछ-कुछ बार डांसर्स की तरह। मेरा तो मुंह खुला का खुला रह गया, जबकि बाक़ी सब ठहाके लगा रही थीं। धीरे-धीरे मुझे पता लग रहा था कि पुरुष-मुक्त, केवल स्त्रियों के वातावरण में यक़ीनन उन्मुक्त कर देने वाली कोई बात होती है। यहां आप पूरी तरह अपने आप में हो सकती हैं। यहां कोई पुरुष नहीं होता जो आपको घूरेगा, अगर आपकी ब्रा की स्ट्रैप दिख रही है तो परेशानी की कोई बात नहीं है, और स्कर्ट उतनी छोटी हो सकती हैं जितनी आप पसंद करें, टॉप प्लास्टिक की तरह पारदर्शी हों तो भी कोई त्योरियां टेढ़ी नहीं करेगा। यह अपने आप में बंद, अलग-थलग दुनिया थी और मैं धीरे-धीरे इसे समझने लगी थी।

“वाह! क्या बात है! यह लवेबिल है या विक्टोरियाज़?” प्रिया चहकी।

“जुआना, इतना काफ़ी है। हम सबको पता है कि तुम दिल ही दिल में मैड्रिड के कैबरे म्यूज़िकल में स्टार बनना चाहती हो। अब वापस प्रेक्टिस में लगो,” जुआना प्रिया के सवाल का जवाब देती, इससे पहले ही संजना ने कहा। साफ़ था कि वे इस किस्म के फूहड़पन और मौजमस्ती की आदी थीं।

“ऊह! इतना परेशान मत हो, डार्लिंग,” जुआना ने अपनी शर्ट के बटन बंद करते और अपने शब्दों को खींचते हुए कहा, उसने अपने उत्तेजक डांस का एक ठुमका और लगाया, और आंखें तरेरती संजना की ओर एक चुंबन उछाल दिया।

जुआना ने ही सारे गाने की कोरियोग्राफ़ी की थी। संजना और सुवी ने कॉस्ट्यूम में मदद की थी। डांसर्स ने कैप समेत सभी बारीकियों के साथ सैनिकों की स्मार्ट पोशाक पहनी थीं जैसी अमेरिकी सेना के जवान पहनते थे। उन्होंने जो गाना चुना था वह युद्ध के दिनों का एक पुराना लोकप्रिय गाना था। संयत कामुकता, वर्दियां, साथ की वस्तुएं, उम्दा चुना संगीत और डांस की ज़बर्दस्त संयोजन वाली मुद्राएं सारे परिदृश्य को सीधे फ़िल्म से निकला जैसा दिखा रही थीं। लड़कियों ने एक ताल भी नहीं चूकी। वे पेशेवर नर्तकों की तरह डांस कर रही थीं! अपनी सारी मौजमस्ती के बावजूद, जुआना को सच में अपना काम आता था और उसने इन लड़कियों को सिखाने में बहुत बढ़िया काम किया था।

“वैस्टर्न डांस में तो हम पक्का जीतेंगे।” उन्हें देखते हुए, उनकी परफ़ॉर्मेंस से सम्मोहित होते हुए मैंने संजना से कहा।

“हां, बिल्कुल। महावीर वाले लड़कों की तो आंखें फटी की फटी रह जाएंगी,” प्रिया ने ठट्ठा लगाया।

महावीर कॉलेज को-एड था। एग्निस में यह मज़ाक़ प्रचलित था कि महावीर की सबसे ख़ूबसूरत लड़की भी एग्निस की औसत शक़्ल-सूरत वाली लड़की से मुक़ाबला नहीं कर सकती। और अजीब बात थी कि यह सच भी था। इस तरह के सांस्कृतिक आयोजनों में महावीर के लड़के एग्निस की लड़कियों को प्रभावित करने की जी-तोड़ कोशिश करते थे, और हैरत की बात थी कि उनकी अपनी किसी भी टीम में बहुत कम लड़कियां होती थीं। दूसरे कई मैनेजमेंट इंस्टीट्यूट भी हिस्सा लेते थे और उत्सव के दौरान वे पूरे भारत से आकर तीन-चार दिन के लिए कोचीन में डेरा डालते थे। उनमें भी लड़कियों के मुक़ाबले लड़कों की तादाद कहीं ज़्यादा होती थी।

उस साल *सिंफ़नी* में ही संजना ने मेरा परिचय अभिषेक, धीरेन और क्रिस्टी से करवाया था। वह पिछले बरसों से उन्हें जानती थी और कई बार उनसे मिल चुकी थी। अभिषेक महावीर कॉलेज की छात्र यूनियन का जनरल सेक्रेटरी था और धीरेन अध्यक्ष।

“हमारी नई आर्ट्स क्लब सेक्रेटरी अंकिता से मिलो,” संजना ने हमें मिलवाते हुए कहा था। “अंकिता, ध्यान रखना क्रिस्टी ज़बर्दस्त क्विज़र है, धीरेन और अभिषेक पब्लिक स्पीकिंग में बहुत माहिर हैं।”

“और मैं गिटार भी बजाता हूं,” अभिषेक मुस्कुराया।

“हाइ,” दिमाग़ में सारी जानकारी को दर्ज करते हुए मैं मुस्कुराई। धीरेन लंबा और पतला, सफ़ाचट दाढ़ी वाला था और फ़ॉर्मल शर्ट और पैंट पहने था। अभिषेक उससे बहुत छोटा था। वह गठे बदन का था, उसका चेहरा गोल सा था और चेहरे पर हल्की सी दाढ़ी थी, वह चश्मा पहनता था और मिलनसार और ख़ुशमिज़ाज दिखता था। क्रिस्टी बहुत गोरा, बलिष्ठ और अभिषेक से थोड़ा लंबा था।

“तो तुम क्या करती हो, अलावा ख़ूबसूरत होने के?” अभिषेक ने मुझसे हाथ मिलाते हुए पूछा।

“एक्सक्यूज़ मी!” मैंने जवाब दिया। “मुझे इससे थोड़ी कम बेहूदा बात की उम्मीद थी।”

“ओह! लेकिन यह सच है। तुम बहुत ख़ूबसूरत हो।”

उसकी मुखर और बेशर्मी भरी चापलूसी पर मैं चकित थी और मुझे समझ नहीं आया कि मैं क्या कहूं।

“तुम लोगों से बाद में मिलते हैं। हमें बहुत काम देखने हैं,” संजना ने मेरे बचाव में आगे आते हुए कहा।

“तुम्हारी लिस्ट कहां है?” उसने पूछा। उसने और मैंने मिलकर एक विस्तृत सूची बनाई थी जिसमें भाग लेने वाली सभी लड़कियों के नाम, उनके लिए आवश्यक वस्तुएं, उनकी प्रतियोगिताओं के समय, तारीख़ और उन स्थलों की जानकारी थी जहां उन्हें पहुंचना था, और साथ ही परिवहन की तफ़्सील भी दर्ज थीं कि कौन सी कॉलेज बस उन्हें कहां से और किस समय लेगी। इसमें बहुत प्लानिंग करनी पड़ी थी और मैंने सब कुछ एक बहुत ही प्यारी मोटी हार्ड बाउंड ब्राउन लैदर की डायरी में लिखा था जो मेरे डैड ने मुझे गिफ़्ट की थी। डायरी में महान कलाकारों की पेंटिंगों की बहुत सी उच्चस्तरीय ग्लॉसी तस्वीरें भी थीं। मुझे वह डायरी बहुत पसंद थी और यह बहुत काम भी आई। मैंने उसे अपने बैग से निकाला और हम दोनों प्रिया और अन्य पदाधिकारियों के साथ मिलकर सारे विवरण को देखने लगे।

हमने दो-दो पदाधिकारियों से युक्त तीन टीमें बनाई थीं और तय किया था कि हर टीम तीन विभिन्न आयोजन स्थलों पर मौजूद रहेगी जहां प्रतियोगिताएं होने वाली थीं, ताकि अगर कोई भी आकस्मिक समस्या सामने आए तो उससे निबटा जा सके। संजना और मैं रवि वर्मा ऑडिटोरियम की ओर चल दिए जहां पब्लिक स्पीकिंग और बाद में वैस्टर्न डांस प्रतियोगिताएं होनी थीं। मगर मुझे इस बाद का अंदेशा नहीं था कि समस्या हमारे आयोजन स्थल पर ही आ खड़ी होगी।

“अरे, अंकिता। हमारे कॉलेज से इंग्लिश इलोक्यूशन के लिए कोई नहीं है,” सुवी ने घबराते हुए कहा।

“क्या हुआ? जीना को यहां होना चाहिए था। सिंधु को क्या हुआ? ऐसा कैसे कि दोनों ही वहां नहीं हैं?” मैंने पूछा, अपनी डायरी में देखते हुए मेरी आवाज़ में घबराहट झलकने लगी थी। प्रतियोगिता बस बीस मिनट में शुरू होने वाली थी और वह दिन की पहली प्रतियोगिता थी।

“आज सुबह ही जीना की दादी गुज़र गई थीं। उसके पास फ़ोन आया और उसे जाना पड़ा। सिंधु को लैरिंजाइटिस हो गया है और वह एक शब्द भी नहीं बोल पा रही है। अभी जब होस्टल से दूसरी बस आई तो मुझे ये सब पता लगा।”

“उफ! अब क्या करें?” मैंने कातरता से संजना को देखा।

जीना और सिंधु उत्कृष्ट वक्ता थीं और पिछले साल इसे जीत चुकी थीं। वे मजबूत प्रत्याशी थीं और उनके बिना मैं अपंग महसूस कर रही थी।

संजना के आत्मसंयम को मैं सराहे बिना न रह सकी। “ऐसी बातें होती रहती हैं,” उसने बिना परेशान हुए कहा। “चिंता मत करो। जीना की जगह मैं चली जाऊंगी और तुम सिंधु की जगह जाना,” उसने कहा।

“क्या? मैं?” मैं भौचक्की थी। “मैंने तो पहले कभी यह नहीं किया है।”

“शांत हो जाओ। और कोई विकल्प नहीं है। अगर कोई नहीं गया तो हमारे पॉइंट मारे जाएंगे। तुम्हें उसकी जगह जाना ही होगा।”

उस दिन ऑडिटोरियम में मैंने जब माइक पकड़ा और उस दिन के विषय “क्या मंडल कमीशन की रिपोर्ट न्यायोचित है?” पर बोली तो मैं ख़ुद को बहुत बेवकूफ़ और बग़ैर तैयारी का महसूस कर रही थी। मुझे कुछ पता नहीं था कि मैंने क्या बोला। मैंने अख़बारों में मंडल कमीशन की रिपोर्ट पढ़ी भी नही थी। संजना को इस बारे में अच्छी जानकारी थी। बजाहिर अपने तृतीय वर्ष में उसने इस विषय पर एक पेपर भी लिखा था। ढाई मिनट तक मैं किसी तरह हकलाती, अटकती बोलती रही और फिर बात को ख़त्म करके उतर आई, शर्मिंदगी और झिझक से मेरे गाल तमतमा रहे थे। संजना बहुत अच्छा बोली और जब उसने अपना वक्तव्य ख़त्म किया तो सारा ऑडिटोरियम तालियों और वाहवाही से गूंजता रहा।

“पहली बार के लिए तुम क़तई बुरी नहीं थीं,” संजना ने बाद में दिलासा दिया।

“बुरी नहीं थी? मैं भयानक थी। मैं तीन मिनट से भी कम बोली थी।”

“वैसे भी ज़्यादा से ज़्यादा छह मिनट ही मिलते हैं। तीन मिनट सच में बुरे नहीं हैं,” उसने ज़ोर दिया।

जब परिणाम घोषित हुए, तो अभिषेक प्रथम आया था, संजना द्वितीय रही थी। दर्शकों में बैठी हमारी लड़कियों ने ऑडिटोरियम गुंजा दिया और इस हुल्लड़ में मैं भी उनके साथ थी। मुझे राहत मिली थी कि हमें कम से कम द्वितीय स्थान तो मिल गया। समग्र चैंपियनशिप की तालिका में हर पॉइंट से मदद मिलती जो कि हमारा लक्ष्य था।

सिंफ़नी का दूसरा दिन आराम से निकल गया, कोई ग़ैरहाज़िर नहीं था, कोई गड़बड़ नहीं हुई और सब कुछ एकदम सटीकता से हुआ। घंटों खड़े रहने से मेरी टांगें दुखने लगी थीं और मुझे अहसास हुआ कि हाई हील्स पहनना बहुत तकलीफ़देह ग़लती थी। दिन ख़त्म होने तक हम समग्र चैंपियनशिप में दूसरे स्थान पर थे।

घर लौटते हुए बस में प्रिया ने कहा, “हम सब देख रहे थे कि अभि आज दिन भर तुम्हारे आसपास मंडराता रहा था, ख़ासकर तब जब तुम बैठी थीं। तुम्हारे पास से हटकर ही नहीं दे रहा था।”

“रहने दो!” मैंने कहा। “वह तो ऐसे ही वहां बैठ गया था। शायद थोड़ी-बहुत बात करने। धीरेन और क्रिस्टी भी तो बैठे थे। ऐसा तो है नहीं कि मैं केवल उसके साथ ही बैठी थी। और वह तो सबको ऐसे ही देखता है। तुम्हें तो पता होना चाहिए!” मैंने अपना बचाव किया।

“नहीं, मैं उसे जानती हूं। अभि बाकी लड़कों की तरह नहीं है। देखो, क्रिस्टी का ऐसा करना सामान्य होता। पता है पिछले वैलेंटाइन पर क्रिस्टी ने क्या किया था?”

“क्या?” मैंने उत्सुकता से पूछा।

“उसने चौदह लाल गुलाब और चौदह ‘आई लव यू कार्ड दिए थे।”

“वाह, तुम्हें?” मैंने पूछा।

“तकनीकी रूप से सही जवाब हां होगा। लेकिन मेरे अलावा उसने तेरह और लड़कियों को दिए थे,” वह हंसी।

सब लोग हंसी में शामिल हो गए।

“और अभि ने किसे दिया?” मैंने पूछा, उत्सुकता अब मुझ पर हावी होने लगी थी।

“किसी को नहीं!” प्रिया ने विजयी भाव से कहा। “देखा, उसे तुम्हारा इंतज़ार था!”

“शट अप,” मैंने कहा। लेकिन मैं मुस्कुरा रही थी।

सिंफ़नी के तीसरे दिन, स्थितियां हमारे पक्ष में मुड़ गईं। यह नज़दीकी फ़ैसला था। हम बस दस पॉइंट से समग्र चैंपियनशिप जीत पाए थे और वह भी वैस्टर्न डांस में अपनी जीत की वजह से। हमारी लड़कियों ने बहुत ही अच्छा डांस किया था।

“याऽऽऽऽऽ!” जैसे ही उद्घोषक ने परिणाम का ऐलान किया, लड़कियां सबको बहरा करते हुए चिल्ला पड़ी थीं। वे कूद रही थीं। वे चीख़ रही थीं, शोर मचा रही थीं। आपस में लिपटती हुई वे एक-दूसरे पर गिरी जा रही थीं। संजना और मैं पहले ही बैकस्टेज पहुंच गए थे।

मैंने जुआना और सारी डांसर्स को गले से लगा लिया।

जुआना ख़ुशी से रो रही थी

“थ्री चीयर्स फ़ॉर सेंट एग्निस। हिप हिप...” संजना ने कहा।

“हुर्रे!” लड़कियां चिल्लाईं।

जब तक पुरस्कार वितरण समारोह शुरू हुआ शाम ढल गई थी। उस साल *सिंफ़नी* की समग्र चैंपियनशिप की बड़ी सी चमचमाती ट्रॉफ़ी लेते हुए

हमें बहुत अच्छा महसूस हो रहा था। संजना, प्रिया और मैंने उसे लिया और फिर हमने बाकी सब लड़कियों को स्टेज पर बुला लिया। सिस्टर इवेंजेलाइन, सिस्टर बर्था और अन्य सभी वाक़ई ख़ुश होंगी। हमने उन्हें निराश नहीं किया था। इससे भी ज़्यादा अहम तौर पर यह हमारे लिए बहुत बड़ा प्रोत्साहक था क्योंकि हमने ख़ुद को भी निराश नहीं किया था। इस विजय के साथ अपनी क्षमताओं में हमारा विश्वास बहुत बढ़ गया था। यह आसान नहीं था मगर हमने यह कर दिखाया था।

"विजेता की दावत। मेरे साथ एक कप कॉफ़ी पियोगी?" सारा आयोजन समाप्त होने के बाद अभिषेक ने पूछा। सारा दिन मैं दौड़-भाग करती रही थी, मुझे बहुत भूख लगी थी और अचानक थकान मुझ पर हावी हो गई थी। कॉफ़ी का प्रस्ताव बहुत आकर्षक था लेकिन मुझे समझ नहीं आ रहा था कि मैं अभिषेक के साथ जाना चाहती हूं या नहीं। मैंने अपने बचाव के लिए सुवी की तलाशा लेकिन वह कहीं दिखाई नहीं दे रही थी।

"तुम जाओ, मुझे पता है तुम्हें कॉफ़ी की कितनी ज़रूरत है," प्रिया ने कहा। "मैं भी साथ चलती लेकिन मैं जुआना और दूसरी लड़कियों का इंतज़ार कर रही हूं। वे कपड़े बदल रही हैं और मैं समय की रखवाली हूं," वह अपने हाथ आगे करते हुए हंस दी। दोनों बांहें वैस्टर्न डांस की लड़कियों की घड़ियों और ब्रेसलेट से भरी थीं। "भगवान के लिए जाओ। एक कप कॉफ़ी के लिए इतना मत सोचो!" प्रिया ने फिर कहा।

"ठीक है, चलते हैं," मैंने अभिषेक से कहा।

"हे भगवान! तुम सच में मान गईं? मुझे तो अपनी किस्मत पर यक़ीन ही नहीं हो रहा! मुझे आज का अपना राशिफल देखना होगा।"

"शट अप," मैं मुस्कुराई, "मुझे कॉफ़ी की बहुत ज़रूरत है।"

हम कैंटीन में गए जो ऑडिटोरियम से दस मिनट की दूरी पर एक छोटी सी पहाड़ी पर थी। हम बैठ गए तो उसने कटलेट भी मंगा लिए। मैंने एक और कुर्सी खींची तो वह मेरे लिए उसे लाने भागा।

"रहने दो, मुझसे लाने को कहो। लेडीज़ को अपने लिए कुर्सियां नहीं खींचनी चाहिए।"

"लेडीज़ को अपने पैर भी ऊपर नहीं रखने चाहिए, लेकिन माफ़ करना मैं अभी यही करने वाली हूं। सॉरी।" मैंने कहा, और उस अतिरिक्त कुर्सी पर अपने पैर रख लिए जो उसने खींची थी।

कटलेट खाते और उस बेहद ज़रूरी लग रही कॉफ़ी को पीते हुए हम ख़ामोश बैठे थे। मैं पूरी तरह से अपने ख़्यालों और दिन भर की घटनाओं में डूबी हुई थी। मेरा दिवास्वप्न अचानक तब टूटा जब अभि ने कहा, "अरे, ये तो तुम्हारे कॉलेज की बसें ही हैं ना, वापस जा रही हैं?"

मैंने पहाड़ी से नीचे को जाती उन दोनों पीली बसों को देखा और उछल पड़ी। जब बसें मुड़ीं तो मैंने देखा लड़कियां बाहर निकली हुई एक लय में चीख़ रही थीं, “मज़े करो। एंजॉय। कॉलेज में मिलेंगे।”

मैंने अभि को देखा और उसने मुस्कुराते हुए कंधे उचका दिए। मुझे लड़कियों पर बेहद ग़ुस्सा आ रहा था। वे इतनी लापरवाह कैसे हो सकती थीं कि मुझे पीछे छोड़ गईं और आख़िर उन्होंने यह कैसे सोच लिया कि मैं अभि के साथ समय गुज़ारना चाहती थी? मुझे सुवी पर भी ग़ुस्सा आ रहा था, क्योंकि मुझे उससे उम्मीद थी कि वह दूसरी लड़कियों को समझाएगी। मगर फिर, जीत के नशे में डूबी लड़कियों का गुट पूरी तरह पगलाया हो सकता था और मुझे शक था कि उन्होंने उसकी बात सुनी भी होगी या नहीं। लेकिन अभी फिलहाल तो समस्या कॉलेज वापस पहुंचने की थी जो पूरे पैंतालीस किलोमीटर दूर था। साढ़े सात बज चुके थे, मैं सार्वजनिक बस पकड़ सकती थी, बशर्ते कि मैं बस स्टॉप तक चलकर जाती और वहां इंतज़ार करती। मुझे तो यह भी नहीं पता था कि अगली बस किस समय आएगी, और यह भी यक़ीन नहीं था कि एक सुदूर सुनसान इलाक़े में इतनी देर गए बस स्टॉप पर अकेले इंतज़ार करना सुरक्षित होगा या नहीं। ज़्यादातर छात्र तो कैंपस में ही रहते थे और ज़्यादातर शहर आने-जाने के लिए अपने वाहनों का इस्तेमाल करते थे। राज्य की परिवहन बसों का प्रयोग वास्तव में कोई नहीं करता था।

“सुनो,” अभि ने कहा, “मैं तुम्हें छोड़ सकता हूं।”

“मैं बस ले लूंगी।”

“तो मैं तुम्हारे साथ बस स्टॉप पर इंतज़ार करूंगा। लेकिन आख़री बस शायद जा चुकी होगी। हम बस अपना वक़्त ही बर्बाद करेंगे।”

मैं अभी भी हिचकिचा रही थी।

“ए, मैं इतना बुरा बंदा नहीं हूं। मैं वादा करता हूं, मैडम, कि आप मेरे साथ बिल्कुल सुरक्षित रहेंगी।”

मैं तैयार हो गई। वैसे भी और कोई रास्ता भी नहीं था। बाद में मुझे पता लगा कि यह सब बेहद बारीकी से बनाई गई उस योजना का हिस्सा था जिसे अभि ने प्रिया, संजना और दूसरी लड़कियों के साथ मिलकर बनाया था, ताकि वह मुझे अपनी बाइक पर ले जा सके। शुक्र है उस वक़्त मुझे यह पता नहीं था। वर्ना शायद मैं ग़ुस्से से फट पड़ती।

“देखो, मेरे पास बुलेट है,” बड़े गर्व से अपनी बाइक निकालते हुए उसने कहा।

“इस वक़्त तो जो बुलेट तुम अपनी खोपड़ी में मारोगे, वही मुझ पर कोई असर कर सकती है।” मैंने कहा।

वह हंसा और उसने बाइक स्टार्ट कर दी।

“और अपनी अहमकाना ‘अचानक ब्रेक लगाने’ वाली चालें मेरे साथ चलने की कोशिश मत करना,” उसके पीछे बैठते हुए मैंने चेतावनी दी, अचानक मैं कुछ अजीब और संकोची सा महसूस करने लगी। “और सुनो, मैं तुम्हारा कंधा पकड़ रही हूं लेकिन प्लीज़ किसी खामख़्याली में मत पड़ना।” मैंने जोड़ा, और ख़ुद को संभालने के लिए अपना दायां हाथ उसके कंधे पर रख दिया। ऐसा करते हुए मुझे बहुत ज़्यादा संकोच हो रहा था लेकिन मैं किसी भी सूरत में इस अनचाहे, अनियोजित और अप्रत्याशित एडवेंचर में बाइक से गिरना नहीं चाहती थी।

“बस भी करो, अंकिता। मैं तो पहले ही सातवें आसमान पर हूं। और मैं इतना घटिया भी नहीं हूं कि ब्रेक की चाल आजमाऊं। लेकिन क्या मैं जान सकता हूं कि तुम इस बारे में कैसे जानती हो?”

हर लड़का जानता है कि जब दुपहिया सवारी पर कोई औरत उसके पीछे बैठती है, तो उसके लिए उस औरत के स्पर्श का अहसास करने का सबसे आसान तरीका अचानक ब्रेक लगाना होता है, झटके से औरत का बदन आगे झुकता है और उसके बदन से टकरा जाता है। “मेरा एक भाई है। वह मुझे बातें बताता है।” मैं मुस्कुरा दी, और अभिषेक ने एक्सीलरेटर दबाया और बाइक शहर की ओर दौड़ पड़ी।

4

मोटरसाइकिल पर सवार एक लड़की

“तो तुम्हारे भाई ने तुम्हें और क्या बताया है?” अभि ने थोड़ा सा मुड़ते हुए पूछा ताकि बाइक की तेज़ आवाज़ में मैं उसे सुन सकूं।

“तुम नहीं जानना चाहोगे?” मैंने जवाब दिया।

“क्या?” उसने फिर पूछा।

“मैं तफ़्सील नहीं बताने वाली और, देखो, प्लीज़ मुड़कर मुझसे बात मत करो। इससे मैं नर्वस हो रही हूं और प्लीज़ अपनी आंखें सड़क पर रखो।”

“यस, मैडम,” उसने कहा और वह अपनी बात पर पक्का रहा। अब मैं थोड़ा सहज महसूस करने लगी थी। लेकिन इसी के साथ मुझे अजीब क़िस्म का अपराधबोध भी महसूस हो रहा था कि कहीं न कहीं मैं वैभव के साथ बेवफ़ाई कर रही हूं। यह बेकार बात थी, मैंने तर्क दिया। ऐसा तो था नहीं कि मैं अभि के साथ बाइक पर जाना चाहती थी, और ऐसा भी नहीं था कि मेरे पास और कोई रास्ता था। लेकिन फिर भी अपराधबोध की वह हल्की सी चुभन दूर ही नहीं हो रही थी। मैंने उसे अपने दिमाग़ में पीछे धकेल दिया।

“संभलकर, मैं धीमे कर रहा हूं और मुझे ब्रेक लगाने हैं,” अभि ने कहा। उसने तीन बार और यह कहा, हर बार वह बाइक धीमी करता था।

मैं मुस्कुरा दी क्योंकि वह वाक़ई अतिरिक्त सावधानी बरतने की कोशिश कर रहा था।

“अच्छा, ठीक है,” जब चौथी बार उसने यह दोहराया तो मैंने आख़िर उससे कह दिया। “इतनी फ़िक्र मत करो। मैं जानती हूं तुम्हारे इरादे बुरे नहीं हैं।”

“उफ़, भरोसा करने के लिए शुक्रिया,” उसने कहा।

हज़ारों सितारों के बिखर जाने से रात का आसमान बेहद ख़ूबसूरत लग रहा था। चांदनी रात हर चीज़ को एक रुपहली आभा प्रदान कर रही थी। यह नज़ारे की दिलकशी को बढ़ा रही थी और मुझे सच में सैर का मज़ा आने लगा था। हमें अभी भी तीस किलोमीटर का सफ़र तय करना था। अभि थोड़ी-थोड़ी देर बाद पूछ रहा था कि मैं आराम से तो हूं। वह चला भी बहुत आराम से रहा था। अब तक मैं एकदम सहज और बहुत सुकून से हो गई थी।

कोचीन का हाईवे एक छोटे से गांव से होकर गुज़रता था। यह वीरान पड़ा था क्योंकि सारी दुकानें बंद थीं और खपरैल की छतों वाले छोटे-छोटे घरों के दरवाज़े भी बंद थे। अधिकांश घरों की डयोढ़ी पर एक लौ वाले पीतल के दीये जल रहे थे, जिनकी लौ ऐसे थरथरा रही थीं मानो नृत्य कर रही हों। पीतल के दीये ज़मीन पर रखे जाने वाले दीये थे जिन्हें या तो फ़र्श पर रखा गया था या लकड़ी के छोटे से तख़्तों पर। केरल में यह रिवाज़ था कि धन की देवी लक्ष्मी और समृद्धि को घर में लाने के लिए ड्योढ़ी पर दीप जलाना चाहिए। अधिकांश गांवों में अभी भी इसका पालन किया जाता है। मेरा दिल चाह रहा था कि काश, इस दृश्य की ख़ूबसूरती को क़ैद करने के लिए मेरे पास कैमरा होता—रात के अंधेरे की पृष्ठभूमि में पीतल के दीपक का प्रकाश और खपरैल वाले घरों की ख़ूबसूरती। मैंने अपने मन में इसकी तस्वीर उकेर ली।

गांव के बाद, उसकी सीमा पर कुछेक ठेलेवाले गर्म-गर्म दोशे और भाप उठती इडली और अप्पम बेच रहे थे। ये उत्तरी भारत के ढाबों के समकक्ष थे। ट्रक ड्राइवर अक्सर इन जगहों पर आते थे।

“रुकें?” अभि ने पूछा। “यहां खाना वाक़ई स्वादिष्ट होता है। इन ठेलों को थाटु कडा कहते हैं। तुमने कभी किसी थाटु कडा में खाया है?”

“नहीं, लेकिन एक ढाबे में खाया है। तुम चाहो तो रुक जाओ।”

“ख़ैर, ढाबे में तुम्हें दोशा और अप्पम नहीं मिलेगा। तुम्हें यह खाकर देखना चाहिए। तुम्हें अफ़सोस नहीं होगा, वादा करता हूं,” बाइक रोकते हुए उसने कहा। हम बाइक से उतरे और थाटु कडा की ओर बढ़े।

लकड़ी की एक बेंच पड़ी थी, हम दोनों उस पर बैठ गए और अभि ने एक प्लेट दोशा और अप्पम मंगाया। दुकान पर मौजूद आदमी हमें अजीब ढंग से देख रहा था। साथ ही कुछ ट्रक ड्राइवर भी जिनके ट्रक पास में ही खड़े थे और वे वहां खाना खा रहे थे। स्पष्ट रूप से, पुरातनपंथी केरल में इतनी रात में बाइक पर आए एक नौजवान जोड़े का उनके दिमाग़ में केवल एक ही मतलब था।

अभि ने मेरी असहजता को भांपा और कहा, “उन पर ध्यान मत दो। बस मुझे देखो और खाने पर ध्यान दो।”

“तुम्हें यक़ीन है यह सुरक्षित है?” मैंने बेध्यानी में उसके थोड़ा पास खिसकते हुए पूछा।

“शांत रहो—तुम मेरे इलाक़े में हो। यह एंते केरलम है। और जब तुम मेरे साथ हो तो कोई गड़बड़ नहीं होगी।” वह आत्मविश्वास से मुस्कुराया।

मैंने अब तक अपनी ज़िंदगी में इतने स्वादिष्ट अप्पम और दोशे कभी नहीं खाए थे। खाने के बाद हमने गर्मागरम चाय पी। पूरी तरह तृप्त जिह्वा

के साथ पेट भरा होने का अहसास, और रात के आसमान के तले ख़ूबसूरत समां और अच्छा साथ ज़िंदगी के सबसे खुशगवार अनुभवों में से है। मैं तृप्त थी और ख़ुश थी। अभि ने लगभग तुरंत ही इस अहसास में सेंध लगा दी।

"सुनो, मुझे तुमसे कुछ कहना है," उसने कहा और उसका लहजा ऐसा था जिसे मैं पलक झपकते पहचान गई थी। मेरे कान खड़े हो गए। वैभव की आवाज़ में मैं वही लहजा सुन चुकी थी।

हे भगवान, प्लीज़ इसे मेरे लिए अपने प्यार का इज़हार करके इस इतने ख़ूबसूरत समय को बर्बाद मत करने देना जो हमने साथ गुज़ारा है।

"अंकिता, मैं तुम्हें सच में प्यार करता हूं," उसने कहा।

मुझे समझ नहीं आया क्या कहूं। मैं दूसरी ओर देखने लगी। फिर मैं पलटी।

मैं अवाक थी।

"तुम मुझे कितने दिन से जानते हो, बस तीन दिन से?" आख़िर मैंने कहा।

"मैं मज़ाक़ नहीं कर रहा हूं, अंकिता। मैंने तो जिस पल तुम्हें देखा था, तभी से तुम्हें प्यार करने लगा हूं। इससे पहले कभी मैंने किसी के लिए ऐसा महसूस नहीं किया है, यक़ीन करो। मैं तुम्हारे लिए पागल हूं। सच कह रहा हूं। और ज़िंदगी में इससे पहले ऐसा कुछ मैंने कभी नहीं किया है। यह जज़्बात का इज़हार वग़ैरा, यह मेरे बस का नहीं है, लेकिन तुम्हारे साथ मैं अब इसे और रोक नहीं सकता," उसने सीधे मेरी आंखों में देखते हुए कहा। उसकी आंखों में ईमानदारी और इस किस्म की बेख़ौफ़ दीवानगी की चमक थी जिसे समझ पाना मुश्किल था।

मैं तो भौचक्की ही रह गई थी। मुझे ऐसे 'बेबाक इज़हार' की उम्मीद नहीं थी, हालांकि जब उसने कहा था कि उसे कुछ कहना है तो मुझे थोड़ा-बहुत अंदाज़ा तो हो गया था।

अब बस एक ही काम किया जा सकता था कि मैं उसे वैभव के बारे में बता दूं।

और मैंने बता दिया।

"मगर मेरा एक बॉयफ्रेंड है।"

"और वो जनाब कौन हैं, क्या मैं जान सकता हूं? क्या मैं उसे जानता हूं?"

“नहीं, तुम उसे नहीं जानते। वह मेरा क्लासमेट है। हम स्कूल में साथ थे। अब वह दिल्ली में है।”

लगभग तुरंत ही उसके चेहरे पर राहत छा गई।

“यानी वह यहां है भी नहीं।”

एक पल बाद उसने जोड़ा, “मगर मुझे तुम्हारी बात पर विश्वास क्यों नहीं हो रहा?” उसने खोजी अंदाज़ में, भावहीन नज़र से मुझे देखते हुए पूछा।

“हम्म—शायद इसलिए कि तुम उससे मिल नहीं सकते?”

“हा हा हा,” वह हंसा। “इसलिए कि तुमने उसे अभी-अभी गढ़ा है और वह कोई है ही नहीं!” उसने विजयी अंदाज़ में कहा।

“अरे नहीं, वह है। मेरा मतलब उस तरह से नहीं था,” मैंने जल्दी से सफ़ाई दी।

“मुझे यक़ीन है कि तुमने मुझसे छुटकारा पाने के लिए उसे अभी-अभी गढ़ा है। लेकिन मैं इतनी आसानी से हार नहीं मानने वाला।”

“देखो,” मैंने कहा, “तुम्हें यक़ीन दिलाने के लिए मैं कुछ नहीं कर सकती। मगर यह सच है।”

“प्रिया ने मुझे बताया था कि तुम्हारा कोई बॉयफ्रेंड नहीं है।”

“तुमने मेरे बारे में प्रिया से पूछा था?! उसे मेरे बारे में क्या पता है? तुम्हें सुवी से पूछना चाहिए था। वह मेरी सबसे करीबी दोस्तों में से है।”

“मैंने जो कहा, वह सच है, अंकिता। प्लीज़ कुछ मत कहो। प्लीज़ इस बारे में सोचना। मैं तुमसे बस इतना कह रहा हूं।”

“देखो, हमने बहुत अच्छा समय गुज़ारा है। इसे भूल जाते हैं। तुम मुझे छोड़ आओ।” मैंने उसकी बाइक की ओर बढ़ते हुए कहा।

बाक़ी सफ़र हमने ख़ामोशी में तय किया।

***

अगले दिन किसी त्योहार की वजह से छुट्टी थी और मैं ख़ुश थी कि इससे मुझे आराम करने और सारी बातों के बारे में सोचने का वक़्त मिल गया था। अगली सुबह जब मेरे माता-पिता टहलने गए हुए थे तो फ़ोन की कर्कश घंटी से मेरी आंख खुल गई। सुवी थी। उसने कहा कि कुछ देर पहले अभि कॉलेज के गेट पर उसे पूछता हुआ आया था। उसने होस्टल की वार्डन से झूठ बोल दिया था कि वह सुवी का कज़िन है। सुवी को अंदाज़ा हुआ कि मुझसे जुड़ी कोई बात हो सकती है और इसलिए वह उससे

मिली। उसने उसे मेरी ब्राउन लैदर की डायरी दी जिसे मैं ऑडिटोरियम में भूल आई थी। उसे डायरी में उसे "नथिंग्ज़ गॉन्ना स्टॉप अस" गाने के बोल मिले जिन्हें मैंने एक काग़ज़ पर लिख लिया था। उसे यक़ीन था कि मैंने वह गाना उसके लिए लिखा है और अब नख़रे दिखा रही हूं। उसने यह सब सुवी से कहा था और उसे एक बंद लिफ़ाफ़ा भी दिया था जो सुवी को मुझे देना था। सुवी ने कहा कि जब उसने उसे वैभव के बारे में सचाई बताने की कोशिश की तो उसने इस पर विश्वास ही नहीं करके दिया।

अभि कितना इडियट है। वह यह सोच भी कैसे सकता है कि मैंने यह गाना उसके लिए लिखा होगा। उसने सुवी या मेरा विश्वास क्यों नहीं किया?

उस दिन मुझसे कॉलेज पहुंचने का इंतज़ार नहीं हो रहा था। सुवी और मैंने पहली क्लास बंक कर दी और कॉलेज की लाइब्रेरी जा पहुंचे। लाइब्रेरी बहुत बड़ी थी और वहां ऐसे बहुत से कोने थे जहां हम बिना किसी के परेशान किए बात कर सकते थे। उसने मुझे वह ख़त और मेरी डायरी पकड़ा दी जो अभि ने उसे दिए थे। वह एक सील्ड पीला लिफ़ाफ़ा था जिस पर छोटी-छोटी साफ़ लिखाई में पता लिखा था।

"चलो," सुवी मुस्कुराई। "खोलो इसे," उसने मेरे मन की उथलपुथल और उलझन से बेख़बर रहते हुए मनुहार की। मैं ख़त खोलना नहीं चाहती थी। मुझे उससे डर लग रहा था। मुझे लग रहा था कि यह ग़लत है। मुझे लग रहा था कि मैं वैभव को धोखा दे रही हूं।

"मेरा मन नहीं हो रहा," मैंने धीरे से कहा।

"मूर्ख मत बनो। लाओ, मैं खोलती हूं," उसने ख़त लेते हुए कहा।

"नहींऽऽऽ!" मैंने उससे ख़त वापस छीनकर उसे अपनी डायरी में रखते हुए कहा। "मैं इसे घर पर खोलूंगी।"

"मुझे देखना है कि उसने क्या लिखा है। खोलो न, खोलो न," उसने ज़िद की।

"हां, तुम इसे पूरा पढ़ोगी, लेकिन तभी जब मैं तैयार होऊंगी," मैंने अंतिम फ़ैसला लेते हुए कहा, और डायरी बंद करके खड़ी हो गई।

बाद में घर पर अपने कमरे के दरवाज़े को बंद करने के बाद मैंने उसे खोला। उसने बहुत महंगा वाला हैंडमेड काग़ज़ इस्तेमाल किया था। उसकी लिखाई छोटी, स्पष्ट और बहुत साफ़ थी।

डियरेस्ट अंकिता , उसने शुरू किया था और मैं सिकुड़ सी गई। मैं उसकी *डियरेस्ट* नहीं थी।

तुम्हें डियरेस्ट कहने के लिए माफ़ी चाहूंगा, लेकिन इस समय मैं तुम्हारे लिए ऐसा ही महसूस कर रहा हूं।

मैं लगभग उछल गई—हे भगवान, क्या वह मेरा मन पढ़ सकता था?!

तुमने मेरी ज़िंदगी को एक नई दिशा दी है और अब तक मेरी ज़िंदगी में कोई चीज़ इतना मायने नहीं रखती थी। स्वामी विवेकानंद ने कहा था, "हम वही होते हैं जो हमारे विचार हमें बनाते हैं। इसलिए आप जो सोचते हैं उसका ध्यान रखें। विचार जीवित रहते हैं, वे दूर तक जाते हैं।" फ़िलहाल तो; अंकिता, मेरे विचार केवल तुम पर केंद्रित हैं। मैं तुम्हारे सिवा और कुछ नहीं सोच पा रहा हूं। सारी रात जगा हुआ मैं सोचता, और फिर-फिर सोचता रहा, और अपने ही जज़्बात कि गहराई से मैं हैरान हूं। मैंने कोशिश की कि इस तरह बर्ताव न करूं। मुझे यह नापसंद है, लेकिन मैं कुछ नहीं कर सकता।

उफ़, तुम बहुत प्यारी और वाक़ई बहुत ख़ूबसूरत हो। लेकिन महज़ इसलिए मैं तुम्हारे लिए ऐसा महसूस नहीं करता हूं। जैसे तुम बोलती हो, जैसे तुम मुस्कुराती हो और जिस तरह तुम इतनी आसानी से हैरान हो जाती हो, वह मुझे अच्छा लगता है। मुझे तुम्हारा उत्साह अच्छा लगता है, और जैसे तुम सोचती हो कि सब कुछ तुम्हें ही करना है, वह भी मुझे अच्छा लगता है। तुम्हारी हाज़िरजवाबी और चीज़ों को कामयाब बनाने के लिए तुम्हारा इतनी मेहनत करना मुझे अच्छा लगता है। मुझे वह भी अच्छा लगा था जब बाइक पर तुमने मुझे चेतावनी दी थी कि मैं तमीज़ में रहू (यक़ीन करो, तुम चेतावनी नहीं भी देतीं तो भी मैं तुमसे बेहद इज़्ज़त के साथ पेश आता। तुम इसकी हक़दार हो) उस दिन सिंफ़नी में तुम्हारा हौसला और जिस तरह तुम मंडल कमीशन पर बोली थीं, वह भी मुझे बहुत अच्छा लगा था, हालांकि उस विषय की तुम्हें कोई जानकारी नहीं थी। स्टेज पर जाने के तुम्हारे साहस को मैंने सराहा था। उस दिन भले ही तुमने कोई पुरस्कार न जीता हो लेकिन मेरे विचार में तुम स्पष्ट विजेता थीं।

बोलते समय जैसे तुम्हारी आंखें चमकती हैं, वह मुझे बहुत अच्छा लगता है। वे तुम्हारे शब्दों की लय पर नाचती सी लगती हैं। तुम ज़िंदगी से भरपूर हो। तुम मुझे प्रेरित करती हो और मुझमें अपने जैसा बनने की इच्छा जगाती हो। जैसे तुम्हारे बालों की वह लट तुम्हारे माथे पर ढलक आती है और जैसे तुम उसे अपने कानों के पीछे खोंसती रहती हो, वह मुझे बहुत अच्छा लगता है। ओह हां—मुझे तुम्हारी साफ़ेद हाई हील्स भी बहुत अच्छी लगी थीं। मुझे वह काला टॉप भी बहुत प्यारा लगा था जो तुमने पहना था और जिसके साइड में चाक थे और तुम बार-बार उसे नीचे खींच रही थीं ताकि तुम्हारा बदन न दिखे, मुझे यह बहुत अच्छा लगा था। पहले दिन तुमने जो चांदी की चूड़ी पहनी थी और दूसरे दिन पहना नन्हे-नन्हे पोल्का डॉट्स वाला मोटा सा सफेद कड़ा भी मुझे बहुत अच्छा लगा था। मुझे तुम्हारे चांदी के बुंदे और बेमेल सोने की चेन भी अच्छी लगी थी। हां, मैंने देखा था! तुम्हारी हर छोटी से छोटी चीज़ को मैंने देखा था।

उसकी बातों पर मैं मुस्कुराए बिना न रह सकी। लगता था कि उसने सच में मुझसे जुड़ी हर छोटी से छोटी बारीकी पर ध्यान दिया था। पहला पन्ना यहीं ख़त्म हो गया था और नीचे उसने "पी.टी.ओ." लिखा था। मैं मुस्कुरा दी क्योंकि मैंने यह आख़री बार स्कूल में लिखा था, अपने असाइनमेंट्स में जब मुझे लगता था कि टीचर कहीं चूक गई हों, तो वे पन्ना ज़रूर पलट लें।

मैं पन्ना पलटने के लिए बहुत उत्सुक थी। "हे भगवान। अभि तो वैभव से बहुत अच्छा लिखता है।" यह ख़्याल दबे पांव मेरे मन में आया था, मुझे बहुत अपराधबोध हुआ और मैंने जल्दी से इसे परे खिसका दिया और दोनों की तुलना करने के लिए ख़ुद को फटकारा। जब मैंने पन्ना पलटा तो घबरा गई, लगभग अपने बिस्तर से उछलकर छत से टकरा ही गई थी, मानो अपने आरामदेह तकियों की बजाय सुलगते सरियों पर बैठी होऊं। लगभग दो इंच के कैपिटल अक्षरों में ख़ून से ये शब्द लिखे हुए थेः

"आई लव यू"

पहले कुछ अक्षर सबसे ज़्यादा गहरे थे और 'ओ' और 'यू' बहुत हल्के थे। और उनके नीचे उसने पैन से लिखा था, *हां, यह ख़ून है और मैं तुम्हें प्यार करता हूं, लेकिन मुझे लगता है कि मेरे बदन में इतना ख़ून नहीं है कि मैं अपना प्यार तुम पर साबित कर सकूं।*

अगले पन्ने पर बाईं ओर के निचले कोने में उसने अपना एक फ़ोटो चिपकाया था जिसे उसने आकार में काटा था (मैंने अनुमान लगाया कि यह किसी बड़े फ़ोटो से काटा होगा जिसमें शायद और लोग भी रहे होंगे)। इसके नीचे उसने लिखा था,

मैं भले ही मंडल कमीशन का समर्थक या आरक्षणवादी न होऊं लेकिन यक़ीनन मैं ख़ुद को तुम्हारे लिए आरक्षित रखना चाहता हूं।

मैं तुमसे कुछ देर बात करना चाहता हूं। प्लीज़ मना मत करना। मैं इतज़ार करूंगा।

मेरा सारा प्यार और फिर थोड़ा और,

अभि

और इसके नीचे उसने अपना फ़ोन नंबर और पता लिखा था और अपने घर का नक़्शा बनाया हुआ था। इस रास्ते को मैं पहचानती थी, क्योंकि शहर के उस हिस्से को मैं अच्छी तरह जानती थी और उसने सभी लैंडमार्क और अहम जगहें दर्शा दी थीं। मैं आसानी से अंदाज़ा लगा सकती थी कि उसका घर कहां है। निर्देश बहुत स्पष्ट थे और अच्छी तरह दर्शाए गए थे।

मेरा दिल अब एक मिनट में लाखों बार की गति से धड़कता मालूम दे रहा था। मुझे समझ नहीं आ रहा था क्या करूं। उत्सुकतावश मैंने ख़त को सूंघा, उस हिस्से को जिसे उसने ख़ून से लिखा था। उससे लोहांध सी आ रही थी। मैं मन ही मन हैरान हो रही थी कि क्या उसने ख़ुद को कहीं काटा था और अगर काटा था तो कौन सी उंगली को काटा था। क्या उसने अपना अंगूठा काटा था? या तर्जनी काटी थी? यह बंदा तो दीवाना लगता है। लेकिन फिर भी यह पागलपन भरी, गहरे क़िस्म की दीवानगी थी।

मैं सुवी को फ़ोन करने का इंतज़ार करने लगी। शाम को जब किसी पड़ोसी के यहां जाने के लिए मां घर से निकलीं तो मैंने मौक़े का फ़ायदा उठाया और उसके होस्टल का नंबर मिला दिया। कॉमन फ़ोन उसके होस्टल के कमरे से बहुत पास ही था और वह लगभग तुरंत ही लाइन पर आ गई।

“तुमने पढ़ लिया? उसने क्या लिखा है? बताओ, बताओ!” वह एकदम शुरू हो गई, यहां तक कि उसने औपचारिक हैलो भी नहीं कहा। हम उससे परे जा चुके थे।

“उसने लिखा है कि वह मुझसे कुछ देर के लिए मिलना चाहता है,” मैंने जवाब दिया, मैं एक ही वक़्त में अजीब सा, चकराया हुआ और क्या करूं यह समझने में नाकाम महसूस कर रही थी।

“अह-हा! उसने लिखा क्या है?”

“तुम्हें क्या लगता है? उसने अपने घर का रास्ता बताते हुए नक़्शा भी बनाया है और कहता है कि वह मेरा इंतज़ार करेगा।”

“तुम क्या करना चाहती हो?”

“इडियट, तुम्हारे ख़्याल से मैंने तुम्हें क्यों फ़ोन किया है?”

“तो मिल लो उससे,” उसने शरारत से हंसते हुए कहा।

“शट अप। मेरा मज़ाक़ बनाना बंद करो!”

“नहीं, मैं सच कह रही हूं। लड़का ऑब्सेस्ड लगता है। उसने पूरी शिद्दत से तुम्हें ख़त लिखा है। मुझे लगता है तुम्हें कम से कम उससे मिलकर सारी बात साफ़ कर देनी चाहिए।”

“मैं भी यही सोच रही थी। लेकिन पता नहीं, सुवी, यह बहुत ग़लत सा लगता है।”

“उफ़, एंक्स! ऐसा बर्ताव करना छोड़ो जैसे वैभव से तुम्हारी शादी हो गई है। और तुम विक्टोरियन युग में नहीं हो। तुम कितनी नैतिक और आदर्शवादी हो सकती हो? ख़ुद को क़ाबू में करो, लड़की। कभी-कभी तुम

दूसरों की, बल्कि कहना चाहिए वैभव की ख़ुशी देखने में कुछ ज़्यादा ही खो जाती हो।"

"ऐसा नहीं है," मैंने अपना बचाव किया। लेकिन मैं जानती थी कि उसकी बात में दम है। आदर्शवादी होना मेरे मिज़ाज में था और ज़्यादातर समय मेरे तौर-तरीकों पर यही बात हावी रहती थी कि वैभव क्या कहेगा, वह कैसे प्रतिक्रिया करेगा और वह क्या सोचेगा।

"तुम्हें वैभव को कुछ बताने की ज़रूरत ही नहीं है। अरे, तुम अभि से बस मिल ही तो रही हो, उसके साथ सो तो रही नहीं हो। कम से कम मेरा तो अनुमान यही है कि तुम नहीं सोओगी, वह भी पहली बार में ही," उसने शैतानी से कहा।

"शट अप!" मैं मुस्कुरा दी। "कल कॉलेज में मिलती हूं।"

"हां, बाइ और ख़त लाना मत भूलना," फ़ोन रखने से पहले उसने मुझे याद दिलाया।

मैंने सुवी की बातों पर ग़ौर किया। मुझे अभि की सफ़ाई देनी थी। मुझे उसे समझाना था कि मैं वैभव के लिए कैसा महसूस करती हूं। मुझे उसे बताना था कि पहले मैंने उससे जो भी कहा था, वह सच था। कम से कम मैंने ख़ुद को यही समझाया था।

मैंने जल्दी से अपनी घड़ी पर नज़र डाली। मां कम से कम आधे घंटे से पहले नहीं आएंगी। मैंने उसका नंबर मिलाया। पहली घंटी पूरी होने से पहले ही उसने फ़ोन उठा लिया। ऐसा लगा मानो वह इंतज़ार ही कर रहा था।

"हैलो, अभि?" मैंने हिचकिचाते हुए पूछा।

"मुझे पता था तुम फ़ोन करोगी!" वह विजयी अंदाज़ में चहका। "कब आ रही हो?"

"क्या मैंने ऐसा कहा कि मैं आऊंगी?" मैंने प्रतिवाद किया, मैं थोड़ा हैरान थी कि उसने मुझे कितनी अच्छी तरह नाप लिया मालूम होता है।

"तुम जरूर आओगी!" उसने निश्चितता के साथ जवाब दिया। "यह बताओ कब, और कितने बजे?"

"अम्म, मुझे इस बारे में सोचने दो। अगर तुम सच में अच्छे हो और मुझसे इल्तिजा करोगे तो मैं इस बारे में सोच सकती हूं," उसके उतावलेपन और हसरत को बढ़ाने का मज़ा लेते हुए मैं मुस्कुरा दी।

"ओह, इसी वक़्त तुम्हारे घर के बाहर लाउडस्पीकर लाकर मैं फ़रियाद कर सकता हूं, वायलिन बजा सकता हूं, या तुम चाहो तो फूल लेकर आ

सकता हूं।"

मुझे यक़ीन था कि वह यह कर सकता है।

"इस सबकी कोई ज़रूरत नहीं है। मैं शनिवार की दोपहर तीन बजे तुमसे मिलने आऊंगी।"

"इंतज़ार, इंतज़ार, इंतज़ार रहेगा," उसने कहा और फिर हमने विनम्रता से बाइ कहा और फ़ोन रख दिया।

जब वैभव का फ़ोन आया तो मैंने उससे अभि या उससे मिलने के लिए राज़ी हो जाने के बारे में एक शब्द भी नहीं कहा, हालांकि उस वक़्त मेरे दिमाग़ में सबसे ऊपर यही बात थी। अगर अपराधबोध मेरे टख़नों में बंधा पत्थर था तो मैं आसानी से समुद्र की तलहटी में डूब सकती थी। लेकिन मैंने उसे बड़ी आसानी से दरकिनार करके बेशर्मी ओढ़ ली थी और वैभव से ऐसे बात की मानो सब कुछ सामान्य हो।

अगले दिन जब मैं कॉलेज पहुंची, तो सुवी मेरे ऊपर झपट पड़ी, मेरे बैग को ज़ब्त किया, उसकी सारी चीज़ों को खंगाल डाला और ख़त निकाल लिया।

"तुम तो अच्छी चोर बनोगी। कितनी जल्दी और सफ़ाई से तुमने मेरे बैग की चीज़ों को खंगाल लिया," उसे देखते हुए मैंने टिप्पणी की।

"केवल तभी जब सारे बैगों में दिलचस्प प्रेम पत्र हों," उसने जवाब दिया और पढ़ना शुरू कर दिया।

उसने भी बिल्कुल वही प्रतिक्रिया की थी जो पहली बार उसे पढ़ने पर मेरी हुई थी और मैं उस प्रभाव को देखने का इंतज़ार करती रही जो उसके पन्ना पलटने और ख़ून से लिखी इबारत को देखकर होने वाली थी। मैंने जानबूझकर इसके बारे में फ़ोन पर नहीं बताया था। मैं रूबरू उसकी प्रतिक्रिया देखना चाहती थी। उसने निराश नहीं किया।

"होली काउ, स्वीट जीज़स, होली स्प्रिट और मदर मेरी!" उसने बौखलाहट में कहा।

फिर जब वह संभली तो मैंने उससे पूछा कि उस ख़त को पढ़ने के बाद क्या उसे लगता है कि अभि सनकी या कुछ असंतुलित सा है।

"वह पागल या असंतुलित नहीं है, लेकिन तुम्हारे प्यार में एकदम दीवाना हो गया है। अगर तुम यह नहीं देख सकती हो तो तुम अंधी हो।"

शनिवार की सुबह यह तय करने में कि क्या पहनूं, मैंने बहुत समय लगाया। मैं अपनी मां को बता चुकी थी कि मुझे पदाधिकारियों की एक विशेष मीटिंग में जाना है। यह वास्तव में झूठ भी नहीं था क्योंकि मैं एक

और पदाधिकारी से मिलने ही जा रही थी, है ना? अपने बचकाना मज़ाक पर मैं हंस पड़ी, लेकिन असल में तो यह हंसी अपनी घबराहट को छिपाने के लिए थी। मैं जानती थी कि मैं जो भी पहनूंगी उसे अभि बहुत ध्यान से देखेगा। मैं नहीं चाहती थी कि ऐसा लगे कि सिर्फ़ उसके लिए खूबसूरत दिखने की ख़ातिर मैंने तैयार होने में बहुत मेहनत की है। लेकिन फिर मैं अच्छा भी दिखना चाहती थी। आख़िरकार, बहुत देर लगाकर मैंने एक सफ़ेद शर्ट, जीस और कैजुअल ब्राउन सैंडल पहने और बालों की पोनीटेल बना ली, ध्यान रखते हुए कि ऐसा लगे जैसे कपड़े, हेयरस्टायल या एक्सेसरीज चुनने में कोई ख़ास प्रयास नहीं किया गया है।

फिर (आख़िरकार) जब मैं संतुष्ट हो गई तो अभि के घर के लिए चल दी।

5

ज़िंदगी वो जो आप बनाएं

जब मैं पहुंची तो अभि की पीठ मेरी ओर थी और वह उत्सकुता से टेलीविज़न पर क्रिकेट देखता लग रहा था। मैंने खिड़की से उसकी एक झलक देखी थी जिसका पर्दा हटा हुआ था। मैं नर्वस थी और उत्तेजित थी और अचानक ही अनिश्चय से घिर गई। मैं कर क्या रही थी, उसके घर चली आई सिर्फ़ इसलिए कि उसने मुझे बुलाया था? मैं उसे जानती ही कितने दिन से थी। ऐसे कैसे मैं जज़्बात की रौ में बह गई, सिर्फ़ इसलिए कि उसने मुझे एक प्यारा सा ख़त लिखा था? एक पल के लिए मैंने सोचा कि मुड़ूं और घर चली जाऊं। मैं उसे फ़ोन करके कह सकती थी कि कुछ काम पड़ गया और मैं नहीं आ पाई, उसे कभी पता भी नहीं चलता। मगर फिर मैंने घंटी बजा दी।

अभि लगभग तुरंत ही उछल पड़ा और उसने टीवी बंद कर दिया। उसने खिड़की से मुझे देखा और उसके चेहरे पर एक बड़ी सी मुस्कुराहट फैल गई।

“वैलकम, वैलकम,” दरवाज़ा खोलते हुए उसने धूम मचा दी और अपना हाथ आगे बढ़ा दिया।

“हाइ,” मैं मुस्कुराई और हमने हाथ मिलाए मानो औपचारिक रूप से किसी बिजनेस मीटिंग के लिए मिल रहे हों। वह मुझे ड्रॉइंग रूम में ले गया जिसे बड़ी नफ़ासत से सजाया गया था और उसने मुझे बैठने का संकेत किया। मैं कॉफ़ी ब्राउन रंग के आलीशान थ्री सीटर सोफ़े में धंस गई और वह मेरे पास एक आरामकुर्सी पर बैठ गया। सारे कमरे में एक अनकही सी नफ़ासत थी। खिड़की से आती रोशनी के प्रवाह ने माहौल को ख़ुशनुमा बना दिया था। मैं अपनी शुरुआती हिचकिचाहट भूल गई और तुरंत ही सहज महसूस करने लगी थी।

“उफ़, मैं कब से इंतज़ार कर रहा था। कितना डर लग रहा था कि कहीं तुम अपना इरादा न बदल दो,” उसने कहा।

“मैं ठीक वक़्त पर आई हूं। मैंने तीन बजे कहा था, है ना?” मैंने जवाब दिया।

“हां, लेकिन जब किसी बेहद अहम बात का इंतज़ार हो तो एक-एक पल घंटे के समान लगता है। मुझे बहुत ख़ुशी है कि तुम आ गईं।”

वैभव के फ़ोनों का इसी तरह इंतज़ार करने के बाद मैं इसे बख़ूबी जानती थी। लेकिन मैंने कुछ नहीं कहा और मुस्कुरा दी।

एक अन्य कमरे से, जो मेरे अंदाज़े से रसोई थी, एक बुज़ुर्ग से दिखने वाले सज्जन बाहर आए। वे लंबे थे, उनके बाल खिचड़ी थे, वे बहुत संभ्रांत दिखते थे और उन्होंने सफ़ेद कुर्ता और धोती पहन रखा थी।

“अप्पाचा, यह अंकिता है, कॉलेज की मेरी दोस्त,” अभि ने मेरा परिचय करवाते हुए कहा।

“और अंकिता, ये मेरे प्यारे ग्रैंडपा हैं,” उसने कहा।

मैं तुरंत खड़ी हो गई, सम्मान में। बरसों एक ऐसे सिस्टम में पाई शिक्षा को जो आप में भारतीय मूल्य भरती हो जैसे बड़ों की इज़्ज़त करना, दरकिनार करना मुश्किल होता है।

“हैलो, सर,” मैंने यंत्रवत कहा।

“हैलो, यंग लेडी! और खड़े होने की कोई ज़रूरत नहीं है! बैठो।” उन्होंने मेरा अभिवादन किया, उनकी आंखें चमक रही थीं। वे गर्मजोशी भरे और मिलनसार लग रहे थे। लगभग तुरंत ही मुझे अभि और उसके ग्रैंडपा के बीच की दोस्ती का आभास हो गया था।

“तुम एक ही कॉलेज में हो?” उन्होंने पूछा।

अजी नहीं, मैं सेंट एग्निस में हूं।”

“ओह, तो अब तुम दुश्मन से मेलजोल बढ़ा रहे हो, क्यों अभि?” उन्होंने मज़ाक़ किया।

“दुश्मन केवल सांस्कृतिक उत्सवों में हैं। उसके बाद तो दोस्त हैं,” अभि मुस्कुराया।

“जो भी हो, महावीर सेंट एग्निस को कभी नहीं हरा सकता। यह तो तय है,” अभि के ग्रैंडपा के दोस्ताना बर्ताव से दुस्साहसी होकर मैंने डींग हांकी।

“हा हा हा। ओह, हां, इस बात पर तो मुझे तुमसे सहमत होना होगा। एग्निस की लड़कियां वाक़ई बहुत स्मार्ट होती हैं,” अभि के ग्रैंडपा ने कहा।

“जरा इंतज़ार करो फिर देखेंगे। युवा महोत्सव अभी ख़त्म नहीं हुआ है,” अभि ने बुरा मानने का दिखावा करते हुए कहा, लेकिन मुझे दिख रहा था कि वह इस बात पर बहुत ख़ुश हो रहा था कि उसके ग्रैंडपा ने मुझे पसंद किया था।

“मैं क्रिकेट मैच देखना चाहता हूं। तुम दोनों ऊपर क्यों नहीं चले जाते?” उसके ग्रैंडपा ने टेलीविज़न चलाते हुए कहा।

अभि ने सवालिया नज़र से मुझे देखा कि इसमें कोई दिक़्क़त तो नहीं है। मैंने कंधे उचका दिए।

“ठीक है, ऊपर चलते हैं,” मैंने कहा और अभि के पीछे-पीछे चल दी।

उसके साथ उसके कमरे में जाना वास्तव में सही नहीं है, मेरी अंतरात्मा मुझे कहने लगी थी। लेकिन पहले की तरह ही मैंने उसे ख़ामोश कर दिया, ख़ुद को बेपरवाह जताया और उसके पीछे चल दी। मुझे अहसास था कि मैं ‘सुरक्षित क्षेत्र’ से बाहर निकल रही हूं। बेडरूम निश्चय ही ख़तरनाक जगह थी। मेरी अंतरात्मा भुनभुना रही थी और अब मेरे ऊपर नापसंदीदगी की उंगली उठा रही थी। लेकिन मैं तो नशे में थी। मैं कुछ ऐसा करने जा रही थी जो मैंने पहले कभी नहीं किया था। मैं यह देखने के लिए भी उत्सुक थी कि उसका कमरा कैसा दिखता है। इसके अलावा, मैं उसके घर आने के लिए तो पहले ही तैयार हो गई थी और यह राय मैंने नहीं, उसके ग्रैंडपा ने दी थी कि हम उसके कमरे में चले जाएं। अब मैं पीछे कैसे हट सकती थी?

“वाह!” कमरे में घुसते ही मेरे मुंह से निकला। मैं ख़ुद को रोक ही नहीं पाई थी। कमरा ऐसा था मानो सीधे किसी इंटीरियर डिज़ाइन की पत्रिका से उठाया और यहां जड़ दिया गया हो। यह विशिष्ट रूप से मर्दाना था। वहां एक सिंगल बेड था, बड़ी सफ़ाई से लगाया गया, जिस पर नीले रंग का ज्यामितीय धारीदार मर्दाना सा दोहर बिछा हुआ था, मेल खाते धारीदार गिलाफ़ों वाले नर्म, फूले हुए तकिए रखे थे और पास ही में कपड़े रखने की अल्मारी थी। दीवार पर एक बुकशेल्फ़ थी जिसमें बड़ी नफ़ासत से किताबें लगी हुई थीं। अल्मारी पर एक बहुत ही ख़ूबसूरत महिला का फ़्रेम मंडित फ़ोटो रखा था। बेड के सामने पैंतालीस डिग्री के कोण पर लैदर की एक बड़ी सी आरामदेह आरामकुर्सी थी। बेड के पास एक नर्म क़ालीन और रीडिंग लैंप रखा था। कोने में एक छोटे से खुले लकड़ी के डिब्बे में एक बास्केटबॉल और एक फुटबॉल रखी थी। दीवार के सहारे बड़ी सुघड़ता से एक गिटार भी रखा था। खिड़कियों पर बांस के पर्दे पड़े थे। कमरे में पांव रखने के साथ ही एक गुनगुना सा अहसास आपको अपनी गिरफ़्त में ले लेता था और कोई किताब लेकर उस आरामदेह आरामकुर्सी में गुड़ीमुड़ी होकर बैठ जाने की इच्छा को दबाने के लिए आपको वाक़ई जद्दोजहद करनी पड़ती थी।

“तुम्हारा कमरा बहुत ही साफ-सुथरा है!” मैंने तारीफ़ की।

“मुझे तरतीबी पसंद है और मैं इसे साफ़-सुथरा रखने की कोशिश करता हूं,” उसने कहा। वह ख़ुश दिख रहा था।

“मुझे भी! मैं भी अपना कमरा बहुत अच्छी तरह रखती हूं। अगर तुम उसे देख पाते तो मुझे अच्छा लगता।” मैंने कहा, यह कहते हुए मुझे अपने

ऊपर थोड़ी हैरानी हो रही थी। मैं उसके अनुमोदन की इच्छा क्यों कर रही थी?

“दिखाओ न! उसे देखना मुझे बहुत अच्छा लगेगा,” उसने इशारे को पकड़ लिया था।

“सवाल ही नहीं है! मेरे माता-पिता कभी तैयार नहीं होंगे कि कोई लड़का घर आए।”

“ओह, अंकिता! तुम भी कितनी बच्ची हो! तुम्हारे माता-पिता का हर बात जानना जरूरी थोड़े है!” उसने आंख मारी।

मुझे अपना चेहरा लाल होता महसूस हुआ। और मैंने इसे छिपाने की भरसक कोशिश भी की। “तुम कहना क्या चाह रहे हो, अभि?” मैंने सीधे उसकी आंखों में देखते हुए पूछा।

“बेशक तुम्हारा कमरा देखना!” उसने तपाक से बिना पलक झपकाए सीधे मेरी आंखों में देखते हुए कहा। “क्यों? तुम्हारे दिमाग़ में क्या था?” उसकी आंखें चमक रही थीं।

मैं इस पर यक़ीन नहीं कर पा रही थी। अब उसका लहजा बहुत ही अर्थपूर्ण था। और परेशानी तो यह थी कि मुझे यह अच्छा भी लगा। अपनी उलझन को छिपाने की कोशिश में मैं दूसरी ओर देखने लगी थी।

“बेशक मेरा कमरा, हालांकि मुझे नहीं पता कि तुम्हारे दिमाग़ में क्या था।” अपनी उलझन पर क़ाबू पाते ही मैंने मुस्कुराकर जवाब दिया।

मैं टेक लगाकर, अपने पांवों को अपने नीचे दबाकर बड़े आराम से आरामकुर्सी पर बैठ गई।

“तो यह बताओ कि तुम मुझे अपना कमरा दिखाने के बारे में क्या कभी सोचोगी भी नहीं?” उसने पूछा, वह बेड पर बैठ गया था और एक तकिया गोद में रखकर कोहनियों को उसपे टिकाकर आगे को झुक गया था।

“मुझे इस बारे में सोचने दो,” मैं मुस्कुराई, अब मुझे इसमें मज़ा आ रहा था। अभि ने अपनी कशिश और धृष्टता से मुझे पूरी तरह चौंधिया दिया था। वैभव को तो मैं जैसे भूल ही गई थी। मेरी अंतरात्मा बार-बार चीख़कर उसे वैभव के बारे में बताने की याद दिलाने की कोशिश कर रही थी। मगर पता नहीं क्यों उस पल वैभव और उससे जुड़ी सारी बातें बहुत दूर मालूम दे रही थीं। मैं इतना अच्छा समय गुज़ार रही थी कि मैं नहीं चाहती थी कि कोई भी चीज़ मज़ा किरकिरा करे।

“तुम्हें डर नहीं लग रहा? एक कुंआरे लड़के के कमरे में इस तरह आना?” उसने पूछा। अब वह मुझे छेड़ रहा था।

“बिल्कुल नहीं। मैं लगभग आधी रात तुम्हारे साथ बिता चुकी हूं, तुम्हारी बाइक पर, याद है? या तुम भूल भी गए?” मैंने प्रतिवाद किया।

“हा हा हा,” उसने ठहाका लगाया। “यह तो मैं मानता हूं, अंकिता, और मुझ पर भरोसा करने के लिए शुक्रिया। उस ख़त में मैंने जो भी लिखा था, वह सच था।”

“मुझे यह तो कहना होगा कि खून वाली बात ने मुझे बहुत डरा दिया था। क्या तुमने सच में अपना हाथ काटा था? कौन सी उंगली?” मैंने उत्सुकता से पूछा।

“देखो,” उसने अपना हाथ आगे उठाते हुए कहा। उसकी अनामिका पर एक जख़्म था। फिर उसने अपनी मध्यमा और अंगूठे से उसे दबाया, पैन की तरह और हवा में चलाकर दिखाया। “यह पहली बार है जब मैंने कोई इतना हताशा भरा काम किया है, अंकिता। मैं बहुत बुरी तरह से चाहता था कि तुम मेरा यक़ीन कर लो। मैं हर उस लड़की के सामने प्यार जताता नहीं फिरता जिससे मैं मिलता हूं। मैं चाहता था कि तुम देखो कि मैं कितना गंभीर और कितना हताश हूं। उफ़, तुम नहीं जानती कि मैं तुमसे कितना प्यार करता हूं।” उसकी आंखों में उम्मीद, प्यार और गंभीरता की चमक थी। उसकी बातों में होश न खो देना मुश्किल था।

उसके चेहरे को देखते हुए और उसकी बातों को सुनते हुए मेरा दिल चाह रहा था कि उसके हाथ को अपने हाथ में लेकर उसकी उंगली चूम लूं। मैं उसे बताना चाहती थी कि वह बहुत अच्छा इंसान है और मुझे उसका साथ सच में अच्छा लगा था। मैं कहना चाहती थी कि वह मेरे लिए यह सब कुछ जो कर रहा है, उससे मैं सम्मानित महसूस कर रही हूं। लेकिन मुंह से एक शब्द भी नहीं निकला और यह न समझ पाकर कि क्या कहूं मैं गुमसुम बैठी रही, किसी बुत की तरह।

मेरी ख़ामोशी को वह नापसंदीदगी समझ बैठा। “देखो, अंकिता, इतना खुलकर बोलने पर मैं सच में माफ़ी चाहता हूं। क़सम से मैंने सैकड़ों बार चाहा होगा कि अपने इस पागलपन को रोक दूं। लेकिन मैं लाचार हूं।” उसने हवा में अपने हाथ झटके।”उफ़, सुबह, शाम और रात, दिन हो कि रात मैं बस तुम्हारे बारे में ही सोचता रहता हूं। मैं जो कह रहा हूं, तुम उसका मतलब समझ भी पा रही हो?”

अब मैं और ख़ामोश नहीं रह सकी। मैं उठी और बेड पर उसके पास जा बैठी। “ओह, अभि, मैं समझ रही हूं।” मैंने कहा। “मैं अंधी नहीं हूं। मैं देख सकती हूं। लेकिन मेरे लिए यह सब कुछ बहुत अकस्मात है। मेरे ख़्याल से तुम अच्छे इंसान हो। मुझे तुम्हारा साथ पसंद है। मगर...”

“और कुछ मत कहो,” उसने मेरी बात काट दी। “ज़िंदगी में अगर-मगर नहीं होते। ज़िंदगी वही होती है जैसी हम इसे बनाते हैं, अंकिता। मैं ज़िंदगी भर तुम्हारा इंतज़ार करने के लिए तैयार हूं। मुझे इतनी ही परवाह है।”

“शुक्रिया, अभि।”

“किसलिए?”

“समझने के लिए। अब यह विषय समाप्त। क्या तुम किसी और बारे में बात करना चाहते हो?”

वह कुछ जवाब देता इससे पहले ही दरवाज़े पर दस्तक हुई। एक औरत थी जो शायद काम वाली रही होगी, हाथों में एक ट्रे लिए जिसमें गर्मागरम चाय के दो कप, थोड़े से प्याज़ के पकौड़े और जिंजर बिस्किट थे।

“थैंक्यू, थ्रैसी चेची,” अभि ने कहा, औरत ने ट्रे अल्मारी पर रख दी, और खिखियाती हुई कमरे से चली गई। अचानक मुझे अहसास हुआ कि वह इसलिए हंस रही होगी कि अभि और मैं बेड पर पास-पास बैठे हुए थे, हमारे कंधे एक-दूसरे को लगभग छू रहे थे।

“उसने सोचा होगा कि हम कुछ और कर रहे हैं,” अभि मुस्कुराया, उसकी आवाज़ में शरारत वापस छलक आई थी।

“जैसे कि हम दरवाज़ा खुला छोड़कर कुछ करेंगे।”

“तो मैं बंद कर देता हूं,” उसने छेड़ा।

“इतनी जल्दी भी नहीं,” मैंने मुस्कुराते हुए जवाब दिया।

“बाइ द वे, अभि, तुम्हारे मम्मी-डैडी कहां हैं? क्या वे दोनों काम करते हैं?”

“मेरी ममा तो नहीं रहीं। वह उनकी ही तस्वीर है जो तुम वहां देख रही हो,” उसने उस महिला की फ़ोटो की ओर इशारा किया जिसे मैं पहले ही अल्मारी पर रखा देख चुकी थी।”मैं तुम्हें बहुत कुछ बताना चाहता हूं,” उसने कहा। “नहीं, बल्कि दिखाना चाहता हूं।”

“कहो। मैं सुन रही हूं,” मैंने दीवार के साथ तकिया लगाकर बेड पर टेक लगाकर बैठते हुए कहा। उसके साथ इस तरह उसके बेड पर बैठना बहुत आत्मीय लग रहा था।

वह पलटा जिससे उसकी पीठ मेरी ओर हो गई और उसने अपनी टीशर्ट उठा दी। मैं सन्न रह गई। उस पर जख़्मों और पिटाई के बेशुमार

निशान थे, कुछ लाल और कुछ हल्के पड़ते, उसकी सारी पीठ पर एक-दूसरे को काटते हुए।

“हे भगवान, यह क्या है?” मैंने कहा, उसने अपनी शर्ट नीचे की, मेरी ओर मुड़ा और दीवार से टेक लगाकर मेरे पास बैठ गया। अब उसका कंधा मेरे कंधे को छू रहा था लेकिन मैंने हटने की कोई कोशिश नहीं की।

“वह मेरा बाप है।” उसने सहजता से कहा। “मैं उससे नफ़रत करता हूं। मेरा बस चलता तो उसे मार डालता।”

उसकी आवाज़ की तेज़ी और दृढ़ता ने मुझे सन्न कर दिया। मुझे ये सब दिखाने में उसके खुलेपन ने भी मुझे पूरी तरह से चकित कर दिया था। मैं भावनाओं का ऐसा झंझावात महसूस कर रही थी जिसे मैं कोई नाम नहीं दे सकती थी। मैं और ज़्यादा जानना चाहती थी।

“वह बैल्ट से मारता था, हरामज़ादा, मेरी भाषा के लिए माफ़ करना।” उसने आराम से कहा।

“लेकिन क्यों? तुमने ऐसा क्या किया था कि तुम्हारे साथ ऐसा सुलूक किया जाए?”

“यह लंबी कहानी है, लेकिन संक्षेप में बताने की कोशिश करता हूं।”

“नहीं, मुझे पूरी बात बताओ। मैं जानना चाहती हूं।”

“वह यहां नहीं रहता। प्रिटोरिया, साउथ अफ़्रीका में रहता है। वह एक मिशनरी संस्था में काम करता है जो ईश्वर के संदेश को फैलाने की कोशिश करती है,” उसने कहा। उसके लहजे में उपहास और घृणा स्पष्ट थे। “और जो मैंने तुम्हें दिखाया, वह इस बार उसके अनुसार चलने से इंकार करने पर मुझे दिया उसका उपहार था। वह बीच-बीच में मुझसे मिलने आता है। वह चाहता है कि मैं उसके मिशन में शामिल हो जाऊं। जब वह यहां आता है तो मुझे बिल्कुल अच्छा नहीं लगता।”

“तुम्हारे ग्रैंडपा उन्हें नहीं रोकते?”

“वे मेरे नाना हैं। इस मामले में वे कुछ नहीं कह सकते। मेरे पिता को तो यह भी नहीं पता कि उसके माता-पिता कौन हैं। उसे इन्हीं मिशनरियों ने पाला था। उनके लिए वह अपनी जान तक दे सकता है और उससे यह सच बर्दाश्त ही नहीं हो पाता कि मेरा कोई भिन्न नज़रिया है।”

“और तुम्हारा नज़रिया इतना भिन्न क्यों है?” मैंने पूछा। उत्सुकता और स्नेह की लहर मुझे घेरती जा रही थी। मैं और ज़्यादा जानना चाहती थी। मैं इस शख़्स के बारे में सब कुछ जानना चाहती थी जो मुझे इतनी दीवानावार चाहता था।

“मेरी ममा हिंदू थीं। इसीलिए यह उसके लिए इतना मायने रखता है कि मैं उसके साथ शामिल होऊं। यह एक तरह से उनसे शादी करने का उसका प्रायश्चित है।”

मुझे समझ नहीं आया क्या कहूं। मेरा दिल किया कि उसे सीने से लगा लूं और कहूं कि आख़िर में सब ठीक हो जाएगा। लेकिन किसे पता था कि भविष्य में क्या छिपा है और अपना यह दिलासा मुझे खोखला जान पड़ा।

मैंने उसका हाथ अपने हाथ में ले लिया, वही जिसमें ज़ख़्म था और उसे थामे रही। उस वक़्त ऐसा करना ही ठीक जान पड़ा। उसने मेरा हाथ दबा दिया मानो उससे ताक़त पा रहा हो।

बहुत देर तक हाथ में हाथ लिए, कंधे से कंधा सटाए हम ख़ामोश बैठे रहे। मेरे मन में बहुत कुछ चल रहा था। मैं अजीब ढंग से अभि से जुड़ा हुआ महसूस कर रही थी। उसने हटने या अपना हाथ हटाने की कोशिश नहीं की। आख़िरकार अंधेरा होने लगा, मैंने कहा कि मुझे घर जाना चाहिए वर्ना मेरे माता-पिता फिक्रमंद हो जाएंगे।

उस दिन, उस मुलाक़ात ने मेरे अंदर कुछ बदल दिया था। हालांकि मैं यक़ीन से नहीं कह सकती थी कि क्या। उसे बयान करने के लिए मेरे पास अल्फ़ाज़ नहीं थे। मैं ये सब सुवी को बताना चाहती थी।

लेकिन तुरंत नहीं। अपने ख़ुद के विचारों को तरतीब देने के लिए मुझे वक़्त चाहिए था जो, जब मैं उस रात सोई, तब भी मेरे मन में उमड़-घुमड़ रहे थे। इतने ज़माने में यह पहली दफ़ा हुआ था जब वैभव के अलावा कोई और मेरे ख़्यालों पर छाया हुआ था।

6

प्यार का मौसम

अभि के घर मेरे जाने का पूरा वाक़या सुनने के लिए सुवी बेताब थी। वह मुझे घसीटती हुई बिल्डिंग के एक एकांत से हिस्से में ले गई जहां कॉलेज का ऑडिटोरियम था।

“ढीठ लड़की। तुम उसके साथ सोईं। तुमने अपना कौमार्य लुटा दिया! है ना?” वह चीख़ी।

“बिल्कुल नहीं! हमने तो बस हाथ पकड़े थे,” इससे पहले कि मुझे अहसास होता, गुस्से में भरे मेरे शब्द मुंह से निकल चुके थे।

“आह हा! आह हा! मिस अंकिता शर्मा। अगर कोई तुम्हारा मुंह खुलवा सकता है और सच कुबूलवाने के लिए फंसा सकता है तो वह बस मैं हूं!” उसने ऐसे देखा मानो किसी मेले में कोई इनाम जीत गई हो जहां क़िस्मत के किसी खेल में आप अपनी क़िस्मत आज़माने की कोशिश करते हैं।

मैंने उससे चुप रहने को कहा और अभि के घर पहुंचने के बाद जो कुछ हुआ था, उसे एक-एक तफ़्सील के साथ बता दिया।

जब मैं चुप हुई तो उसने सीटी बजाई। फिर बोली, “कम से कम उसे किस तो कर ही लिया होता।”

“तुम और तुम्हारे बेहूदा ख़्याल! तुम बड़ी गिरी हुई हो और बस यही सोच सकती हो।”

मुझे उस पर ग़ुस्सा आ रहा था कि वह अपराधबोध से उबरने में मेरी मदद नहीं कर रही है। वह तो इसे बस एक लड़के के साथ जिस्मानी स्तर पर उतरने के मौक़े के रूप में देख रही थी। एक मुक़म्मल मौक़ा जो थाल में सजाकर मुझे थमाया गया था, और जिसे उसके मुताबिक़ मैंने गंवा दिया था। मैं ग़ुस्से में भरकर चल दी और वह मेरे पीछे-पीछे लपकी।

“अरे, शांत हो जाओ। मैं तो तुम्हें चिढ़ा रही थी बस,” उसने कहा। “लेकिन देखो ख़ुद को। तुम ऐसे बर्ताव कर रही हो जैसे सच में उसके साथ सो ली हो।”

“देखो, मैंने जितना सोचा था, वह मुझे उससे कहीं ज़्यादा अच्छा लगने लगा है। मैं क़तई समझ नहीं पा रही हूं कि क्या करूं। और वैभव से क्या कहूं?” मैंने कहा।

“तुम्हें कैसे पता कि वहां तुम्हारे प्यारे वैभव को कोई और नहीं मिल गई होगी? तुम सोचती हो कि वह तुम्हें सब कुछ बता देता होगा? भगवान के लिए, अंकिता, ऐसा नहीं है कि वैभव से तुम्हारी शादी हो ही गई है। चीज़ें होती रहती हैं। लोग बदल जाते हैं। रवि से मिलने से पहले मुझे सुरेश पसंद था। और कुंआरेपन की इन सारी बातों में वास्तव में कोई दम नहीं है। आपने यह किया और बस हो गया।”

मैं जानती थी कि उसकी ज़िंदगी में सैक्स है लेकिन पहली बार वह उसके बारे में बात कर रही थी।

“तुम्हें पहली बार डर नहीं लगा था?” मैंने उससे पूछा। मैं चाह रही थी कि काश मैं भी उसकी तरह बेपरवाह होती। काश ये बातें मुझे इतना ज़्यादा परेशान न करतीं।

“वास्तव में डर तो नहीं लगा था, क्योंकि मैं जानती थी कि मैं क्या कर रही हूं। मुझे ज़्यादा फ़िक्र इस बात की थी कि उसने कंडोम ठीक से पहना है या नहीं। और मुझे प्रेग्नेंट न होने की फ़िक्र ज़्यादा थी।”

“और तुमने यह कैसे जाना कि सुरेश ही वह इंसान है?” मैंने पूछा।

“मेरी प्यारी एंक्स, तुम किस सदी में रह रही हो? यह मत कहना कि तुम अपना कौमार्य संजोकर रख रही हो ताकि थाल में सजाकर उस आदमी को भेंट कर सको जिससे तुम शादी करोगी,” उसने कहा।

मैं ऐसा ही कर रही थी।

इसलिए मैंने कुछ नहीं कहा। शायद वह समझ गई थी।

“देखो,” उसने कहा, “मैंने यह करने का फ़ैसला किया और कर लिया। बस। इससे फ़र्क़ नहीं पड़ता कि किसके साथ। लेकिन सुरेश के साथ मामला ज़्यादा चला नहीं। फिर रवि आ गया। और अभी भी ऐसा नहीं है कि रवि और मैं कोई जोड़ा हैं। तुम जो महसूस कर रही हो, उसे मैं समझती हूं, बेब, मेरा यक़ीन करो मैं उस राह से गुज़र चुकी हूं। मैं जानती हूं।”

उसके आश्वासन के बाद मुझे बहुत बेहतर महसूस होने लगा। मैं उससे थोड़ा सा आक्रांत भी हो गई थी। उस विभाग में तो मुझे मीलों दूर जाना था। और यहां मैं एक लड़के के साथ समय बिताने को लेकर अपराधी महसूस कर रही थी। ऐसा भी नहीं था कि हमने किस किया हो या शारीरिक भी हुए हों। लेकिन किसी वजह से उस पल मैं जान गई थी कि उसके और मेरे बीच एक बाधा टूट गई है और अगली बार मैं और आगे निकल जाऊंगी। इस बारे में सोचकर मैं सहज नहीं हो पा रही थी, इसलिए मैंने इससे उस तरीक़े से निबटने का फ़ैसला किया जो मुझे बख़ूबी आता था। मैंने इसे परे धकेल दिया।

जैसे-जैसे महीने गुज़रे, मैंने पाया कि पदाधिकारी होने का मतलब था चयन, प्रतियोगिताओं, परीक्षणों, परिवहन के प्रबंध और इस सबके बेहतरीन पहलू—पदक बटोरकर लाने—का प्रचंड बवंडर। ज़्यादातर सांस्कृतिक उत्सवों में हम समग्र चैंपियनशिप में या तो द्वितीय रहते थे या विजेता होते थे।

इन सभी सांस्कृतिक उत्सवों में महावीर की टीम अनिवार्य रूप से मौजूद रहती थी। इसका मतलब होता था कि अभि भी वहां होता था। और उसके साथ मेरा मेलजोल और ज़्यादा बढ़ता गया। यह लगभग एक रस्म ही बन गई थी कि हरेक सांस्कृतिक उत्सव के बाद वह मुझसे पूछता कि क्या वह मुझे घर छोड़ सकता है, एक कप कॉफ़ी के बाद। मैं भी इसका इंतज़ार करती। मुझे उसका साथ अच्छा लगता था और बेशुमार कॉफ़ियों और बाइक पर घर आने के साथ हमारे बीच एक ऐसा बंधन पनप रहा था जो हफ़्तों के गुज़रने के साथ और मज़बूत होता जा रहा था।

इस सबके बारे में मैंने वैभव के सामने एक लफ़्ज़ भी नहीं कहा था। लेकिन मन में कहीं मैं जानती थी कि अब मुझे उसके फ़ोनों या ख़तों का पहले जैसी उतावली से इंतज़ार नहीं रहता था।

इन दिनों मुझे केवल ऐसे अवसरों का इंतज़ार रहता था जब मुझे बहुत-बहुत देर तक अभि के साथ रहने का मौक़ा मिल सकता हो। पलड़ा अभि के पक्ष में झुक चुका था और अब वापस जाने का कोई सवाल नहीं रहा था।

7

पल में बदल जाती है क़िस्मत

वह सारे सांस्कृतिक उत्सवों के सिरमौर यानी महात्मा गांधी यूनिवर्सिटी यूथ फ़ेस्टीवल के दौरान की बात थी जब अभि और मैंने पहली बार किस किया था। न धरती हिली, न आसमान फटा, न ही मुझे ऐसा आनंद महसूस हुआ जैसा कि होना चाहिए था, जैसा किताबों में बयान होता है और फ़िल्मों में दिखाया जाता है, हां, पुलिस आ गई। जब हमने शोर सुना और तेज़ी से जाते क़दमों को और थैली से लुढ़कते कंचों की तरह जीप से उतरते पुलिसवालों को देखा तो डर का जो अहसास मेरे ऊपर तारी हुआ, वह आने वाले कई सालों तक जब भी मेरी नज़र किसी वर्दीवाले पर पड़ती तो मेरे ऊपर हावी हो जाता था।

वह घटनाक्रम जिसका परिणाम यह हुआ था, काफ़ी निर्दोष तरीके से शुरू हुआ था। कम से कम मेरे और अभि की हद तक तो यह निर्दोषतापूर्ण ही था लेकिन बाक़ी लोग जो इसमें शामिल थे, उनके बारे में मैं यक़ीन से नहीं कह सकती।

यह चार दिनों में फैला आयोजन था और हम सब उस कॉलेज के होस्टल में ठहरे हुए थे जो उस साल इसकी मेज़बानी कर रहा था। भाग लेने वाले छात्र-छात्राएं सोलह से चौबीस साल के विभिन्न आयु वर्गों के थे। बहुत से छात्रों के लिए यह पहला अवसर था जब वे घर से बाहर रुके थे। इस अवसर ने उन्हें जो आज़ादी और मस्ती प्रदान की थी, उसने उन्हें नशे में सराबोर कर दिया था और कभी-कभी, पदाधिकारियों के रूप में, हमें लड़कियों के साथ सख़्ती भी बरतनी पड़ती थी।

हमारे कॉलेज में केवल पदाधिकारियों को ही इजाज़त थी कि वे जितनी देर तक चाहें बाहर रह सकती हैं, क्योंकि अगले दिन के लिए उन्हें हज़ारों चीज़ों का इंतज़ाम करना होता था। अगर और कोई लड़की देर तक बाहर रहना चाहती थी तो उसे उनकी स्वीकृति लेनी पड़ती थी। तीन दिन का समारोह संपन्न हो चुका था। यह स्पष्ट था कि समग्र चैंपियनशिप के लिए एग्निस सबसे आगे था और हमारे कॉलेज की एक प्रतिभाशाली लड़की शुजा चार प्रतियोगिताओं—दो नृत्य और दो गायन की प्रतियोगिताओं—में प्रथम पुरस्कार जीतकर एकल चैंपियन के रूप में उभरकर आई थी। यह एक जाना-माना सच था कि जो लड़की इसे जीतती थी, उसे अनिवार्य रूप से किसी मलयालम फ़िल्म में भूमिका की पेशकश दी जाती थी। हमें यह देखने का इंतज़ार था कि शुजा उसे लेगी या छोड़

देगी। हम सबको उस पर गर्व था। वह हमारी स्टार थी, हमारी बहुमूल्य निधि, कॉलेज में पढ़ाने वाली ननों की चहेती।

शुजा मेरे पास आई, यह पूछने कि क्या वह कुछ ज़्यादा देर तक बाहर रह सकती है क्योंकि महावीर का एक लड़का, जो उसका बॉयफ़्रेंड था, उसे बाहर ले जाना चाहता है। मुझे कुछ पता नहीं था कि उसे क्या जवाब दूँ। मैंने ज़िम्मेदारी आगे बढ़ा दी और उससे संजना से बात करने को कहा।

कभी-कभी अंतिम पल में लिए गए फ़ैसलों में इतनी ताक़त होती है कि वे आगे होने वाली तमाम घटनाओं की श्रृंखला को प्रभावित कर सकते हैं। लेकिन उन फ़ैसलों को लेने के वक़्त उन पर बहुत विचार नहीं किया जाता है। उन्हें सामान्य ढंग से ले लिया जाता है और पीछे मुड़कर देखने पर उन पर बहुत ज़्यादा पछतावा और मलाल होता है।

“तुम हमारे साथ चलना चाहती हो? आज रात हम पदाधिकारियों की विशेष पार्टी कर रहे हैं,” जब शुजा ने संजना से देर तक बाहर रहने की इजाज़त मांगी तो उसने कहा। यह मेरे लिए भी हैरानी की बात थी।

“कौन सी पदाधिकारियों की पार्टी?” मैंने पूछा।

“दिन की प्रतियोगिताएं ख़त्म होने के बाद आज रात ग्यारह बजे सभी कॉलेजों के पदाधिकारी मिल रहे हैं। आख़री दिन से पहले युवा उत्सवों में यह परंपरा रही है। शुजा हमारे साथ चल सकती है और पार्टी शुरू होने के कुछ देर बाद ग़ायब हो सकती है। किसी को जानने की ज़रूरत नहीं है, बशर्ते वह सुरक्षित वापस आ जाए और डॉर्म में वापस जाने के लिए हमारे साथ शामिल हो जाए,” संजना ने आंख मारी।

मैंने कंधे उचका दिए। यह मेरा फ़ैसला नहीं था। मुझे पूरा यक़ीन था कि संजना को पता है कि वह क्या कर रही है। बेशक शुजा कृतज्ञतापूर्वक तैयार हो गई। बाकी सभी पदाधिकारियों को पार्टी के बारे में पता था। वे सब इसमें पुरानी खिलाड़ी थीं, मैं ही नई थी।

“यह पार्टी होनी कहां पर है?” शुजा को ख़ुशी-ख़ुशी जाते देखते हुए मैंने प्रिया से पूछा।

“होटल क्राउन प्लाजा में। उनका बॉलरूम ठीकठाक आकार का है। और वहां नौसेना के कुछ कैडेट भी होंगे। उफ़, वे लोग क्या शानदार होते हैं,” प्रिया ने सपनीली आवाज़ में जवाब दिया।

कोचीन में भारतीय नौसेना का बेस होने के साथ-साथ समुद्री अफ़सरों का प्रशिक्षण संस्थान भी था। यहां नौसेना के कैडेट प्रशिक्षित होते थे। लड़के आमतौर पर अच्छी वेशभूषा में, सुभाषी और स्मार्ट होते थे और सबसे महत्वपूर्ण यह कि अपना कोर्स ख़त्म होने पर वे अफ़सर बनते। अधिकांश लड़कियों के लिए यह संयोग बेहद दिलकश था और नौसेना

अकादमी के कैडेट का बॉयफ़्रेंड होना बड़ी इज़्ज़त की बात थी। और नौसेना के लड़कों का यह कहना यक़ीनन उनकी साख बढ़ाता था कि एग्निस की कोई लड़की उनकी गर्लफ़्रेंड है। आख़िर, एग्निस की लड़कियों की शोहरत बुद्धिमान, फैशनेबल और स्मार्ट होने की थी। तो यह एक क़िस्म का सहजीवी रिश्ता था और दोनों पक्ष सोचते थे कि वे ख़ुशक़िस्मत हैं।

पार्टी को लेकर लड़कियां बहुत उत्साहित थीं। होस्टल में छह बजे से ही औरतों की जबान में 'पार्टी के लिए तैयार होने' से जुड़ी बेशुमार तैयारियां शुरू हो गई थीं। जब मैंने कुछ पोशाकें देखीं जिन्हें लड़कियों ने पहनने के लिए चुना था तो मैं सन्न रह गई। गहरे लाल रंग की ऑफ़ शोल्डर ड्रेस में जिसका गला बहुत गहरे तक जा रहा था और जो हर घुमाव पर चिपकी हुई थी, संजना सीधे वोग से निकली फ़ैशन मॉडल जैसी दिख रही थी। उसने छह इंच की हील भी पहनी थी और जब उसने अपना मेकअप पूरा किया तो हैरानी से हमारे मुंह खुले रह गए। वह दिलकश लग रही थी। पार्टी में जाने वाली दूसरी अधिकांश लड़कियां भी भरपूर ग्लैमर के साथ तैयार हुई थीं। मुझे तो पार्टी के बारे में पता ही नहीं था और मैं अपने साथ ऐसी कोई पार्टी पोशाक नहीं लाई थी। मैंने एक सादा सी काली और सफ़ेद प्रिंटेड शर्ट और काली टाइट्स पहनने के लिए चुनी। ये कपड़े मेरी सफ़ेद हील्स के साथ अच्छे जा रहे थे। संजना मुझे एक ओर ले गई और उसने मुझसे पूछा कि क्या मैं उसके कपड़ों में से कुछ उधार लेना चाहूंगी लेकिन मैंने मना कर दिया।

अपने कपड़ों के ऊपर सारी लड़कियों ने किसी तरह की कोई जैकेट या पूरी आस्तीन का कोई टॉप पहना था जिसे वे फ़ैकल्टी की नज़रों से हमारे दूर जाते ही उतार देतीं। अगर नन लड़कियों को ऐसे तैयार देखतीं तो निश्चय ही वे आपत्ति करतीं।

होटल उस जगह से जहां हम ठहरे हुए थे, पैदल जाने की दूरी पर था। जब हम पहुंची तो पार्टी शुरू हो भी चुकी थी।

माहौल उत्तेजनापूर्ण था। बॉलरूम काफ़ी बड़ा, भव्य और नौजवानों से भरा हुआ था जो तेज पश्चिमी गानों की धुन पर डांस कर रहे थे। मैं भौचक्की थी और मुझे ऐसा लग रहा था जैसे मैं किसी दूसरी दुनिया में चली आई होऊं।

प्रिया, संजना और दूसरी लड़कियां भलीभांति फ़िट हो गई लगती थीं। वे आराम से वहां घुलमिल गई थीं और कुछ आदमियों के ग्रुप के साथ डांस करने लगी थीं। मुझे समझ नहीं आया कि क्या करूं। मैंने बैकग्राउंड में मिल जाने की कोशिश की, अचानक मैं वहां अनुपयुक्त और असहज महसूस करने लगी थी।

“हाइ। आप अंकिता हैं ना?” एक लंबे, अच्छी वेशभूषा वाले लड़के ने मेरे कंधे को थपथपाते हुए कहा। उसके हेयर कट से मैं समझ गई कि वह नौसेना के बंदों में से है।

“हां। और आप मुझे कैसे जानते हैं?” मैंने हैरानी से जवाब दिया।

“सॉरी, मैंने अपना परिचय नहीं दिया। मैं प्रवीण सिंह हूं। मैं राकेश दुग्गल का दोस्त हूं जो शुजा का दोस्त है,” उसने कहा।

“हां, मैंने शुजा को राकेश की बातें करते सुना है।”

मैं मना रही थी कि वह मुझसे डांस करने का न कहे। मैं अभी डांस के लिए तैयार नहीं थी।

“आप मेरे साथ डांस करेंगी?”

“अंह... कुछ देर बाद?”

किसी लड़के के प्रस्ताव को ठुकराने का सही शिष्टाचार मुझे नहीं पता था। अब मुझे हल्का सा पसीना आने लगा था।

“हाइ, अंकिता! कोई परेशानी?” एक जानी-पहचानी आवाज़ ने कहा और मैंने हाथ में एक ड्रिंक लिए अभि को अपनी ओर आते देखा।

उस पल मुझे ऐसी ही राहत महसूस हुई जैसे जाल में फंसे किसी पशु को आज़ाद होने पर होती होगी।

“ए, हाइ!” मैंने कहा, इतने उत्साह के साथ कि मुझे उम्मीद थी कि प्रवीण निहितार्थ समझ लेगा। वह शायद समझ भी गया था, क्योंकि जब अभि मेरी ओर आया तो वह सहजता से खिसक लिया।

“तुम्हें देखकर मुझे बहुत ख़ुशी हो रही है,” मैंने कहा।

“बहुत हसीन लग रही हो! तुम जब बाल खुले छोड़ती हो तो मुझे बहुत अच्छा लगता है।” उसने कहा, उसकी आंखें टिमटिमा रही थीं।

“मुझे तो बहुत बहनजी सा लग रहा है। बाकी सबको देखो।”

“उनको ये सब तामझाम चाहिए क्योंकि उनके पास वह नहीं है जो तुम्हारे पास है,” उसने मुस्कुराते हुए कहा।

“और ऐसा क्या है जो मेरे पास है और उनके पास नहीं है?” मैंने उत्सुकता से उसकी तारीफ़ को लपकते हुए पूछा।

“मैं, और क्या!” उसने कहा।

मैं हंस पड़ी और चपलता से मैंने उसे एक घूंसा जड़ दिया।

फिर मैंने उसके गिलास में झांका। “तुम क्या पी रहे हो?”

“शैंपेन। तुम्हारे लिए लाऊं?”

“नहीं, थैंक्यू। तुम्हें पता है मैं ड्रिंक नहीं करती।”

“वादा करता हूं मैं तुम्हें नशे में लाने की कोशिश नहीं कर रहा,” उसकी आंखें चमक उठीं। “लेकिन सारी चीज़ें कम से कम एक बार आज़मानी तो चाहिए ही।”

मुझे लालच हो आया। मैंने पहले कभी शराब नहीं पी थी। मैं जानती थी कि मैं अभि पर यह ध्यान रखने का भरोसा कर सकती हूं कि मैं कोई बेवकूफ़ी न करूं। अब मैं उस पर पूरी तरह भरोसा करने लगी थी। अब जबकि वह मेरे पहलू में था, मैं पहले से ज़्यादा दुस्साहसी महसूस कर रही थी। मैंने कमरे में नज़र दौड़ाई। लगभग सभी के हाथ में ड्रिंक थी।

“लो, मेरी पीकर देखो। देखो तुम्हें अच्छी लगती है या नहीं।”

हिचकिचाते हुए मैंने उसके गिलास से एक घूंट लिया। मुझे अजीबोग़रीब ढंग से अच्छा लगा। मैंने सिर हिलाकर अपनी सहमति जाहिर की तो वह मेरे लिए एक ड्रिंक ले आया।

“धीमे-धीमे पीना। गटक मत जाना।”

“ऐसी भी बुद्धू नहीं हूं। इतना तो मुझे पता है!”

अब पार्टी पूरे शबाब पर थी। रोशनी मद्धम कर दी गई थी। ज़्यादातर लड़के सिगरेट पी रहे थे और हवा धुएं से भारी हो गई थी। महंगी परफ़्यूमों की महक भी घुली हुई थी। बीच में एक बड़ी सी डिस्को लाइट थी। संगीत अब हल्के डांस वाला हो गया था और बहुत से जोड़े एक-दूसरे से काफ़ी सटे हुए डांस कर रहे थे। कुछ लड़कियों ने अपने चेहरे लड़कों के कंधों में धंसा रखे थे। वे पूरी तरह से अपने आप में डूबे हुए थे। जब मैंने देखा कि कुछ लड़कों के हाथ कहां रखे हैं तो मेरी आंखें मानो बाहर ही निकल पड़ी थीं। मुझे कुछ-कुछ घुसपैठिए सा महसूस हो रहा था। अभि को भी शायद मेरी हैरानी का अंदाज़ा हो गया था।

“वास्तव में ये सब असामान्य नहीं है, एक्स,” उसने कहा। “इनमें से ज़्यादातर सब कुछ करते हैं। उन्होंने ऊपर कमरे भी लिए हुए हैं।”

“क्या?!” मैंने कहा, अब मैं सच में भौचक्की रह गई थी।

“ए, सुनो। मैंने ऐसा कुछ नहीं किया है! और मैं तुम्हारे सामने कोई बेहूदा पेशकश भी नहीं रखूंगा। चिंता मत करो!” उसने कहा।

मुझे कुछ क्लॉस्ट्रोफ़ोबिया सा होने लगा था। साथ ही शराब शायद मेरे पेट में उथल-पुथल मचाने लगी थी। मेरा सिर चकराने लगा था।

“अभि, मुझे बैठना है। मुझे अपनी तबीयत ठीक नहीं लग रही है।”

“चलो, बाहर चलते हैं। ताज़ा हवा में तुम्हें बेहतर लगेगा।”

उस पल बाहर जाने का फ़ैसला उन कुछ बेहतरीन फ़ैसलों में से था जो मैंने अपनी ज़िंदगी में लिए थे। पीछे मुड़कर देखने पर मैं इसके लिए कई-कई गुणा शुक्रगुज़ार रहूंगी। लोग कहते हैं कि कभी-कभी क़िस्मत कुछ पलों में बदल जाती है।

लेकिन उस समय जब मैं उस ठंडी रात में उस दरवाज़े से अभि के साथ बाहर निकली थी जो बाहर होटल के विशाल लॉन और ख़ूबसूरत बाग़ में ले जाता था तब मेरे मन में ये दार्शनिक विचार क़तई नहीं थे। अभि ने लकड़ी की एक बेंच की ओर इशारा किया जो दो हरीभरी बड़ी सी झाड़ियों के बीच दबी-ढकी सी थी, जो उसकी ओर ले जाती सी लगती थीं। आसमान तारों से जड़ा था और अंदर के शोर, धुएं और संगीत की तुलना में हवा ताज़गी भरी महसूस हुई।

“यह बहुत बेहतर है,” मैंने कहा।

अभि ने अपनी बांह मेरे गिर्द डाल दी और मैंने भी विरोध नहीं किया। मैंने अपना सिर उसके कंधे पर टिका दिया। उसने मेरे बालों को थपथपाया और धीमे से ऐसा कुछ कहा कि मैं कितनी ख़ूबसूरत हूं। मैं थोड़ा और क़रीब खिसक गई। उसी वक़्त यह हुआ था कि उसने मुझे अपनी ओर खींचा, एक बांह मेरी कमर में डाली और इतनी कोमलता से मुझे किस किया कि जब उसके होंठों ने मेरे होंठों को छुआ तो मुझे लगा कि मेरा दिल टूट ही जाएगा। मैं उसके होंठों पर शैंपेन के स्वाद को महसूस कर सकती थी। यह इतना ही स्वाभाविक और इतना ही पाकीज़ा लगा था। मैं हमेशा सोचती थी कि मेरा पहला किस कैसा होगा, उस पल में क्या करना चाहिए —क्या अपने होंठ खोल देने चाहिए, आंखें बंद कर लेनी चाहिए? क्या मैं जानती थी कि क्या करना चाहिए? मैं हैरान थी कि यह बस अपने आप ही हो गया और अभि जैसे जानता था कि वह क्या कर रहा है। मेरा दिल गा रहा था और आनंद से ज़्यादा पूर्णता का अहसास था जिसने एक अजीब ही ढंग से मुझे अपनी आग़ोश में ले लिया था।

और उसी वक़्त हमने हलचल, अचानक उठता शोर और हंगामा सुना। पुलिस थी। हम उन्हें अपनी गाड़ियों से उतरते और होटल की ओर दौड़ते हुए देख सकते थे। इस दृश्य ने मुझे डरा दिया।

हमें समझ नहीं आ रहा था कि क्या करें। हमें पता भी नहीं था कि हो क्या रहा है। मैं जाकर देखना चाहती थी लेकिन अभि ने मुझे वापस खींच लिया।

“यहीं इंतज़ार करते हैं, अंकिता। यक़ीन करो, यह ज़रा भी अच्छा नज़ारा नहीं होगा।”

“मैं ऐसा कैसे कर सकती हूं, अभि? हम यहां बैठे नहीं रह सकते।”

“हां, बैठे रह सकते हैं। मेरे ख़्याल से मुझे पता है कि वहां क्या हो रहा है। देखो, तुम और मैं कुछ नहीं कर सकते। तुम पुलिसवालों से बहस नहीं कर सकतीं। यही ठहरते हैं। अब मेरी बात मान लो और विरोध मत करो।”

मैंने उसकी बात मान ली। लगभग दो घंटे तक जब तक कि शोर और हंगामा दबा नहीं, हम उसी बेंच पर बैठे रहे।

कुछ ही पलों में सच में किस्मत बदल गई थी। अगला दिन एग्निस में सबके लिए और एग्निस से जुड़े सब लोगों के लिए भयानक सपना था। मलयालम के लगभग सभी अखबारों के पूरे पन्नों पर बड़ी-बड़ी आग उगलती सुर्ख़ियां बिखरी हुई थीं और अंग्रेज़ी के कुछ अख़बारों ने भी सनसनीख़ेज सुर्ख़ियां छापी थीं जिनका मजमून था “एग्निस की छात्राएं होटल के कमरों में पकड़ी गईं,” “एग्नाइटों ने भिन्न क़िस्म का हुनर दिखाया,” और भी इसी तरह की व्यंग्यपूर्ण टिप्पणियां। कीचड़ उछालने का यह सबसे भद्दा रूप था।

एक पल हम मशहूर हस्तियां थे और अब गिर चुके थे। प्रतिद्वंद्वी कॉलेज गिद्धों की तरह इस पर झपट रहे थे। एग्निस की प्रबल छात्राएं बदनाम हो गई थीं। बाद में हमें पता लगा कि मेज़बान कॉलेज की छात्र यूनियन के एक पदाधिकारी ने, जिसका राजनीतिक पार्टियों की छात्र शाखाओं से संबंध था, पुलिस के इस सारे ड्रामे को अंजाम दिया था। बाद में हमें यह भी पता चला कि इस कांड में शामिल नौसेना कैडेटों के ख़िलाफ़ भी दंडात्मक कार्रवाई की गई थी।

अख़बारों में नाख़ुशगवार और ग़ैरज़रूरी तफ़्सीलों के साथ संजना और शुजा के फ़ोटो और नौसेना के उन जवानों के नाम भी छपे थे जिनके साथ वे थीं। केरल जैसी जगह में यह मौत से भी बदतर नियति थी। इस सच को भुला दिया गया कि वे सभी अठारह वर्ष से ऊपर के थे और वे जो कुछ भी कर रहे थे, वह पूरी तरह से उनका मामला था। लेकिन दकियानूसी केरल में इस तरह की चीज़ों के लिए कोई जगह या गुंजाइश नहीं थी। शरीफ़ लड़कियां मर्दों के साथ होटल के कमरों में नहीं जाती थीं, ना पुलिस की दबिश में पकड़ी जाती थीं। केवल वेश्याएं ही ऐसा करती थीं।

मुझे सबसे ज़्यादा आहत और पूरी तरह से मायूस कॉलेज प्रशासन की प्रतिक्रिया ने किया। उन्होंने झटपट संजना और शुजा को निष्कासित कर दिया। सिस्टर इवेंजेलाइन ने प्रेस में बयान जारी किया जिसमें कहा गया था कि किस प्रकार महज़ दो लड़कियों ने कॉलेज की साख को दाग़दार कर दिया था। कॉलेज का इतिहास सौ साल से भी ज़्यादा पुराना है और इतिहास में कभी ऐसी कोई घटना नहीं हुई थी। उन्होंने सारा इल्ज़ाम लड़कियों और उनके माता-पिता को दिया। फिर ज़ल्दबाज़ी में बुलाई गई

कॉन्फ्रेंस और अन्य फ़ैकल्टी सदस्यों के साथ गुप्त मीटिंग के बाद उन्होंने ऐलान किया कि वे कॉलेज यूनियन के लिए एक नई अध्यक्ष को नियुक्त कर रही हैं जिस पर वे सभी एकमत हैं। अध्यक्ष के लिए उनका चुनाव एक ऐसी लड़की थी जिसे हम बाक़ी लड़कियां नापसंद करती थीं—वह एक कमज़ोर कायर लड़की थी जो केवल प्रशासन की चापलूसी कर सकती थी। उसकी अपनी कोई सोच नहीं थी। अगर वह दस लाख साल भी कोशिश करती तो भी जीतना तो दूर उसका कभी नामांकन तक नहीं हो पाता। वह साधारण, ग्लैमरहीन थी, उसे कुछ पता नहीं था कि क्या करना है और यह तक नहीं आता था कि बोलना कैसे है। वह लीडर नहीं, पिट्ठू थी।

प्रिया, मैं और दूसरी पदाधिकारी व्यक्तिगत रूप से सिस्टर इवेंजेलाइन से मिलने गए। हमने कहा कि इस मुद्दे पर हमें कितना सख़्त एतराज है और यह भी कि हम कॉलेज की हजारों छात्राओं का प्रतिनिधित्व कर रहे हैं जो कि यही बात कहना चाहती हैं। सिस्टर ने हमारे विरोधों को दरकिनार कर दिया।

“हमने आप लोगों को आज़ादी दी और आपने उसका नाजायज़ इस्तेमाल किया। इन लड़कियों ने कॉलेज के नाम पर बट्टा लगाया है। आप लोगों के सामने इसे मानने के सिवा कोई रास्ता नहीं है,” उन्होंने कहा।

मैं यह सोचे बिना न रह सकी कि जब तक लड़कियां पदक जीतकर कॉलेज लाती रहीं, उन्हें सिर-आंखों पर बिठाया जाता रहा। जब तक वे ‘उपयोगी’ रहीं और ‘परफ़ॉर्म’ करती रहीं, सब कुछ अच्छा था। लेकिन जिस पल हालात थोड़ा सा बिगड़े, उन्हें दूध में से मक्खी की तरह निकाल फेंका गया।

बाद में मैंने कड़वाहट में भरकर सुवी से कहा, “इन लड़कियों के साथ जिस तरह से पेश आया गया है वह उससे किस तरह अलग है जिस तरह वेश्याओं के साथ पेश आया जाता है? दोनों का इस्तेमाल होता है।”

“तुम बिल्कुल सही कहती हो,” उसने कहा। “कम से कम उन्हें इसके लिए पैसा तो मिलता है।”

बाक़ी का साल पहले के समान नहीं था। यूनियन पदाधिकारियों की टीम के नेतृत्व के लिए संजना के न होने से इसके वजूद का सारा सार ही बिखर गया था।

कॉलेज प्रशासन को कोई परवाह नहीं थी। एग्निस पहले ही लगभग वे सभी सांस्कृतिक प्रतियोगिताएं जीत चुका था जो उस साल जीती जा सकती थीं। उस साल महात्मा गांधी यूनिवर्सिटी फ़ेस्टीवल में भी एग्निस समग्र चैंपियन रहा था।

लेकिन ऐसा पहली बार हुआ था कि न किसी ने इस बारे में बात की और न ही ख़ुशी मनाई।

8

उड़ने के लिए तैयार

अगले साल भी मानसून की तरह चुनाव आ पहुंचे। वह हमारे ग्रेजुएशन का अंतिम वर्ष था और हम जल्दी ही अपनी बैचलर डिग्री पूरी कर लेने वाले थे। मैं तो चुनाव लड़ने के लिए क़तई तैयार नहीं थी। फिर से चुनाव लड़ने के लिए बहुत लोगों के आग्रह के बावजूद इस बारे में मैंने अपना इरादा बना लिया था। इस सारे तजुर्बे ने मेरा मन खट्टा कर दिया था।

हमारा अंतिम वर्ष पूरा होने में बस कुछ ही महीने बचे थे। मेरा मक़सद एमबीए करवाने वाले देश के किसी टॉप इंस्टीट्यूट में दाख़िला पाने का था। दूसरे बहुत से लोगों की तरह मैंने भी कर्तव्यपरायण भाव से प्रार्थनापत्र भरे, डिमांड ड्राफ़्ट बनवाए और अंतिम तिथियों से काफ़ी पहले उन्हें पोस्ट कर दिया। मेरे फ़ैसले से मेरे माता-पिता बहुत ख़ुश थे। मुझे उम्मीद थी कि मैं उन्हें निराश नहीं करूंगी। किसी एमबीए कोर्स में दाख़िला पाने के लिए मैं बहुत बेताब थी।

वैभव और मैं अभी भी संपर्क में थे लेकिन पहले जैसी शिद्दत से नहीं। मुझे लगता है कि अब वह और किसी बात से ज़्यादा कर्तव्यभाव से फ़ोन करता था। मैंने यह भी ध्यान नहीं दिया था कि उसके फ़ोन कम आने लगे थे, क्योंकि मैं तो अभि और अपनी ज़िंदगी में हो रही दूसरी चीज़ों में ही उलझी हुई थी। मेरे ख़्याल से मेरे मन में उसके लिए जो प्यार था, उसकी जगह अब एक स्नेहभाव ने ले ली थी। उसका फ़ोन आ रहा है या नहीं, सच कहूं तो मेरे लिए अब यह मायने नहीं रखता था। ऐसा लगता था मानो अभि और मैं एक साथ इतने सब कुछ से गुज़रे हैं और वैभव रास्ते में बहुत पीछे कहीं छूट गया था।

चारु ने तय किया था कि वह चार्टर्ड एकाउंटेंसी करेगी और अपने पिता की फ़र्म जॉइन करेगी। हम बाक़ी लोगों के पास ऐसे कोई विकल्प नहीं थे और हमें प्रवेश परीक्षाओं पर ही ध्यान देना था। एमबीए का कीड़ा हम सबको काट चुका था। हममें से अधिकांश ने पोस्टल कोचिंग ले ली थी। ऐसे केवल दो ही मशहूर इंस्टीट्यूट थे जो प्रेक्टिस पेपर और अध्ययन सामग्री भेजते थे। हमने अपने संसाधन को साझा किया। हमने एक स्टडी ग्रुप बनाया जिसमें महावीर कॉलेज से धीरेन, अभि, और क्रिस्टी थे और हमारे कॉलेज से सुवी और मैं थे। हम हफ़्ते में दो बार महावीर में, उनके ऑडिटोरियम में मिला करते थे, जिसमें हमारी पहुंच थी क्योंकि अभि और धीरेन उस साल फिर से यूनियन के पदाधिकारी थे।

क्रिस्टी और मैं उनमें से थे जो इस बारे में सबसे ज़्यादा गंभीर थे। हम पागलों की तरह एक-दूसरे से होड़ करते, सवाल हल करते, देखते कि किसने उसे पहले हल किया है। मौखिक क्षमता में मैं उससे कहीं आगे थी और वह मेरी पढ़ने की गति और डाटा के विवेचन से अचंभित रह जाता था। लेकिन इसकी भरपाई वह क्वांटिटेटिव क्षमता में कर लेता था। उसमें वह मुझे बुरी तरह पछाड़ देता था, जबकि मैं संख्याओं में ही उलझी रहती थी। मुझे यह तो पता था कि उनमें से अधिकांश को कैसे हल करना है, लेकिन मेरी गति बहुत अच्छी नहीं थी। मैं बहुत ज़्यादा समय लगाती थी। किसी-किसी दिन, हमारे कॉलेज या महावीर के हमारे सीनियर भी आ जाते थे जो अब कोचीन यूनिवर्सिटी ऑफ़ साइंस एंड टेक्नोलॉजी (क्यूसैट) से एमबीए कर रहे थे। वे हमारे साथ आ जुड़ते और हमें टिप्स देते। वे मॉक-इंटरव्यू लेते और ग्रुप डिस्कशन भी करवाते। मैं अभि से कहती रहती थी कि उसे ज़्यादा मेहनत करनी होगी। मुझे महसूस होता था कि कॉलेज की गतिविधियां उसकी तैयारियों पर असर डाल रही हैं। मुझे महसूस होता था कि उसे मेरा ऐसा कहना अच्छा नहीं लगता है और यह भी नज़र आता था कि जिस तरह मैं क्रिस्टी से होड़ करती थी, उससे भी वह चिढ़ने लगा था। लेकिन मेरा मक़सद साफ़ था और मैं उससे डिगने वाली नहीं थी। मैं कामयाब होने के लिए दृढ़ थी।

मुझे लगता है प्रवेश परीक्षाएं ज़्यादातर इससे जुड़ी होती हैं कि उस ख़ास दिन कोई बंदा कैसा काम करता है। बेशक, इसके लिए कड़ी मेहनत और प्रतिभा की ज़रूरत होती है, लेकिन मुख्य रूप से इसके लिए क़िस्मत भी चाहिए होती है।

जो भी हो, जब मुझे एक नहीं, चार-चार इंस्टीट्यूट से इंटरव्यू का बुलावा मिला जिनमें से एक मुंबई का मशहूर संस्थान था, तो मेरी ख़ुशी का कोई ओर-छोर नहीं था; क्यूसैट के लिए भी मेरा चयन हो गया था। इतना ख़ुशकिस्मत होने की तो मुझे कभी उम्मीद नहीं थी। मैंने ग्रुप डिस्कशन और इंटरव्यू भी पास कर लिए। मेरे माता-पिता की ख़ुशी की सीमा नहीं थी, और वे सारे रिश्तेदारों के सामने मेरी उपलब्धि की ख़ूब डींगें हांकते थे।

अभि के लिए केवल क्यूसैट से इंटरव्यू का बुलावा आया था।

मेरे डैड के पास मेरे लिए एक और सरप्राइज़ था। उन्होंने बताया कि कंपनी में उनकी तरक़्क़ी हो गई है और उनकी पोस्टिंग मुंबई हुई है। जैसे ही मेरी फ़ाइनल परीक्षाएं ख़त्म होंगी हम वहां चले जाएंगे। अभि ने जब यह सुना तो वह बहुत नाराज़ हो गया।

“देखो, अभि,” मैंने उसे समझाने की कोशिश की, “अगर मेरे घरवाले मुंबई नहीं भी जा रहे होते, तो भी हमें अलग तो होना ही था क्योंकि मैं मुंबई से ही एमबीए करने का फ़ैसला करती,” मैंने कहा।

“बस भी करो, एंक्स, क्यूसैट तुम्हारे लिए अच्छा नहीं है क्या? क्या ‘हम’ तुम्हारे लिए कुछ मायने नहीं रखते?”

हममें से अधिकांश को क्यूसैट से प्रस्ताव पत्र मिल गए थे और जिन लोगों को दूसरी जगहों से इंटरव्यू के बुलावे मिले थे, वे क्यूसैट को बैकअप विकल्प के तौर पर रखते हुए कि अगर कहीं और नहीं जा पाए तो वह है ही, उसे टालते जा रहे थे। क्यूसैट निश्चय ही मेरी पहली पसंद नहीं था।

“अभि, तुम ऐसी नासमझी की बात कैसे कर सकते हो?” मैंने कहा। “देखो, ख़ुद को मेरी जगह रखो। अगर तुम्हें उन जगहों से कॉल आई होती जहां से मुझे आई है, तो क्या तुम उस मौक़े को हासिल नहीं करते?”

“नहीं, अंकिता। मैं तब भी ऐसी ही जगह जाता जहां हम दोनों साथ पढ़ पाते। तुम मेरे लिए इतनी ही अहम हो,” उसने सरलता से कहा। मुझे समझ नहीं आया कि क्या कहूं क्योंकि मैं जानती थी कि वह सच बोल रहा है। लेकिन स्थिति यह थी कि वह कामयाब नहीं हुआ था। मैं हो गई थी।

वह जज़्बाती मूर्ख था। मेरे लिए यह ज़िंदगी का नायाब मौक़ा था। मैं उसे ऐसे ही कैसे गंवा सकती थी, किसी ऐसी चीज़ के लिए जिसे मैं मुहब्बत मान बैठी थी? कितनी बेवकूफ़ी की बात थी यह? मैं झुकने वाली नहीं थी। अभि को लगता था कि मैं पत्थरदिल हो रही हूं। मुझे लगता था कि मैं प्रेक्टीकल और समझदार हो रही हूं।

“देखो, मैंने तुमसे कहा था मेहनत करो। अगर तुमने मेहनत की होती तो तुम भी क़ामयाब हो गए होते,” मैंने कहा। मेरे लहज़े में मेरी मंशा से कहीं ज़्यादा इल्ज़ाम झलक आया था।

“हां। तुम्हारे लिए अब यह कहना आसान है, मिस बॉम्बे। एक बात कहूं, घमंड तुम्हारे सिर चढ़कर बोल रहा है।” उसने तीखेपन से कहा।

मैं सन्न रह गई। मैंने कुछ नहीं कहा और चल दी।

“मुझसे नाराज़ मत होओ,” उसने आवाज़ दी। “केवल मैं ही हूं जिसमें तुम्हें सच बताने की हिम्मत है। बाकी सब तो तुम्हारी चमचागिरी करते हैं। इस बात पर ग़ौर करना।”

मैं सुलग रही थी। उसकी हिम्मत कैसे हुई मुझसे ऐसे बात करने की? उसने आवाज़ देकर मुझसे रुकने को कहा, लेकिन उसकी बात सुनने का मेरा क़तई मूड नहीं था।

बाद में मैंने उस बात पर सोचा जो अभि ने कही थी। मैं इस नतीजे पर पहुंची कि वह ख़ुद क़ामयाब नहीं रहा इसलिए हताश और ईर्ष्यालु हो रहा है। वह मुझसे कैसे कह सकता था कि मैं अपने सपने को तिलांजलि दे दूं? वह मुझसे एक ऐसी चीज़ छोड़ने के लिए कैसे कह सकता था जिसके लिए

मैंने इतनी मेहनत की थी, सिर्फ़ इसलिए कि मैं उसके साथ रह सकूं? क्यूसैट क़तई आकर्षक नहीं था। मुंबई की चकाचौंध और ग्लैमर के सामने इसके लिए क्या गुंजाइश थी? अपने दोस्तों को छोड़ जाने को लेकर मुझे कोई पछतावा महसूस नहीं हो रहा था।

मुंबई बुला रहा था और मैं उड़ने के लिए बेताब थी।

9

प्यार कभी कम न करना

हमारे हमेशा के लिए मुंबई जाने में अभी भी एक महीना बचा था। लगता था मानो मेरे लिए सब कुछ बेहतरीन तरीक़े से हल हो गया था। जिग्सॉ पजल के टुकड़ों की तरह मेरी ज़िंदगी एकदम सही तरतीब में फ़िट हो रही थी और इस तरह से निकलकर सामने आ रही थी जिसकी मैंने कभी कल्पना भी नहीं की थी। मेरे माता-पिता को लग रहा था कि एमबीए के बेहतरीन कोर्सों में से एक में मेरे चुने जाने के बाद डैड का मुंबई तबादला ज़िंदगी की दूसरी बेहतरीन घटना थी। वे इस बात से भी बहुत ख़ुश थे कि मेरे भाई का अमेरिका की जॉन हॉपकिंस यूनिवर्सिटी में दाखिला हो गया था और वह जल्दी ही जाने वाला था।

ज़्यादातर दिन मैं अपने गैंग से मिलने निकल जाती थी और अब जब मैं कहती थी कि मैं बाहर जा रही हूं तो मेरे माता-पिता मुझसे सवाल तक नहीं करते थे। ऐसा लगता था मानो जो मैं चाहती थी वह सब करने का हक मैंने हासिल कर लिया था। हमारे गैंग के लगभग सब लोग अगले दो महीने में अपने-अपने कोर्स शुरू करने वाले थे। उन सब लोगों के लिए जो केरल से बाहर पढ़ाई करने जा रहे थे, ये कोचीन में आख़री कुछ हफ़्ते थे। भले ही भविष्य बहुत सुनहरा दिख रहा हो लेकिन हमें थोड़ा सा दुख भी था कि हम इसे छोड़कर चले जाएंगे।

हम सब चाहते थे कि इन बचे हुए आखरी दिनों का भरपूर इस्तेमाल करें और हमारा मनपसंद अड्डा 'अप्पू और पप्पू' नाम का एक रेस्तरां था जिसका रुख बैकवाटर्स की ओर था। अपने अजीबोग़रीब नाम के बावजूद जिसे हमने छोटा करके अप्पूज़ कर दिया था, वहां का माहौल ख़ुशगवार था। उन्होंने घूमने की खुली जगह के सामने दो बड़े छायादार पेड़ों के आसपास बैठने का इंतज़ाम किया था। जब वहां बैठकर हम अपने मंगाए मॉकटेल की चुस्कियां लेते और स्नैकस खाते हुए लोगों को टहलते देखते तो हमारे चारों ओर मद्धम-मद्धम बहती समुद्र की नमकीन हवा जैसे हमें एक साथ बांध देती थी। ढलता सूरज समुद्र में नारंगी और सुनहरे रंग के लाखों रंग छिड़क देता था और नर्म रोशनी में दमकते चेहरे लिए हम बतियाते, हंसी-मज़ाक़ करते तब तक वहां जमे रहते जब तक कि अंधेरा नहीं हो जाता और दिखना बंद नहीं हो जाता था। फिर हम तय करते कि अब घर जाने का समय हो गया है।

हर दिन अभि भी वहां होता था। उस दिन के बाद से मैं उससे अलग से नहीं मिली थी जब मैं ग़ुस्से में उसकी माफ़ियां सुनने से इंकार करती उसके

पास से चली आई थी। मैं हमेशा यह पक्का कर लेती थी कि उससे गैंग के एक हिस्से के रूप में ही मिलूं। मैं तो यह भी नहीं सुनना चाहती थी कि उसे क्या कहना है। इसलिए मैं बाक़ी सबसे थोड़ा देर में ही पहुंचती थी और थोड़ा पहले उठ जाती थी। एक शाम सुवी ने मुझे फ़ोन किया और मुझसे होस्टल में मिलने को कहा क्योंकि वह मेरे साथ कुछ समय अकेले बिताना चाहती थी। मैं उससे मिली।

“तुम्हारे और अभि के बीच हुआ क्या है? तुम बर्फ़ की गुड़िया बनी हुई हो। उम्मीद है तुम्हें भी यह पता होगा,” उसने कहा।

“क्या बर्फ़ की गुड़िया? तुम क्या चाहती हो मैं क्या करूं? उसे ख़ून से प्रेमपत्र लिखूं?” मैंने कुछ तीखेपन से जवाब दिया।

“मान भी जाओ, एंक्स। तुमने देखा है वह कैसे किसी खो गए बच्चे की तरह तुम्हें देखता रहता है? यह मत कहना तुम्हारी महत्वाकांक्षा ने तुम्हें इतना अंधा कर दिया है कि तुम यह देख भी नहीं सकतीं।”

“उफ़, तुम भी! तुम लोगों के साथ परेशानी क्या है? सिर्फ़ इसलिए कि मेरा दाख़िला हो गया और तुम लोगों का नहीं हुआ, मुझे इसकी सजा भुगतनी पड़ेगी? मैं कहां से अंधी हो गई? और मेरी महत्वाकांक्षा का इससे क्या लेना-देना है?”

“इडियट, तुम समझने की कोशिश भी नहीं कर रही हो कि मैं क्या कह रही हूं। तुम इसी तरह बर्ताव करती रहोगी तो यह ग़लत है। कम से कम अभि से बात तो करो। उसे ठीक से सारी बात बताओ। उसका इतना तो हक़ बनता ही है। अगर तुम इसे ख़त्म करना चाहती हो तो ख़त्म कर दो। लेकिन उसे इस तरह लटकाए तो मत रखो। यह निर्मम है, एंक्स,” उसने धीमे-धीमे और धीरज के साथ कहा मानो किसी बच्चे को समझा रही हो और इसने विचित्र रूप से मुझे शांत कर दिया था।

“सुवी, मैंने सच में कोशिश की थी। वह चाहता है कि मैं क्यूसैट में उसके साथ एमबीए करूं। कैसे कर सकती हूं मैं? यह कैसा पागलपन है? पहली बात तो मैं ख़ुद भी नहीं चाहती और अगर मान लो मेरे मानने की कोई गुंजाइश हो भी तो आख़िर मैं अपने माता-पिता से क्या कहूंगी? उसने यह भी सोचा है?” मैंने उससे पूछा।

“मेरे ख़्याल से तुम्हें एक बार उससे मिलना चाहिए और साफ़-साफ़ बात करनी चाहिए। इससे ग़लतफ़हमियां दूर हो जाएंगी,” उसने कहा।

मैंने तय किया कि मैं उससे मिलूंगी। मैं भी उसके साथ यह लुकाछिपी का खेल खेलते हुए, बोलते मगर बात न करते हुए असहज हो रही थी। अब समय आ गया था कि इस बचकाना नादानी को ख़त्म कर दिया जाए।

एक शाम जब मेरे माता-पिता घर पर नहीं थे तो मैंने अभि को फ़ोन किया। उन दिनों मेरे माता-पिता व्यस्त थे और अक्सर बाहर चले जाते थे क्योंकि हमारे मुंबई शिफ़्ट होने से पहले उन्हें ढेरों काम निबटाने थे। अभि के नाना ने फ़ोन उठाया और बेशक उन्हें मैं याद थी।

“तुम्हारी आवाज़ सुनकर कितना अच्छा लग रहा है, मौली! प्लीज़ होल्ड करो, मैं अभि से कहता हूं कि अपने कमरे से फ़ोन उठा ले,” उन्होंने प्यार से मलयालम में मुझे ‘बेटी’ का संबोधन देते हुए कहा। मुझे उनका यह अंदाज़ बहुत प्यारा लगा और मुझे यह भी अहसास हुआ कि अपने पोशीदा तरीक़े से वे मुझे यह भी बताना चाह रहे थे कि अभि अपने कमरे से बात करेगा और इसलिए हमें प्राइवेसी मिलेगी। मैं उनकी इस समझदारी से जज़्बाती हो गई और मुझे अभि से थोड़ी जलन भी हुई इस सहज रिश्ते के लिए जो उसका अपने नाना के साथ था।

“हाइ,” अभि के फ़ोन उठाने पर मैंने कहा।

“एंक्स!” वह चहक उठा। वह एकदम हैरान रह गया था, ख़ुशी उसकी आवाज़ से छलक रही थी। “वाह, वाह! देखो तो मुझे कौन फ़ोन कर रहा है! और इससे पहले कि तुम कुछ कहो, मुझे बहुत अफ़सोस है। तुमने तो मेरी बात सुनी भी नहीं और तुम्हें समझाने के लिए मैंने तीन बार तुम्हें फ़ोन भी किया। तीनों बार तुम्हारी ममा से बात हुई।”

“माफ़ी की ज़रूरत नहीं है और अब तक तो तुम्हें समझ जाना चाहिए था कि अगर तुम मेरी मॉम से बात करोगे तो मुझ तक संदेश कभी नहीं पहुंचेगा। मुझे हैरानी है कि उन्होंने तुमसे बेरुख़ी से बात नहीं की।”

“की थी लेकिन मैंने भी हार नहीं मानी। और दूसरों के सामने मैं ये सब कहना नहीं चाहता था और तुम्हें बताने का सच में कोई मौक़ा नहीं मिला।”

“हां, इसके लिए शुक्रिया। सुनो, हमें मिलना चाहिए। मैं तुमसे बात करना चाहती हूं।”

“बिल्कुल, मैडम! कभी भी, कहीं भी। तुम्हारी इच्छा मेरे लिए हुक्म है,” उसने कहा। उसकी आवाज़ की ख़ुशी ने मेरा दिल जैसे तोड़कर रख दिया था।

मैंने मन ही मन सुवी को कोसा। यह उसी का ज़बर्दस्त आइडिया था कि उससे मिलूं। पहले वाली स्थिति ही यक़ीनन ज़्यादा आसान थी। हम इसे ही बनाए रखते और फिर मैं मुंबई चली जाती और धीरे-धीरे हम स्वाभाविक रूप से अलग हो जाते। मगर यह तकलीफ़देह था। उसकी आवाज़ की वास्तविक ख़ुशी और उतावली से मेरे गले में कुछ फंसने सा लगा था।

“मेरे घर पर मिलना चाहोगी?” उसने पूछा।

“नहीं,” मैंने कहा। उसके कमरे की आत्मीयता को मैं बर्दाश्त नहीं कर सकती थी और उसके अपने ही घर में उससे रिश्ता ख़त्म करना मुझे बहुत निर्मम लगा। “कल सुबह अप्पूज़ में मिलते हैं। सुबह में वहां आसपास कोई नहीं होता है।” मैंने कहा।

“ठीक है, अप्पूज़ ही सही। दस बजे?” उसने पूछा।

“हां, मैं पहुंच जाऊंगी,” मैंने कहा।

“मैं तुमसे पहले पहुंच जाऊंगा और, ए, अंकिता, आई लव यू,” उसने कहा और उसकी आवाज़ की कोमलता मेरे कलेजे में नश्तर की तरह चुभी।

“बाइ,” मैंने फ़ोन रखते हुए कहा।

जब मैं पहुंची तो अपने वादे के मुताबिक़ वह इंतज़ार कर रहा था। मुझे देखते ही वह उछलकर खड़ा हो गया और उसने मेरे गाल पर चुंबन जड़ दिया।

“अभि! क्या कर रहे हो? यह पब्लिक प्लेस है!” उसकी हरकत से सकपकाकर मैंने कहा। कोचीन जैसी जगह पर पब्लिक प्लेस पर किसी लड़की का किसी लड़के से अकेले बात करना ही स्वीकार्य नहीं था। और इस तरह की हरकत तो किसी लड़के-लड़की द्वारा किया जाने वाला घोर अपराध था। मैंने जल्दी से आसपास देखा कि किसी ने देखा तो नहीं और यह देखकर राहत की सांस ली कि वह जगह लगभग सुनसान थी।

“मैं ख़ुद को रोक ही नहीं पाया, एंक्स, तुम बहुत प्यारी लग रही हो!”

सुदूर देशों की ओर जाते जहाज़ों और नावों की पृष्ठभूमि वाले चमकते-दमकते साफ़ नीले पानी को देखते हुए हम शेड में बैठ गए।

“तो, कहो! तुम मुझसे क्यों मिलना चाहती थीं?” अभि ने पूछा। उसकी आंखें अभी भी प्यार से चमक रही थीं और पेड़ों की धूप-छांह उसके चेहरे पर आड़ी-तिरछी परछाइयां उकेर रही थी।

प्यार, उसका चाहे जो भी रूप हो, बहुत ही अजीब शै होता है। मैं उसी पल जान गई थी कि जो मैं वास्तव में उससे कहना चाहती हूं वह मैं नहीं कह पाऊंगी। कम से कम आज नहीं, अभी नहीं, मैंने तय किया।

“बस ऐसे ही। उस दिन के बाद हम मिल ही नहीं पाए थे। तो मैंने सोचा कि हमें कुछ समय साथ बिताना चाहिए,” मैंने कहा। मैं जानती थी कि मैं क़ायर हो रही हूं। मेरी अंदरूनी आवाज़ मुझे कोंच रही थी कि आगे बढ़ और उससे कह दे कि यह ख़त्म हो गया है। लेकिन मैं नहीं कह पाई।

“ओह, अंकिता, मैं कितना ख़ुश हूं। जानती हो, पिछले कुछ दिन से मैं ठीक से सो भी नहीं पा रहा हूं क्योंकि मुझे लग रहा था कि हमारे बीच दूरी बढ़ती जा रही है। लेकिन आज मैं समझ गया हूं कि यह मायने नहीं रखता। मायने रखता है तो अब।”

“हां, ईश्वर ही जानता है कि मेरे एक बार मुंबई चले जाने के बाद हम कब मिल पाएंगे,” मैंने अपनी ओर से भरसक नर्मी से कहा। मैं उसे हक़ीक़त में वापस लाना चाहती थी।

“यानी, तुम इस पर अड़ी ही हो?”

“मैं तुम्हें बता चुकी हूं, अभि। कोई ऐसी वजह नहीं है जो मैं अपने माता-पिता को बता सकूं, जो मेरे कोचीन में रुकने लायक ठोस हो और तुम भी यह जानते हो। इसे फिर से शुरू मत करो, प्लीज़।”

“अंकिता, मुझसे शादी कर लो! तुम्हारे जाने से पहले हम शादी कर लेते हैं,” अभि ने कहा।

मैं तो एकदम हक्की-बक्की रह गई थी। वह पागल था क्या? उसका दिमाग़ खराब हो गया था?

“तुम कह क्या रहे हो, अभि? तुम संजीदा हो?!” मैं चिल्ला उठी, उस दिन मुझे दूसरी बार झटका लगा था।

“देखो, मैं इस बारे में सोच चुका हूं। हम चुपचाप कोर्ट मैरिज करेंगे। तुम नैना और यामिन को जानती हो? उन्होंने भी यही किया था। और तुम्हें पता है—उनके माता-पिता को तो पता भी नहीं है। उनका इरादा है कि यामिन को नौकरी मिलते ही वे अपने-अपने माता-पिता को बता देंगे। तब तक वे अलग रहेंगे और रोज़ाना कॉलेज में मिलना और सब कुछ पहले की तरह चलता रहेगा,” उसने कहा।

नैना और यामिन के बारे में मुझे पता था, वे महावीर में दूसरे वर्ष के पोस्टग्रेजुएट छात्र थे। लेकिन उनकी चोरी-छिपे की गई शादी का मुझे कोई इल्म नहीं था।

“क्या?! उन्होंने शादी कर ली?” मैं चिल्ला पड़ी।

उसने हामी भरी।”अरे, दोनों इक्कीस के ऊपर हैं और आपको बस एक महीने का समय और दो गवाह चाहिए। अगर आप सही लोगों को जानते हैं तो वास्तव में एक महीना भी नहीं चाहिए। और मुझे पता है किसकी हथेली गर्म करनी है। कॉलेज की सियासत में रहना बहुत कुछ सिखा देता है,” उसने व्यावहारिक ढंग से कहा।

बात हाथ से निकलती जा रही थी और ऐसी दिशा में जा रही थी जिसका मैंने अंदाज़ा भी नहीं किया था।

“रहने भी दो, अभि। हम ऐसा नहीं कर सकते,” मैं समय लेने के लिए ठहरी, सोचते हुए कि क्या कहूं।

“अरे, हां, कर सकते हैं। क्यों नहीं कर सकते? कुछ लोग ऐसे होते हैं जो चीज़ों को उसी तरह देखते हैं जैसी वे होती हैं और पूछते हैं क्यों। मैं ऐसी चीज़ों का सपना देखता हूं जो कभी थीं ही नहीं और पूछता हूं क्यों नहीं। क्यों नहीं? क्यों नहीं?” उसने कैनेडी को उद्धृत करते हुए कहा।

बिकॉज़ इट मस्ट हैव बीन लव बट इट्स ओवर नाउ। (क्योंकि यह प्यार रहा होगा मगर अब यह ख़त्म हो चुका है।)

लेकिन पता नहीं क्यों कैनेडी के उद्धरण का रॉक्सेट के गाने से मिलान करना, ख़ासकर उस पल में बहुत नीचतापूर्ण लगा और मैं पीछे हट गई। इसके बजाय, मैंने इसके जोड़ में एक दूसरा उद्धरण कहा जो मुझे याद था।

“प्रकृति की गति को अपनाओ। उसका राज धैर्य है,” मैंने अस्पष्ट ढंग से कहा। “राल्फ वाल्डो एमर्सन, अगर तुम्हें पता न हो,” मैंने जोड़ा।

वह मुस्कुराया। “अगर तुम हां कह दो तो मैं तुम्हारे लिए ज़िंदगी भर इंतज़ार करने को तैयार हूं, अंकिता।”

मैं वादा कैसे कर सकती थी? मैं उससे कैसे कह सकती थी कि मेरे सपने कोचीन शहर से पार निकल गए हैं? वे बाहर की जिंदगी का मज़ा ले चुके थे। बाहर वे एक विस्तृत दुनिया देख चुके थे। मैं उसका एक हिस्सा चाहती थी। वह मेरा था, बस कहने भर की देर थी। मुझे इस तरह बांधा नहीं जा सकता था। मैं वचनबद्ध नहीं हो सकती थी। मैं उसे अपनी जबान नहीं दे सकती थी। अरे, मैं तो उससे यह भी नहीं कह सकी थी कि मैं उससे प्यार करती हूं।

“ओह, अभि। मैं कुछ वादा नहीं कर सकती। काश मैं कर पाती।” मैंने कहा, यह कहते हुए मुझे ख़ुद से नफ़रत हो रही थी। लेकिन यह सामने था। उघड़ा हुआ खुले में। यह सच था और यह कफ़न की तरह हवा में लटका हुआ था।

वह हताश दिख रहा था। न जाने कितनी देर तक वह कुछ नहीं बोला।

मैंने नज़रें हटा लीं और समुद्र को देखने लगी। मुझे समझ नहीं आ रहा था कि इस झटके को हल्का करने के लिए क्या कहूं।

जब आख़िरकार वह बोला, तो उसके शब्द फुसफुसाहट जैसे थे। “कम से कम संपर्क में रहना, मेरी बस इतनी सी मांग है,” उसने कहा। “बस इतनी सी मांग है।”

सालों बाद जब मैं अपने बहुत बुरे दौर से गुज़र चुकी थी और जब मुझमें अक़्ल आ गई थी, तब उसके शब्दों की गहराई मुझे आहत करती

थी। उस समय तो मैंने यह तक नहीं कहा था कि मैं संपर्क में रहूंगी क्योंकि मैं सच में नहीं जानती थी और इस तरह की बातें कहना थोड़ा बचकाना लगा था। हमने एक-दूसरे से गुडबाइ कहा। मगर आने वाले सालों में, मैं अपने मन में इस दृश्य को बार-बार, लौट-लौटकर दोहराती थी, उसके शब्द मेरे कानों में गूंजते थे।

***

अगले रोज़ इतवार था और मेरे माता-पिता फिर रिश्तेदारों से मिलने निकल गए थे। मैं इस सबसे उकता चुकी थी इसलिए घर पर ही रही। तभी मेरे पास सुवी का फ़ोन आया था।

"ए, तेरे और अभि के बीच आख़िर हुआ क्या? क्या तू रात को उसके साथ रही थी?" उसने पूछा। वह जानती थी कि मैं उससे मिलने वाली थी लेकिन उसके बाद मैंने उससे बात नहीं की थी।

"पागल है? मैंने ऐसा कुछ किया होता तो तुझे नहीं बताती? भूल गई है क्या कि मैं होस्टल में नहीं रहती, अपने माता-पिता के साथ रहती हूं। तूने यही बेवकूफ़ी का सवाल पूछने के लिए फ़ोन किया है?"

"नहीं, गधी। कल सुबह से ही अभि घर से ग़ायब है। वह रात को घर नहीं गया। अभी-अभी धीरेन का फ़ोन आया था। अभि के नाना बहुत परेशान हैं। पुलिस भी उसे तलाश कर रही है। उसके डैड को भी ख़बर कर दी गई है।"

"हे भगवान," मैंने कहा। "नहीं, मुझे ज़रा भी आइडिया नहीं है। आख़री बार मैंने उसे कल सुबह देखा था।"

मुझे समझ नहीं आ रहा था क्या करूं। मैं उसके नाना को फ़ोन करके बताना चाह रही थी कि पिछले दिन मेरे और अभि के बीच क्या हुआ था। लेकिन उससे क़तई कोई मदद नहीं मिलती। हो सकता है रात को वह किसी दोस्त के यहां रुक गया हो और उसने बहुत पी ली हो और इसीलिए अपने नाना को फ़ोन न किया हो, मैंने सोचा। लेकिन मेरे ही मन को यह तर्क खोखला जान पड़ा। अभि ऐसा नहीं था। वह ज़िम्मेदार था और अपने नाना से बहुत ज़्यादा प्यार करता था। मुझे पता था कि एक-दो पैग पीकर अपने नाना के सामने जाने में उसे कभी कोई दिक़्क़त नहीं हुई होगी। दिल डूबने के उस अहसास से लड़ने के लिए मैं कुछ नहीं कर सकती थी जो धीरे-धीरे हावी होने लगा था और उस ठंडे पानी की तरह मुझे भिगोने लगा था जिसे किसी कुर्सी पर बिखेर दिया गया हो और जिस पर अनजाने ही आप बैठ गए हों।

अगले दिन मेरी मां ने यह ख़बर मुझे दी थी। वह सारे अख़बारों में छाई हुई थी।

“तुम इस लड़के को जानती हो? बहुत दुख की बात है। उसकी लाश वाइपीन में मिली। जवान लड़का था। पता नहीं ये लोग शराब क्यों पीते हैं।” मुझे अख़बार थमाते हुए उन्होंने कहा।

डूबने का वह अहसास एक विशाल लहर में बदल गया था और अब मैं उसमें पूरी तरह डूब गई थी। मैं इतनी सन्न रह गई थी कि कुछ कह भी नहीं पाई। मैंने रिपोर्ट पढ़ी जिसमें लिखा था कि पुलिस को फ़ोर्ट कोच्चि के समुद्र तट पर उसकी बाइक और व्हिस्की की ख़ाली बोतल मिली थी। बाइक तो पिछले दिन ही मिल गई थी। लेकिन लाश मीलों दूर पड़ोसी शहर वाइपीन में देर रात गए बहकर तट पर आई थी।

लोग कहते हैं कि जब कोई विपदा आ पड़ती है तो वह आपकी सामान्य इंद्रियों को इस क़दर सुन्न कर देती है कि जज़्बात बेकाबू नहीं होने पाते। शायद मेरे साथ भी यही हुआ था।

“हां, मैं इसे जानती हूं। मैंने इसे युवा उत्सवों में देखा है,” मैंने अख़बार वापस करते हुए ख़ुद को शांत आवाज़ में मां से कहते सुना। मैं अपनी चालाकी भरी लाइन पर हैरान थी जो पूरी तरह झूठ भी नहीं थी।

मैं अपने कमरे में गई और बेड पर बैठ गई, मेरा दिल ज़रूरत से ज़्यादा काम किए पंप की तरह धड़क रहा था। दर्द ने मुझे सुन्न कर दिया था। मुझे सुवी से मिलना था। मैं इसे अकेले नहीं संभाल सकती थी। किसी तरह मैंने बेपरवाह सा मुखौटा ओढ़कर मां से कहा कि मैं पूरे दिन के लिए बाहर जा रही हूं और सुवी को फ़ोन किया।

वह होस्टल के गेट पर मेरा इंतज़ार कर रही थी। मुझे देखते ही उसने मुझे भींचकर सीने से लगा लिया। फिर हम मेहराबों की ओर चल दिए। तब जाकर आख़िरकार मेरा बांध फूट पड़ा। सुबकियों के बीच मैंने उसे वह सब कुछ बता दिया जो पिछले दिन हुआ था। मेरी नाक बह रही थी, मैं रोती जा रही थी और आस्तीनों से उसे पोंछती जा रही थी। मुझे कोई परवाह नहीं रही थी।

मैंने सुवी से कहा कि मुझे अभी उसके नाना से बात करनी होगी। मुझे अपने ऊपर बात कर पाने का भरोसा नहीं था। हम कॉलेज के गेट के ठीक बाहर स्थित एक फ़ोन बूथ पर गए। मैंने सुवी से कहा कि उसके नाना को पूछे और जब वे फ़ोन पर आएं तो मुझे फ़ोन पकड़ा दे। मैंने उसे मलयालम में अभि के अप्पचन के लिए पूछते सुना।

जब वे लाइन पर आए तो मुझे समझ में नहीं आया कि क्या कहूं।

“हैलो, जी, मैं अंकिता हूं, अभि की दोस्त,” मैंने बेवकूफ़ों की तरह कहा।

"मौली," वे बोले, उनकी आवाज़ दर्द में डूबी थी। "मैं जानता हूं वह तुम्हें प्यार करता था। मैं नहीं जानता कि तुम दोनों के बीच क्या हुआ, लेकिन मुझे बस एक बात कहनी है। तुम जवान हो, ख़ूबसूरत हो। प्लीज़ याद रखना, मौली, *स्नेहम मात्रम पुचिकरुथु* । भले ही वह कहीं से भी आए," और वे रोने लगे। एक बड़े-बुज़ुर्ग आदमी के रोने की आवाज़ उन सबसे ज़्यादा तन्हा और सबसे ज़्यादा उदास आवाज़ों में से थी जो मैंने अपनी जिंदगी में सुनी थीं। मलयालम में कहे उनके शब्दों ने मुझे झुलसाकर मेरी आत्मा में छेद कर दिया था। अपनी ज़िंदगी में कभी भी मैं इन शब्दों को या उनकी आवाज़ को नहीं भुला पाऊंगी। "मुहब्बत को कभी बेइज़्ज़त मत करना," यह सबसे करीबी अनुवाद है जो उस दिन उनके कहे शब्दों का मैं कर पाई हूं।

वे आगे कहते रहे कि कुछ देर पहले पुलिस आई थी और ख़ासतौर से पूछ रही थी कि क्या उसका किसी के साथ प्रेम संबंध था। पुलिस कह रही थी कि 'लव अफ़ेयर्स'की वजह से आत्महत्या कर लेना बहुत आम है। उसके नाना ने मुझे बताया कि अभि कभी नहीं चाहता कि मेरा नाम इस सबमें घसीटा जाए और इसलिए उन्होंने बयान दर्ज़ करवाया कि जहां तक उन्हें पता है, ऐसी कोई बात नहीं थी। ख़ामोशी और ख़ुदगर्ज़ी से मैंने उनकी दरियादिली को धन्यवाद दिया। मैं थोड़ा और रोई, लेकिन उसके बाद मैंने फ़ोन रख दिया।

पोस्टमॉर्टम की रिपोर्ट में बताया गया कि मौत डूबने से हुई थी और अल्कोहल के उच्च स्तर ने इसमें योगदान दिया। अंत्येष्टि अगले दिन थी।

मैं अंत्येष्टि में नहीं गई। मैंने सुवी से कह दिया कि मैं नहीं जा सकूंगी। उसने मुझे मनाने की बहुत कोशिश की। लेकिन मैं अपने फ़ैसले से टस से मस नहीं हुई।

"मैं उसकी फूली हुई लाश नहीं देखना चाहती। मैंने उसे तब देखा है जब वह ज़िंदा और ठीकठाक था और वही मेरी आख़री यादें रहेंगी," मैंने कहा। इसके लिए मुझे ख़ुद से नफ़रत हो रही थी। फिर भी मैं जाने की हिम्मत नहीं जुटा सकी।

मैं हैरान थी कि उसने इतनी शराब क्यों पी। क्या समुद्र में पानी चढ़ आया और वह इतना नशे में था कि उसका इस ओर ध्यान ही नहीं गया? क्या वह बह गया था और फिर बहुत देर हो गई थी? क्या रात में वह मदद के लिए चिल्लाया होगा? क्या उसकी चीख़ें ज़ोरों की रही होंगी? उसने समुद्र किनारे अकेले बैठकर शराब पीने जैसा बेवकूफ़ी का काम किया ही क्यों था? मेरे मन की आवाज़ चीख़-चीख़कर जवाब देते हुए मुझे ही इल्ज़ाम दे रही थी।

लेकिन मैंने उसे ख़ामोश कर दिया, मैंने उसे उठने ही नहीं दिया, मैं उसे सुनना ही नहीं चाहती थी।

मैं चाह रही थी कि काश मैंने उससे कह दिया होता कि मैं संपर्क रखूंगी। काश मैंने उससे कहा होता कि मेरा एक हिस्सा उसे प्यार करता है। काश मैंने उसे दिलासा दिया होता कि साल में एक बार छुट्टियों में जब मैं कोचीन आया करूंगी, तो हम मिला करेंगे। मैंने हज़ारों-लाखों बार कामना की। मैंने हज़ारों-लाखों चीज़ों की कामना की।

वे बस कामनाएं ही रहीं जो ताउम्र मुझे सताती रहेंगी और जिन्होंने मुझे एक ऐसा अहम सबक़ सिखाया था जो तब तक मेरे साथ रहेगा जब तक मैं जीवित रहूंगी और भविष्य में लोगों के साथ मेरे बर्ताव को तय करेगा—मुहब्बत की कभी बेइज़्ज़ती न करना, चाहे वह कहीं से भी आए और अपनी बोली और कामों में थोड़ा सा विनम्र, अच्छा और दयालु बनना।

10

आगे ही आगे

मुंबई वह सब कुछ थी जिसके होने की मैंने कल्पना की थी और वह सब कुछ भी थी जिसकी मैंने कभी कल्पना भी नहीं की थी। मुंबई तो उस किंवदंतियों वाले हाथी की तरह है जिसका पांच नेत्रहीन आदमी वर्णन करते हैं। हर कोई उसके एक नन्हे से भाग को ही महसूस करता है और आश्वस्त हो जाता है कि उसके वर्णन वाली मुंबई ही असली मुंबई है।

यह संस्कृतियों, व्यक्तित्वों, बस्तियों का एक विशाल कड़ाह है और वे सब बिना किसी प्रयास के इसमें घुलमिल जाती हैं और एक नए घालमेल का निर्माण करती हैं जो सबका स्वागत करता है। यह लगभग चमत्कारिक है। यह बेमानी है कि आप देश के किस हिस्से से आते हैं, यह बेमानी है कि आप विदेशी हैं या स्वदेशी, यह बेमानी है कि आप क्या पहनते हैं या कैसे बोलते हैं, मुंबई ख़ामोशी से आपको समझती है, स्वीकार करती है और अपने आग़ोश में समेट लेती है। आप घर का सा सुकून महसूस करते हैं और वहां तालमेल बिठा लेते हैं।

मुंबई में लोग दूरियों को यात्रा में लगने वाले समय से मापते थे। सबर्बन रेलवे रोजाना साठ लाख से ज़्यादा मुसाफ़िरों को ले जाती थी। यह ख़ुद भारतीय रेलवे की यात्री क्षमता के आधे से अधिक था। मैं भी मुंबई की लोकल लेती थी, पानी में बत्तख़ की तरह और साठ लाख में से एक मुसाफ़िर बन जाती थी। मेरे बैच में हम लगभग साठ लोग थे। इंस्टीट्यूट का अपना कोई होस्टल नहीं था लेकिन बाहर से आने वाले छात्रों को बॉम्बे यूनिवर्सिटी के होस्टलों में आवास दे दिया जाता था। अन्यों में अधिकांश डे स्कॉलर थे और लोकल ट्रेनों का इस्तेमाल करते थे।

ज़्यादातर दिनों पर मैं सुबह सात बजे घर से निकलती क्योंकि कॉलेज पहुंचने में मुझे क़रीब एक घंटा बीस मिनट लग जाता था। मैंने बहुत कम समय में ही मुंबई में सफ़र करना सीख लिया था।

मेरे नए कॉलेज में सबने दिल खोलकर हमारा, नए छात्रों का स्वागत किया। डीन, डाइरेक्टर और दो अन्य प्रोफ़ेसरों ने हमें संबोधित किया। उन्होंने वही सामान्य सी बातें कहीं जो ऐसे अवसरों पर कही जाती हैं। उन्होंने कहा कि किस तरह एक नए सफ़र की ओर यह हमारा पहला क़दम है, किस तरह कोर्स की समाप्ति पर हमारा रूपांतरण हो जाएगा और कैसे हम नेतृत्व करेंगे और कॉरपोरेट दुनिया में अपनी जगह लेंगे। उन्होंने इंस्टीट्यूट की शान के बारे में बात की। हम क्या अपेक्षा करें, इसकी उन्होंने हमें एक रूपरेखा दी। फिर एक स्लाइड शो था। एक स्लाइड थी, जिसने

हम सबको बहुत महत्वपूर्ण महसूस करवा दिया था—उन्होंने उन लोगों की संख्या जिन्होंने आवेदनपत्र भेजा था और उस संख्या की गणना की थी जिनका अंततः दाख़िला हुआ था और हमें चयन होने की संभाव्यता के बारे में बताया और कि हम एक गौरवान्वित अंश में थे। उन्होंने हमें विशिष्ट और एक उत्कृष्ट वर्ग का हिस्सा महसूस करवाया। इसके बाद हमने स्नैक्स और जलपान का ब्रेक लिया।

सत्र का दूसरा हिस्सा मौन तोड़ने का सत्र था। उन्होंने हम सबके नामों की पर्चियां एक बाउल में डालीं और एक बार में पांच को बाहर निकाला, और उन पांच का एक ग्रुप बनाया गया। मेरी कक्षा में बस बारह लड़कियां थीं। लड़कियों के मुकाबले लड़के कहीं ज़्यादा संख्या में थे। किसी अजीब सी जुगत से मेरे ग्रुप में मुझे मिलाकर तीन लड़कियां थीं। बाक़ी सारे ग्रुपों में एक लड़की या केवल लड़के ही थे। हमारे ग्रुप के दोनों लड़कों को दूसरे लड़के बेझिझक ईर्ष्या से तक रहे थे मानो कह रहे हों "सालों, बड़े किस्मतवाले हो।" हमें चर्चा और तैयारी करने का समय दिया गया और हमें अपने ग्रुप के बारे में स्लाइड्स के साथ एक छोटी सी एड फ़िल्म बनानी थी जिसमें प्रत्येक सदस्य का परिचय, उनकी पसंद, नापसंद और कोई भी ऐसी बात देनी थी जो हमें प्रासंगिक लगती हो। उन्होंने हमसे उतना रचनात्मक, और भिन्न होने को कहा था जितना हम हो सकते थे। उन्होंने हमें ओएचपी शीट ओर मार्कर दिए और काम में लगा दिया। शुरू में तो सब हिचकिचाते और गुमसुम से लगे, लेकिन धीरे-धीरे सबने बोलना शुरू कर दिया और कुछ ही देर में हंसी, छेड़खानी और चर्चाएं शुरू हो गई, क्योंकि प्रत्येक ग्रुप अपने सामने मौजूद काम में जुट गया था।

मेरे ग्रुप में दो लड़कियां छाया और जिग्ना थीं, दोनों ही मुंबई में पली-बढ़ी थीं। वे विपरीतता का अध्ययन प्रस्तुत करती थीं। छाया पतली और छोटी सी थी और इतनी बच्ची सी लगती थी मानो दसवीं कक्षा में पढ़ती हो, न कि मैनेजमेंट इंस्टीट्यूट की छात्रा। जिग्ना बहुत लंबी, गोरी और गठे बदन की थी, उसके बाल छोटे थे और वह बहुत आत्मविश्वासी थी। मुझे जिग्ना नाम बहुत ही असामान्य सा लगा और इसलिए मुझे दो बार उसका नाम पूछना पड़ा था। मेरी तरह ही जिग्ना को भी किसी काम का अनुभव नहीं था और वह सीधे कॉलेज से आई थी। दोनों लड़कों में एक जोजेफ़ नाम का लड़का किसी बेखबर प्रोफ़ेसर जैसा दिखता था। उसके बेतरतीब घुंघराले बाल और चमकती आंखें थीं। जोजेफ़ ने दो साल एक शिपिंग फर्म में काम किया था। उदय की दाढ़ी थी और उसके हावभाव में बेचैनी और घमंड सा झलकता था। वह इंजीनियरिंग कॉलेज से आया था लेकिन ऐसे छात्र के नाते बहुत बड़ी उम्र का दिखता था जिसने अभी-अभी इंजीनियरिंग पूरी की हो।

***

नए कॉलेज में मेरी कक्षाएं पूरे जोशो-खरोश के साथ शुरू हो गई थीं।

एग्निस के दिन किसी दूसरी ज़िंदगी, और किसी दूसरी दुनिया की बात लगते थे। मुझे मुंबई आए हुए लगभग दो महीने ही हुए होंगे लेकिन लगता था जैसे मैं हमेशा से यहीं रही थी। यह मेरे मिज़ाज की ही बात थी या शायद जगह का असर था, लेकिन मैंने इसे बहुत बेहतरीन तरीक़े से लिया था और मैं पूरी तरह से सहज थी। मैंने नए दोस्त भी बना लिए थे और मैं ख़ुश थी कि मैं उनमें रम गई हूं।

मुझे सच में अपना कोर्स अच्छा लगने लगा था। हालांकि मैनेजमेंट स्कूल की अध्यापन शैली उस सबसे बहुत भिन्न थी जिसे मैंने अभी तक जाना था। पहली बार मैंने देखा था कि विषयों को बिना किताबों या लेक्चर्स के भी पढ़ाया जा सकता है, कम से कम पारंपरिक तरीक़े से नहीं।

सुवी और वैभव दोनों से मेरी बातचीत होती थी। उनके ख़त पाकर और फिर से उनके संपर्क में रहकर मुझे बहुत ख़ुशी होती थी।

लगभग इसी समय की बात थी जब दौड़ने में मैं मुस्तैदी से दिलचस्पी लेने लगी थी। मुझे याद नहीं यह कैसे शुरू हुआ था, लेकिन अचानक मैंने तय किया कि मैं जॉगिंग किया करूंगी। स्कूल में तो मैं हमेशा खेलों में मुस्तैदी से भाग लेती थी लेकिन कॉलेज में शायद मैं इसे भूल ही गई थी। मैंने अपने माता-पिता के सामने अपना इरादा ज़ाहिर कर दिया और घर की दूसरी चाबी अपने पास रख ली ताकि जब मैं जाऊं तो उन्हें परेशान न करना पड़े। जिस रेज़ीडेंशियल कॉम्प्लेक्स में मैं रहती थी, वहां एक बहुत ख़ूबसूरत जॉगिंग ट्रैक था। मैं सुबह पांच बजे उठ जाती और जॉगिंग के साथ अपना दिन शुरू करती थी। यह बहुत शक्तिदायक था। जब मैं अपना दिन शुरू करती तो ख़ुद को ऊर्जा से भरा और बेहद जीवंत महसूस करती थी। वे दृश्य जो आमतौर पर मैं नहीं देख पाती थी—बांटने के लिए तैयार अख़बारों का ढेरियों में रखा जाना, दूध की थैलियों का आना, लोगों का अपने कुत्तों को टहलाना, पार्क में एक समूह में बुज़ुर्गों का योगासन करना —ये सब मेरा अभिवादन करता और मैं इसे देखती थी, इस सच को सराहते हुए कि वहां, ठीक मेरी नाक के नीचे एक बिल्कुल ही भिन्न नई 'सुबह की दुनिया' थी जिससे मैं अब तक महरूम रही थी।

उस दिन जब मैं कॉलेज पहुंची तो जिग्ना और जोजेफ़ दोनों ने कहा कि मैं बहुत ऊर्जावान दिख रही हूं।

बाद में जब हमने चाय का ब्रेक लिया तो जोजेफ़ मुझे अलग ले गया और उसने मुझसे पूछा कि कहीं मैं ड्रग्स तो नहीं लेती हूं।

"अरे नहीं! मैं तो सिगरेट तक नहीं पीती," मैंने कहा और मेरे चेहरे पर भय के भाव देखकर वह हंसने लगा।

“छोड़ो भी, यार। ऐसा नहीं है कि तुमने कोई घोर पाप कर दिया होता। आज सुबह तुम कुछ पगलैट सी दिख रही थीं,” उसने कहा।

“हो सकता है यह घोर पाप न हो लेकिन यक़ीनन यह मेरे लिए नहीं है। हो सकता है मैं ‘जोश’ में दिख रही हूं, जैसा कि तुम कह रहे हो, क्योंकि मैंने जॉगिंग करना शुरू किया है।”

“आहहा! अब बात साफ़ हो गई! लगता है तुम्हारे अंदर ऊर्जा का भंडार है जिसे खोल डालने का तुम इंतज़ार कर रही हो।”

बाद में घर जाते हुए मैंने उसकी कही बात पर विचार किया। ऐसा पहली बार हुआ था कि किसी ने मुझे पगलैट कहा हो। अनजाने ही वह सच के काफ़ी क़रीब पहुंच गया था लेकिन बेशक उस समय उसे, मुझे या दुनिया में और किसी को भी इस बात का ज़रा सा भी अंदेशा या संदेह नहीं था। ऊपरी तौर पर मैं सामान्य लगती थी। लेकिन अंदर ही अंदर बदलाव आ रहे थे, बहुत बारीकी से, बहुत धीमे-धीमे, बहुत कुछ पृथ्वी की संरचनात्मक सतहों में होने वाली धीमी गतिविधियों की तरह जो बाद में भयंकर ज्वालामुखीय विस्फोटों में तब्दील हो जाती हैं। अगर मुझे तब इस बारे में पता होता तो शायद मैंने ऐसी राह चुनी होती जो कोई भिन्न मोड़ लेती। लेकिन किसी को पता नहीं था, और सबसे कम तो मुझे। अगर किसी सुबह मेरी आंख खुलती और मैं ख़ुद को पूरी तरह भिन्न व्यक्ति में बदला पाती तो शायद बदलाव स्पष्ट होता। यह घटनाओं का एक क्रम था जिसे जिग्सॉ पज़ल की तरह धीरे-धीरे जोड़ा जाना था और जब आप जिग्सॉ को पूरा करते हैं तभी उसका अर्थ स्पष्ट होता है।

***

मैं बहुत कम सोने लगी थी। ज़्यादातर दिन मैं शाम साढ़े सात बजे या कभी-कभी आठ बजे तक घर पहुंचती थी। मां हमेशा मेरे लिए गर्म खाना तैयार रखती थीं। उन्हें लगता था कि मैं बहुत मेहनत कर रही हूं जो मैं कर भी रही थी। हमारे साथ में खाना खाने के बाद मेरे माता-पिता सोने चले जाते। मैं उन किताबों को पढ़ने लगती जो मैं इंस्टीट्यूट की लाइब्रेरी से लेकर आती थी। ऐसा लगता था जैसे कोई बिल्कुल ही नया दरवाज़ा खुल गया हो, जानने के लिए बहुत कुछ था।

मैं गंभीरता से पढ़ने लगी थी। मैं जो भी पढ़ती, उस सबके विस्तृत नोट्स बनाने लगी। मुझे लगा कि अगर मैं उन्हें रंगों का कोड दे दूं तो मैं उन्हें बेहतर तरीक़े से याद कर पाऊंगी। इसलिए मैं स्कैच पैनों का पैकेट और रंगीन पेंसिलें ले आई। अगर फ़िलिप कोटलर की किसी किताब से कोई ख़ास व्याख्या मुझे पसंद आती तो मैं उसे हरे रंग से लिखती। अगर कोई उदाहरण उस बात की सटीक ढंग से स्पष्ट करता था जिसे अभी-अभी समझाया गया था तो मैं नारंगी स्कैच पैन लेती और उसे लिख देती। हैरत

की बात यह थी कि मैं रंगों में जितना ज़्यादा लिखती, उतना ही बातें मेरे दिमाग़ में स्पष्ट होती जातीं। अपनी इस गुप्त खोज से मैं ख़ुश थी। ऐसा लगता था मानो अचानक कोई जादू-मंतर मेरे हाथ लग गया है। इसमें सबसे ज़्यादा हैरानी की बात यह थी कि उसे लिखने के अगले दिन या कई दिन बात भी मैं तुरंत हर तफ़्सील के साथ एक-एक शब्द याद कर लेती थी। मैं शब्दों को चित्रों की तरह देखने लगी थी। पढ़ने में तो मैं हमेशा से बहुत तेज़ रही हूं। मेरी मौखिक क्षमता मेरे उन मज़बूत पक्षों में से एक थी, जिन्होंने संख्याओं को लेकर मेरे कमज़ोर पक्ष की भरपाई करते हुए प्रवेश परीक्षा पास करने में मेरी मदद की थी। लेकिन अब तो यह तीन गुणा बढ़ गई लगती थी। मैं किताबों को भकोसते किसी दानव जैसा महसूस करती थी। मैं हमेशा भूखी रहती थी। मुझे ज़्यादा और ज़्यादा चाहिए था। बाद में यह जुनून मुझे बहुत महंगा पड़ा था। परिस्थितियों में संतुलन बिठाने का गुण होता है। लेकिन यह इतना अच्छा महसूस हो रहा था और अपनी इस 'ताक़त' की खोज पर मैं इतना ज़्यादा जोश में थी कि मैं नहीं चाहती थी कि यह थमे। ऐसा लगता था जैसे मेरे अंदर फ़ोटोग्राफ़िक याददाश्त हो। मैं जो भी पन्ने लिखती थी। वे मेरे दिमाग़ में एकदम स्पष्ट थे। मैं उन्हें लगभग शब्दशः फिर से लिख सकती थी। बोनस यह था कि मैं इसे भलीभांति समझती भी थी। ऐसा नहीं था कि शब्दों को समझे बिना मैं महज उन्हें फिर से बोल रही थी। मैं अपनी आंखें बंद करके साफ़-साफ़ पन्नों को और नोट्स के उन पन्नों को देख सकती थी जिन्हें मैंने भिन्न रंगों से बनाया था। इमेज यक़ीनन फ़ोटोग्राफ़ों की तरह थीं और मैं जैसे दिमाग़ में तस्वीरें खींच लेती थी। मैंने जो बात नहीं सोची थी वह यह कि मेरी फ़िल्म ही ख़त्म हो सकती है।

ज़्यादातर रोज़ मैं रात दो बजे बाद तक पढ़ती रहती थी। पढ़ने और जितना मैं जानती थी उससे और ज़्यादा चीज़ों को जानने की संभावना से मैं इतनी ज़्यादा उत्साहित थी कि सो ही नहीं पाती थी। अगली सुबह पांच बजे तक मैं फिर से उठ जाती थी, और जॉगिंग ट्रैक पर पहुंच जाती। जॉगिंग करते हुए मैं उन सारी चीजों को याद करती जिन्हें मैंने बीती रात पढ़ा था और जिनके मैंने नोट्स बनाए थे। मेरे नोट्स तेज़ी से बढ़ने लगे थे और मैं उन्हें करीने से फ़ाइल करती थी। कभी-कभी हाशियों में मैं ऐसी तस्वीरें बना देती थी जो पढ़ी हुई बातों को याद रखने में मेरी मदद करतीं। मैं लघु रूप बनाती जो लगभग उन सारे बिंदुओं को याद रखने में मेरी मदद करते जो किसी ख़ास धारणा को स्पष्ट करते थे। शायद यह अभि की यादों को दूर रखने का तरीक़ा था या शायद बेहतरीन करने का मेरा उत्साह जो मुझसे इतनी कड़ी मेहनत करवा रहा था, मैं कह नहीं सकती। यह जो भी था, यह मुझे आगे को खींचता और कड़ी से कड़ी मेहनत करने की ओर धकेलता मालूम देता था।

जॉगिंग से वापस आने के बाद मैं कॉलेज को भागती थी। मेरे माता-पिता मुझे इतना काम करते देखकर ख़ुश थे। अगर उन्हें पता होता कि आगे क्या होने वाला है तो शायद उन्होंने मुझे रोका होता। लेकिन वे नहीं जानते थे और उन्हें अपनी 'स्टार बेटी' पर गर्व होता था।

मेरा स्टैमिना नाटकीय ढंग से सुधरने लगा। मैं बिना हांफे लंबी-लंबी दूरियों तक जॉग कर लेती थी। अब मैं धीमी जॉगिंग से संतुष्ट नहीं हो पा रही थी। मैंने तेज दौड़ का अभ्यास करना शुरू कर दिया। एक सुबह मेरा यह देखने का मन हुआ कि मैं कितनी तेज दौड़ सकती हूं। मेरी घड़ी में स्टॉप-वॉच का फंक्शन था, मैंने अपना समय नियत किया। जब मैंने दौड़ पूरी की तो मैं यह देखकर हैरान थी कि मैंने सौ मीटर की दूरी केवल 13.8 सैकंड में तय कर ली थी। मुझे यक़ीन था यह नेशनल रिकॉर्ड के क़रीब है। इस जानकारी ने मुझे इतना रोमांचित किया कि मैं इस बारे में ख़ामोश रह ही नहीं पाई। जब मैं घर पहुंची तो मैंने अपने माता-पिता को इस बारे में बताया।

मेरी मां ने कहा, "मुझे तो लगता है कि तुम्हें अपनी यह जॉगिंग बंद कर देनी चाहिए। देखो ज़रा ख़ुद को। कितनी दुबली हो गई हो। ऐसी दिख रही हो जैसे कोई किसी बंदी शिविर से भागकर आया हो।"

मुझे अपनी मां से चिढ़ महसूस हुई लेकिन मैंने ख़ामोश रहने का तय किया। बाद में मैंने आदमकद आईने में ख़ुद को देखा। मां की बात में दम था। यह देखकर कि मैं कितनी दुबली हो गई हूं, मुझे धक्का लगा। लेकिन मैंने यह कहकर ख़ुद को दिलासा दिया कि कोई भी बहुत ज़्यादा दुबला या बहुत ज़्यादा अमीर नहीं हो सकता।

बाद में जब मैं अपने दोस्तों से मिली तो अपने दौड़ने की गति के बारे में अपनी खोज को बताए बिना नहीं रह सकी। मैंने जोजेफ़, छाया और जिग्ना को इस बारे में बताया।

"जय हो! ये हैं भारत की अगली पीटी उषा," जोजेफ़ ने कहा और सब खी-खी करने लगे।

"मानो भी, यार। अच्छा तुम ख़ुद देख लो। मैं यह साबित कर दूंगी," मैंने कहा।

बहुत से लोग इस चुनौती को देखने के लिए जमा हो गए। मुझे पूरा यक़ीन था कि मैं यह कर सकती हूं। जोजेफ़ ने इंस्टीट्यूट के खुले चौक में सौ मीटर की दूरी नापी और शुरू करने और समाप्त करने के चिह्न लगा दिए।

जिग्ना शुरुआती बिंदु पर थी। उसने कहा, "रेडी, स्टैडी एंड गो," और मैं दौड़ पड़ी।

मैंने 13.8 सैकंड में यह दूरी पूरी कर ली।

“अरे। यह तो सच में पीटी उषा निकली, बॉस!” जोजेफ़ चहका।

मैं जोजेफ़ के पास गई और शांत स्वर में उससे बोली, “आगे से मैं कभी कुछ कहूं तो उस पर शक करने की हिम्मत मत करना! समझ गए?” मेरी आवाज़ में ऐसा तीखापन था जो मेरे लिए भी अनजाना था। मुझे ज़रा भी अंदाज़ा नहीं था कि मैं क्यों सुलग रही थी और आक्रामक हो रही थी। ऐसा लगा मानो मैं उसे मारना चाहती होऊं। मैंने अचानक उसकी आंखों में फ़िक्र और हल्का सा डर उभरते हुए देखा। सब लोग ख़ामोश हो गए थे। यह बहुत मज़ाक़िया लगा और मैं बेसाख़्ता हंसने लगी। पलांश के लिए ख़ामोशी रही और फिर वे सभी हंसी में शरीक हो गए और वह पल मज़ाक़ के तौर पर निकल गया। लेकिन उस पल मुझे अपने भीतर कोई चीज़ टूटने के क़रीब पहुंचती महसूस हुई। लेकिन अपनी आदत के मुताबिक़ मैंने उसे दरकिनार कर दिया।

***

आईटी या सूचना प्रौद्योगिकी कोर्स के विषयों में शामिल था। जल्दी ही हमारी एक परीक्षा होने वाली थी। मैं पागलों की तरह पढ़ती थी। मैंने फिर से रंगीन विस्तृत नोट्स बनाए। एक हफ़्ते बाद जब रिजल्ट आया तो मैंने क्लास में टॉप किया था। मुझे सौ में से अठानवें नंबर मिले थे। दूसरे स्थान पर आने वाला छात्र उदय था और उसे केवल छिहत्तर नंबर मिले थे। इस विषय को पढ़ाने वाले फ़ैकल्टी मुझसे बहुत प्रभावित थे। लेकिन मैं खुश नहीं थी। मैं पेपर को देखती रही और नाराज़ होती रही कि मैंने दो नंबर गंवा दिए थे। ऐसा लगता था मानो मैं संपूर्णता की भावना के वशीभूत हो गई थी।

“मुझे तुम्हारा नज़रिया अच्छा लगा। शाबाश,” कोर्स के फैकल्टी सुशील मेहरा ने कहा। वे बहुत युवा थे और सब लोग उन्हें सुशील कहते थे।

“लेकिन, सुशील, मुझे पूरे सौ की उम्मीद थी,” मैंने कहा, मेरी आवाज़ में निराशा झलक रही थी।

“अगली बार, अंकिता,” वे मुस्कुराए।

लेकिन अगली बार तो कोई होनी ही नहीं थी। यह पराकाष्ठा थी, चरम बिंदु था। अभी और भी पहाड़ चढ़ने बाक़ी थे, मगर मुख़्तलिफ़ क़िस्म के। लेकिन उन पर चढ़ने के लिए पहले मुझे नीचे उतरना था।

लेकिन इससे पहले कि मैं नीचे उतरती, मैंने मुझ समेत सबको हतप्रभ कर दिया था। मेरे नए कोर्स में पहले अंतर-विद्यालयीय समारोह में घटी घटनाएं इसकी पृष्ठभूमि बनी।

मगर यह तो बाद में होना था। अभी तो मैं अपनी शैक्षिक सफलता और रोज़ाना की दौड़ के सुरूर में मगन, संतुष्ट और सुरक्षित थी।

11

मस्ती के पल

सांस्कृतिक उत्सव बिल्कुल उन अनेक उत्सवों जैसा ही था जिनमें मैं अपने पिछले कॉलेज में शरीक हुई थी लेकिन यह बिल्कुल भी प्रतिस्पर्द्धात्मक नहीं था। यह मौजमस्ती और मनोरंजन के लिए ज़्यादा था। फिर भी इसे बहुत सारे कॉरपोरेट प्रायोजक मिले थे। मुझे बताया गया था कि इस तरह के आयोजन करने ने सीनियरों को अच्छा कार्य-अनुभव प्रदान किया था।

जब हम आयोजन स्थल पर पहुंचे तो उसकी भड़कीली सजावट देखकर मेरी आंखें चौंधिया गईं। चमक-दमक, ग्लैमर और वह स्टाइलिश तरीक़ा जैसे उद्घोषिका सबको संबोधित कर रही थी, बड़े-बड़े स्पीकर और बीचोबीच छत से लटकती चमकती बॉल जो डिस्को लाइट बिखेर रही थी, डांस फ़्लोर, स्टेज, कॉरपोरेट बैनर जो बिना किसी प्रयास के और सहजता से घुल-मिल रहे थे, सब कुछ बख़ूबी एकीकृत था।

छाया, जिग्ना, उदय और जोजेफ़ भी बहुत प्रभावित थे। हमें थोड़ी देर हो गई थी और कार्यक्रम शुरू हो चुका था। उद्घोषिका अब अगली प्रतियोगिता का ऐलान कर रही थी जिसे प्रचलित बोली में जैम या 'जस्ट ए मिनट' कहा जाता था।

"तुम्हें इसमें भाग लेना चाहिए," जोजेफ़ ने कहा।

उद्घोषिका प्रविष्टियों की मांग कर रही थी और इससे पहले कि मैं जोजेफ़ का विरोध करती, उसने मेरा हाथ पकड़ा और मेरा नाम बोलते हुए उसे ऊंचा उठा दिया। उसने तुरंत माइक पर इसकी घोषणा कर दी और मेरे पास स्टेज पर जाने के अलावा और कोई रास्ता नहीं बचा था।

उस स्टेज पर खड़े हुए जबकि स्पॉटलाइट मुझ पर फ़ोकस थी, मुझे अजीब क़िस्म का आनंद महसूस हो रहा था। हज़ारों-लाखों ख़्याल मेरे दिमाग़ में भनभना रहे थे जैसे छत्ते को छेड़ देने पर मधुमक्खियां भिनभिनाती हैं। मैं उन्हें समटने के लिए जूझ रही थी। वे झुंडों में मंडरा रहे थे और मेरा दिमाग़ उनके साथ चलने के लिए संघर्ष कर रहा था। मैं अपने सोचने की गति धीमी करने की कोशिश कर रही थी, यह समझने की बेतहाशा कोशिश कर रही थी कि मैं क्या महसूस कर रही हूं लेकिन जितना मैं कोशिश करती उतना ही मुझे अहसास होता कि मैं ऐसा नहीं कर पाऊंगी। घोर आनंद-भावना की लहरें मुझे तर किए दे रही थीं।

मुझे अहसास था कि उदघोषिका मेरी ओर एक बाउल सरका रही है जिसमें पर्चियां पड़ी थीं जिन पर जैम के लिए विषय लिखे हुए थे। मैंने एक

पर्ची निकाली और उसे खोला। उस पर लिखा था, "क्लिंट ईस्टवुड की शराब की पसंद है गुड वोदका, बैड मार्टिनी और अग्ली रम।" अपने विचारों को समेटने के लिए मेरे पास दस सैकड थे और फिर मुझे ठहरे, अटके, हकलाए या व्याकरण की ग़लती के बिना इस विषय पर बोलना था। चलचित्र 'गुड, बैड एंड अग्ली' का थीम साउंड ट्रैक, जो कि पृष्ठभूमि में बज रहा था, बेहद तीखा, बेहद साफ़ और बेहद तेज़ हो गया था।

जब संगीत हल्का हुआ तो मैंने बोलना शुरू किया कि किस तरह मिस मार्टिनी, मिस वोदका और मिस रम वास्तव में तीन महिलाएं थीं जिन्हें ईस्टवुड से प्रेम था और किस तरह शराब की चुस्कियां लेने की उनकी स्टाइल ने ईस्टवुड के साथ उनके रिश्ते को प्रभावित किया था। मैं बिना किसी कोशिश के बोल रही थी और मेरा वक़्तव्य यौन द्विअर्थी बातों से भरा था। लोग हंसी से दोहरे हुए जा रहे थे। अपनी चतुराई पर मैं बहुत जोश में आ गई थी और इतनी स्पष्टता और इतने दिलकश अंदाज़ में अपने बोलने पर कि एक मिनट पूरा होने पर भी उद्घोषिका घंटी बजाना भूल गई, मैं ख़ुद भी हैरान थी। उसे इसका अहसास होने और फिर मुझे रोकने और मेरी शानदार प्रस्तुति की घोषणा करने तक मैं पूरे तीन मिनट बोलती रही थी। अब तक दर्शक चिल्लाने लगे थे "मोर! मोर! इसे बोलने दो। हमें और सुनना है।" मैंने उद्घोषिका के हाथ से माइक लिया और दो मिनट और बोलती रही। मैं ख़ुद को अजेय, अथक, सम्मोहक और दुनिया के शिखर पर महसूस कर रही थी। जब मैं स्टेज से उतरी, तालियों की गड़गड़ाहट मेरे कानों में गूंज रही थी, तो जोजेफ़ आया और मुझे गले से लगा लिया, उसने मुझे हवा में ऊंचा उठा लिया, मैं ख़ुशी से चीख़ रही थी और मुझे नीचे उतारने को कह रही थी। छाया, जिग्ना और उदय मेरे आसपास जमा हो गए थे और हैरतज़दा होकर मुझे देख रहे थे।

"हे भगवान! तुम तो वाक़ई कमाल की हो, यार। हमें तो पता ही नहीं था कि तुम इतनी ज़बर्दस्त हो!" जिग्ना ने कहा।

अब डांस का म्यूज़िक बजने लगा था और शराब और स्टार्टर्स सर्व किए जाने लगे थे। बाक़ी की शाम विशुद्ध रूप से पार्टी टाइम थी और लोगों ने डांस करना शुरू भी कर दिया था। अचानक मेरी इच्छा डांस करने की होने लगी। मैं कभी इतनी उत्साही नहीं रही थी और हमेशा तमाशबीन रहना पसंद करती थी, लेकिन ऐसा लग रहा था मानो उस रात मेरी कायापलट हो गई हो। मानो कोई बिल्कुल ही भिन्न इंसान मेरे ऊपर हावी हो गया हो।

"चलो, डांस करते हैं," मैंने जोजेफ़ से कहा। जब मैं उसे खींचकर डांस फ़्लोर पर ले गई तो वह हैरान रह गया, हम डांस करने लगे। ऐसा लग रहा था जैसे मैंने न जाने कितने पैग चढ़ा लिए हों जबकि सच तो यह था कि मैंने शराब की बूंद भी नहीं छुई थी। मैं बेलगाम मस्ती से डांस कर रही

थी और ख़ूब मटक रही थी। सांबा की कोई धुन बज रही थी और यह मेरे जोशीले, मदमस्त मूड से एकदम मेल खा रहा था। मुझे अहसास हुआ कि मैं बहुत उत्तेजित महसूस कर रही थी और बहुत देर से जोजेफ़ से सटकर डांस कर रही थी। मैं देख सकती थी कि वह इसका भरपूर मज़ा ले रहा है और एक बार तो उसके हाथ मेरी कमर के गिर्द लिपट गए थे। मैं कामोत्तेजक और आकर्षक महसूस कर रही थी और मुझे घोर आनंद की अनुभूति हो रही थी। हरेक लय और ताल, हरेक सुर, संगीत की हरेक ध्वनि मेरे लिए एकदम स्पष्ट हो गई थी और अचानक मैं एक-एक सुर की तीखी ख़ूबसूरती को महसूस कर सकती थी। मेरा बदन जैसे सुपर चार्ज हो गया था और मेरे आसपास मौजूद बदन भी जैसे मेरे चुंबकत्व को महसूस कर सकते थे।

बहुत देर बाद आख़िरकार हम रुके। फिर जोजेफ़ ने मुझसे पूछा कि क्या मैं टैरेस पर चलना चाहूंगी। उसने कहा ऊपर से बहुत दिलकश नज़ारा दिखता है।

बिना ज़्यादा सोचे मैं तुरंत तैयार हो गई। मैंने देखा कि छाया डांस फ़्लोर के दूसरे सिरे पर डांस कर रही है। जिग्ना ड्रिंक का मज़ा ले रही थी और किसी लड़के से बात कर रही थी जिसे मैं पहचानती नहीं थी। मैंने उसकी ओर संकेत किया कि मैं ऊपर जा रही हूं। उसने बेध्यानी में सिर हिला दिया।

जोजेफ़ और मैं संकरी सीढ़ियों से होते हुए ऊपर गए। ऊपर पहुंचने पर रात की ठंडी हवा मेरे चेहरे को छू गई। आसमान में जैसे लाखों तारे बिखरे हुए थे। नीचे से आता संगीत एकदम साफ़ सुनाई दे रहा था।

मैंने टैरेस पर चारों ओर देखा और पाया कि वहां बहुत लोग बैठे हुए थे। कुछ जोड़े प्रेमक्रीड़ा में रत थे। कुछ मुंडेर के पास खड़े हुए लाखों टिमटिमाती रोशनियों को तक रहे थे जो आसमान के सितारों की तरह ही शानदार दिख रही थीं। चारों ओर मीलों दूर तक शहर था, किसी जादुई क़ालीन की तरह फैला हुआ, शहर की चमचमाती रोशनियों से जड़ी रात के जादुई अंधेरे में ढके इसके बदसूरत गंदे इलाक़े, भीड़ भरी इमारतें, सड़कें, भद्देपन से पसरी झोपड़पट्टियां और लाखों लोग जो इस बात से बेख़बर थे कि इस इमारत की, जो कि इसकी हज़ारों इमारतों का एक हिस्सा थी, छत पर क्या हो रहा है।

मैंने साइड में देखा और लड़कों के एक गुप में मुझे उदय नज़र आया। उदय बैठा हुआ था, कंक्रीट की बनी पानी की टंकी जैसी किसी चीज़ से पीठ टिकाए। वह असामान्य रूप से शांत लग रहा था और तभी मेरा ध्यान उसकी कोहनी में लगी एक सिरिंज पर गया, वह धीरे-धीरे उसका पिस्टन

दबा रहा था। मैंने जोजेफ़ पर नज़र डाली और देखा कि उसने भी यह देख लिया है।

“तुम ट्राइ करोगी?” उसने पूछा।

अब उन्माद भरी बेफ़िक्री के साथ जुड़े पूर्ण सुरक्षा के अजीब से भाव ने मुझे घेर लिया था। ऐसा कुछ मैंने पहले कभी महसूस नहीं किया था।

“नहीं, लेकिन मुझे डांस करना है।”

“क्या डांस फ़्लोर पर वापस चलें?” जोजेफ़ ने पूछा। अब उसके हाथ पीछे से मेरी कमर को घेरे हुए थे, जैसे कि वह मेरा बॉयफ़्रेंड हो और मज़े की बात यह थी कि मुझे परवाह ही नहीं थी। वास्तव में मुझे यह अच्छा लग रहा था कि वह मेरे लिए रक्षात्मक हो रहा था।

“नहीं, मुझे तो अभी डांस करना है,” मैंने कहा, और इससे पहले कि वह कुछ कह पाता, मैं मुंडेर के पास पहुंच गई थी, उसके ऊपर चढ़ी और ख़तरनाक ढंग से किनारे पर ख़ुद को संतुलित करने लगी।

मैंने जोजेफ़ की आंखों में सकपकाहट और डर देखा। मुझे हंसी आने लगी और इसने मुझे उसे और डराने को उकसाया। मैं ख़तरे से बेख़बर थी। मैं इस सच की ओर से बेफ़िक्र थी कि अगर मैं पीछे को गिर गई, जो कि दस मंज़िल से ज़्यादा नीचे गिरना होता, तो मौत यक़ीनी थी। मुझे तो बेइंतहा मज़ा आ रहा था और मैं ज़बर्दस्त ताकतवर महसूस कर रही थी।

“एंक्स—तुम कर क्या रही हो? फ़ौरन नीचे उतरो,” जोजेफ़ चीख़ा।

कई लोग मुड़कर देखने लगे थे। इसने मुझे और ज़्यादा उकसाया।

“यहां से कूदना कमाल का होगा, है ना?” मैं फिर से हंसने लगी, अब थोड़ा बेक़ाबू होकर।

“एंक्स—बस बहुत हो गया। प्लीज़ अब नीचे आ जाओ। प्लीज़। मैं हाथ जोड़ता हूं,” जोजेफ़ ने कहा। मुझे उसकी आवाज़ में डर और हताशा सुनाई दे रही थी।

“इसने क्या लिया है? किस बेवकूफ़ ने इसे वह लेने दिया?” एक लड़के ने पूछा जिसे मैंने पहले कभी नहीं देखा था।

अचानक मेरे अंदर गुस्से की आग भभक उठी। इस मूर्ख की हिम्मत कैसे हुई यह सोचने की कि मैंने ड्रग ली है? मैंने तो एक बूंद शराब तक नहीं पी। मुझे ज्वार की तरह अपने अंदर हिंसा भड़कती महसूस हुई और अचानक मेरे मन में उसे पीट देने की हुड़क उठी। मैं मुंडेर से कूदकर उसकी ओर लपकी।

“तू साला है कौन?” उसकी ओर बढ़ते हुए मैं चिल्लाई। वह एक क़दम पीछे हट गया, वह भौचक्का था और इसने आग में घी का काम किया। मैं उसकी ओर गई और उसका कॉलर पकड़ लिया।

“तुझे साला क्या पता है? साले तूने देखा था मुझे ड्रग्स लेते या शराब पीते?” अब मैं उसे झिंझोड़ रही थी और उसे समझ नहीं आ रहा था कि क्या करे। गालियां पानी की तरह मेरे मुंह से बह रही थीं, जो कि आमतौर पर मैं नहीं बोलती थी। ऐसा लग रहा था जैसे मैं क्या कह रही हूं, इस पर मेरा कोई नियंत्रण ही न रहा हो। मुझे उसके अंदर सकपकाहट उठती दिख रही थी और एक बार फिर मुझे यह मज़ेदार लगा। मैं हंसना चाहती थी लेकिन तभी जोजेफ़ ने मुझे पीछे से पकड़ लिया।

“बस काफ़ी है। चलो, नीचे चलते हैं,” उसने कहा। ऐसा लग रहा था जैसे वह मुझसे कुछ भी कहने से डर रहा हो।

मैं पलटी और देखा कि उदय उदासीनता से इस सारे झमेले को देख रहा है। जिग्ना और छाया भी अब तक टैरेस पर आ गई थीं। मुझे कुछ पता नहीं था कि वे कब आईं लेकिन उनके चेहरे के भावों को देखकर यह साफ़ था कि वे अभी-अभी हुए इस सारे तमाशे को देख चुकी थीं। मुझे उनके चेहरों पर फ़िक्र दिखाई दे रही थी।

“सब ठीक है, मैं ठीक हूं” मैंने छाया को दिलासा दिया हालांकि उस वक़्त जो कुछ भी हुआ था उसकी मुझे कुछ ख़बर नहीं थी और न ही इस बात की कि मैंने ऐसा बर्ताव क्यों किया।

“हम्म, सच बताना। तुमने कुछ पिया था? या तुमने कुछ लिया है? क्या उदय ने तुम्हें कुछ दिया था?” जोजेफ़ ने पूछा।

“नहीं, मैंने कुछ नहीं लिया। सारी शाम मैं तुम्हारे साथ नहीं रही क्या? चलो भी, यार। मेरा ख़्याल था कि कम से कम तुम लोग तो मुझे जानते हो,” मैंने कहा, मैं थोड़ी सी आहत थी।

“लगता है मैं तुम्हें सच में नहीं जानता, अंकिता। आज तो तुम अजूबों से भरी हो। वैसे, तुमने तो मेरी जान ही निकाल दी थी,” जोजेफ ने कहा और अब वह मुझे अजीब सी नजरों से देख रहा था, मानो पहली बार मुझे देख रहा हो।

“सॉरी, यह बस हल्की-फुल्की मस्ती थी। मुझे लगता है कि मैं थोड़ा सा बहक गई थी,” मैंने आधे-अधूरे पछतावे के साथ कहा, मैं देख रही थी कि वे लोग सच में फ़िक्रमंद हो गए थे।

हम ट्रेन से छाया के घर वापस गए। जोजेफ़ और हमारी क्लास के एक और लड़के ने हमें स्टेशन पर छोड़ा। जोजेफ़ ने पूछा कि क्या वह साथ चले। छाया ने उसे आश्वस्त किया कि हम ठीक रहेंगे।

बाद में उस रात, छाया और मैं उसके ड्रॉइंगरूम में एक गद्दे पर पसर गए। एक बेडरूम वाले उस छोटे से फ़्लैट में उसके माता-पिता सो चुके थे। उसका भाई और दादी भी ड्रॉइंगरूम के एक कोने में सो रहे थे। उन्हें इस तरह जगह शेयर करके रहने की आदत थी।

“ए, एंक्स,” जब हम लेट गए तो छाया ने धीमे से कहा। “फिर कभी ऐसे जोख़िम मत लेना। अगर तुम गिर जातीं तो क्या होता?” उसने पूछा।

मैं उसे जवाब नहीं दे पाई। मुझे ख़ुद कुछ पता नहीं था कि मैं क्या कर रही थी। ज़िंदगी में पहली बार ऐसा हो रहा था कि मुझे लग रहा था कि मैं अब अपने ऊपर भरोसा नहीं कर सकती। यह बहुत डरावना ख़्याल था। मैंने अपनी आंखों में उबल-उबलकर आते और बाहर निकल पड़ने की आमादा शर्मिंदगी के आंसुओं को पीछे धकेला। फिर मैंने दूसरी ओर करवट ले ली और सोने का बहाना किया हालांकि नींद आने में मुझे बहुत देर लगी, शायद घंटों लग गए थे।

12

ज़िंदगी में उतार

सोमवार सुबह को हमारा टैस्ट था। प्रोफ़ेसर आर.एस.वी. मूर्ति जो उस विषय को पढ़ाते थे, मेरे पसंदीदा अध्यापकों में से नहीं थे। उनका व्यंग्यात्मक और सर्वज्ञाता बर्ताव मुझे नापसंद था। लगभग सभी उन्हें नापसंद करते थे और उनका नाम एमएम रख दिया गया था जिसे हमारे सीनियर बड़े फ़ख़्र से स्पष्ट करते थे, जिसका अर्थ मूर्ख मूर्ति था न कि 'मार्केटिंग मैनेजमेंट' जो वे पढ़ाते थे। एमएम फ़िलिप कोटलर की एक मैनेजमेंट पुस्तक से बहुत ज़्यादा उदाहरण देते थे और लगभग शब्दशः पढ़ाते थे। मेरी कक्षा के अधिकांश लोगों ने इस प्रोफ़ेसर की मेहरबानी से खुली आंखों से सोने की कला में महारत हासिल कर ली थी। उनकी नकियाहट भरी भिनभिनाहट नींद का माहौल बना देती थी और अक्सर मुझे उदय को हिलाना पड़ता था क्योंकि वह अपनी डैस्क पर लुढ़ककर सो जाता था। प्रोफ़ेसर जो भी कहते थे उसमें कुछ भी काम की बात नहीं होती थी। इससे तो वे किसी के द्वारा कोटलर की किताब से अनुच्छेदों को पढ़े जाने का टेप चला सकते थे।

मैं लगभग भविष्यवाणी कर सकती थी कि टैस्ट में क्या सवाल होंगे। मैंने इंस्टीट्यूट की लाइब्रेरी से कोटलर की किताब ली थी। मैं किताब को पहले ही पढ़ चुकी थी और अपनी उसी रंगों के कोड की तकनीक से विस्तृत नोट्स बना चुकी थी जिसे मैंने पहले भी नोट्स बनाने में इस्तेमाल किया था। जब मैंने किताब बंद की, तो मैं उसे अपनी कल्पना में देख सकती थी और जैसा कि पहले भी होता रहा था, मैं अपने दिमाग़ में उसका एक-एक शब्द याद कर सकती थी किसी फ़ोटोग्राफ़ की तरह। मैं बहुत ख़ुश थी। फिर मैंने एक क़दम और आगे बढ़ने का फ़ैसला किया। मैंने उन प्रश्नों का अंदाज़ा लगाते हुए जो एमएम टैस्ट में देते, एक प्रश्नपत्र बनाया। मैं और आगे बढ़ी और किताब में देखे बिना मैंने सारे जवाब लिख दिए। जब मैंने अपने लिखे जवाबों का किताब से मिलान किया तो मुझे और ज़्यादा ख़ुशी हुई। वे लगभग एक जैसे थे और कोई इस बात पर विश्वास नहीं करता कि उन्हें नक़ल नहीं किया गया है, बल्कि याददाश्त के आधार पर लिखा गया है। इससे भी बढ़कर यह कि मैंने किताब से न केवल परिभाषाएं और विशिष्ट शब्दावली लिखी थी बल्कि अपना विस्तृत विश्लेषण भी जोड़ा था। जब मैंने पेपर पढ़ा तो मैं समझ गई कि मुझे ए तो मिलना ही है।

अचानक मेरे ऊपर एक ज़बर्दस्त इच्छा हावी हो गई कि इसे अपनी कक्षा के सभी लोगों के साथ शेयर करूं। मैंने तय किया कि इसकी

फ़ोटोकॉपी करवाकर बांटूंगी। मैं झटपट करीबी फ़ोटोकॉपी वाले के पास गई। जब मैं वहां पहुंची तो मैंने फ़ोटोकॉपी निकालने वाले लड़के से कहा कि मुझे करीब सत्तर प्रतियां चाहिए। उसे थोड़ी हैरानी हुई।

"मैडम, सत्तर या सत्रह?" उसने पूछा।

मैंने स्पष्ट किया कि मुझे वाक़ई सत्तर प्रति ही चाहिए। मुझे लगा। कि मैं इसे विभिन्न प्रोफ़ेसरों को बांटने के साथ-साथ डीन को भी दे सकती हूं। मुझे लगा यह बहुत बढ़िया रहेगा क्योंकि इससे उन लोगों को भी पता लगेगा कि एमएम के विषय में क्या चल रहा है। मुझे लगा। यह आंखें खोलने वाला होगा। मैं चीज़ों को याद रखने के अपने 'रंगों के कोड' के तरीक़े को सब लोगों के साथ शेयर करना चाहती थी ताकि वे भी फ़ायदा उठा सकें। मुझे लग रहा था जैसे मेरे हाथ कोई महान रहस्य लग गया हो और मेरी खोज को ख़ूब सराहा जाएगा। मैं कल्पना कर रही थी कि इसे याद करने की एक नई तकनीक के रूप में स्कूलों, कॉलेजों और बाक़ी सारी जगहों पर भी अपनाया जाएगा। मैं हैरान थी कि इतनी सीधी-सादी मगर उत्कृष्ट तकनीक के बारे में पहले कभी किसी ने क्यों नहीं सोचा। जब मैं उसके फ़ोटोकॉपी निकालने का इंतज़ार कर रही थी तभी मेरी नज़र ट्वीटी बर्ड, फ़ेयरीज़ और गारफ़ील्ड और कुछ डिज़नी कार्टून पात्रों के चमचमाते स्टिकरों पर पड़ी जिन्हें बच्चे अपनी किताबों और अन्य वस्तुओं को सजाने के लिए इस्तेमाल करते हैं। मैंने सोचा कि स्टिकर एक अच्छा फ़िनिशिंग टच रहेंगे और मैंने उनकी बीस शीट ख़रीद लीं। मुझे कुछ बहुत ख़ूबसूरत प्रिंटेड स्टेशनरी भी दिखी और मैं राइटिंग शीट के लगभग आठ पैकेट ख़रीदने से ख़ुद को रोक नहीं पाई। वे बहुत ख़ूबसूरत लग रहे थे और मैंने तय किया कि अपने ख़तों से मैं सुवी और वैभव को चौंका दूंगी। मैंने दुकान में चारों ओर देखा और मुझे कुछ वॉटर कलर नज़र आए। वॉटर कलर्स से आख़री बार मैंने स्कूल में ही पेंट किया था। बेसाख़्ता मैंने वॉटर कलर्स का एक सैट और एक ब्रशों का सैट भी ले लिया। ऐसा लग रहा था जैसे मेरे दिमाग़ में कोई तेज़ रेला उठ रहा हो जो मुझे ये सब चीज़ें ख़रीदने के लिए मजबूर कर रहा था। वे एकदम अनिवार्य मालूम दे रही थीं।

अपनी ख़रीदारी के बड़े से थैले से लैस मैं घर पहुंची और बहुत सावधानी से सारी चीज़ों को निकालकर मैंने अपनी मेज़ पर सजा दिया। फिर मैंने बैठकर नोट्स के हर सैट के कोनों को कार्टून चरित्रों के नन्हे-नन्हे स्टिकरों से सजाया। हाइलाइटर पैन लेकर मैंने सारे सैटों को अपने हरे, बैंगनी और नारंगी रंगीन कोड के तरीक़े से हाइलाइट किया। मुझे सत्तर सैट तैयार करने थे और मैं किसी वशीभूत औरत की तरह हो रही थी। मैं सारी रात बस यही करने के लिए जगी रही। मैं ऊर्जा का भंडार हो। रही थी। मैं रुक ही नहीं पा रही थी। अजीब तो यह था कि मुझे ज़रा भी थकान महसूस नहीं हो रही थी। जब तक मैंने इसे पूरा किया, सुबह के सात बज

गए थे और कॉलेज जाने का समय हो गया था। मैंने अपने लिए एक कप स्ट्रॉन्ग ब्लैक कॉफ़ी और दो अंडों की भुर्जी बनाई और जल्दी से कॉलेज के लिए निकल पड़ी। मैंने यह तक ध्यान नहीं दिया कि मैं सारी रात सोई नहीं थी।

कॉलेज पहुंचने पर मैंने वे नोट्स बांटने शुरू कर दिए जिन्हें मैंने इतनी मेहनत करके फ़ोटोकॉपी करवाया था, रंगीन कोड में तैयार किया और स्टिकरों से सजाया था। मैंने नोट्स देने शुरू किए तो सब लोग मेरे गिर्द ऐसे जमा हो गए जैसे छत्ते के पास मधुमक्खियां आ जाती हैं। इसने कॉलेज में हलचल मचा दी थी।

“हे भगवान—देखो तो यह!” एक ने कहा।

“क्या ये सब तुमने ख़ुद तैयार किए हैं?” एक और ने पूछा।

“लेकिन क्यों?!” एक तीसरे ने हैरानी से सिर हिलाते हुए कहा।

“ओह! इन स्टिकरों को तो देखो! कितने प्यारे हैं!” एक लड़की की आवाज़ चिल्लाई।

मैं देख सकती थी कि वे लोग बहुत ख़ुश हैं और बहुत हैरान भी हैं।

जोजेफ़ हैरान और भौचक्का था। लेकिन उसने मुझे कोहनी से पकड़ा और एक ओर ले गया। मेरे हाथ में अभी भी अपने नोट्स की कुछ प्रतियां मौजूद थीं जिन्हें मैं डीन और एमएम को देने का इरादा रखती थी।

“अंकिता, तुम ठीक हो? तुम्हारी आंखों में वही भाव है जो पहले था।”

“कैसा भाव, जो? मैं ठीक हूं। ये सब मैंने ख़ुद लिखा है, वह भी बिना किताब में देखे,” मैंने गर्व से कहा, मैं थोड़ी उत्तेजित और नाराज़ सी थी कि उसने तुरंत मेरे काम की सराहना नहीं की थी। “मैं एक कॉपी डीन को और एक एमएम को भी देने वाली हूं। उन्हें भी तो पता लगे कि वे कितना पूर्वानुमानित पेपर बनाते हैं। अब समय आ गया है कि कोई उनकी आंखें खोले,” मैंने कहा।

उसने अपना सिर हिलाया, वह एकदम नाख़ुश था। “और उनकी आंखें खोलने का काम तुम करोगी? रहने भी दो, एंक्स। कुछ तो दिमाग़ लगाओ।”

“क्या बात है, जो? मैं चाहती हूं कि डीन को पता लगे कि क्या हो रहा है।”

“नहीं, मैं तुम्हें यह नहीं करने दूंगा। यह काम जो तुमने किया है, इस तरह नोट्स बांटने का, यही अपने आप में काफ़ी पागलपन है। अब चलो,

हम चलकर टैस्ट देते हैं," उसने दृढ़ता से कहा, और मुझे भीड़ से दूर कक्षाओं की ओर ले गया।

उसने बिना किसी लागलपेट के मेरे कामों के पागलपन भरा होने का सच कह दिया था लेकिन तब इसके निहितार्थ समझे जाने बाक़ी थे।

टैस्ट पूर्वानुमानित था और मैंने बड़े आराम से इसे पूरा कर लिया। मैंने लगभग बिना किसी कोशिश के जवाब लिख दिए। जब प्रश्नपत्र बांटा गया तो मुझे कमरे में भिनभिनाहट सुनाई दी थी। मैं हैरान थी कि बाक़ी लोग उस तरह से सवालों का अनुमान क्यों नहीं लगा पाए थे जैसे मैंने लगाया था। अगर उन्होंने भी मेरा रंगीन कोड का तरीक़ा अपनाया होता तो वे भी बड़े आराम से इसे हल कर लेते।

क्लास के बाद मेरे बहुत से सहपाठियों ने नोट्स के लिए मुझे धन्यवाद दिया।

छाया और जिग्ना ने मुझसे पूछा कि मैंने ऐसा क्यों किया था।

"सच कहूं तो मैंने इसे बहुत आसानी से तैयार कर लिया था और मुझे लगा कि इसे शेयर करना चाहिए," मैंने कहा।

"अगली बार केवल हमारे, अपने दोस्तों के साथ शेयर करना। सारी क्लास को मत देना। कम से कम तुम्हारे प्रति वफ़ादारी का कुछ तो सिला हमें मिलना चाहिए! याद करने की मशीन अंकिता, हम तुम्हें प्रणाम करते हैं," उदय ने चुटकी ली, और मैंने मुस्कुराकर एक किताब से उसके सिर पर चपत लगा दी। बाक़ी सब भी हंसने लगे।

***

घर पहुंचने पर मैं अपने आप से बहुत ख़ुश थी। मेरे आसपास सारी चीज़ों को जैसे नए मायने मिल गए थे जिन्हें पहले शायद मैंने कभी सराहा ही नही था। अचानक उस रेज़ीडेंशियल कॉम्प्लेक्स का बाग़ जहां मैं रहती थी, बहुत जीवंत और हराभरा लगने लगा था। एक-एक पौधा स्पष्ट था। हर फ़र्न, घास के हर तिनके, हर फूल ने अचानक अदभुत स्पष्टता और रंगों का गहरापन पा लिया था। मैं आश्चर्य और ख़ूबसूरती के प्रबल अहसास से भर गई। कॉम्प्लेक्स में बहुत सुघड़ता से बनाया गया बाग़ था जिसमें पत्थरों से बने घुमावदार रास्ते थे, लकड़ी का पुल, नफ़ासत से रखे गए लॉन थे और मुख्य आकर्षण तो एक झरना था जो इतना कुदरती लगता था कि यह कह पाना लगभग नामुमकिन था कि वह मानवनिर्मित है और सदियों से वहां मौजूद नहीं है। यह शांत छायादार झरना था और जब अपने कमरे की बालकनी से मैंने उसे देखा तो अचानक मैं उसकी ओर आकर्षित हो गई। पहले भी कई दफ़ा मैं उसे देख चुकी थी लेकिन अपनी पढ़ाई में मैं इतनी मसरूफ़ रहती थी कि मैंने वास्तव में कभी इस ओर ध्यान ही नहीं दिया

था। अब जितना मैं इसे देखती उतना ही यह मुझे लुभावना लगता। मुझे अहसास हुआ कि मैं तो वास्तव में इतने समय से अंधी ही थी और मैं घोर पछतावे से भर गई। फिर मेरा दिल किया कि इसकी ख़ूबसूरती को सदैव के लिए काग़ज़ पर उतार दूं। अपने नए-नए ख़रीदे कला-उपकरणों, रंग और ब्रशों, से लैस होकर मैं झरने की ओर चल दी।

मां ने मुझे आवाज़ दी और पूछा कि मैं कहां जा रही हूं तो मैंने कहा कि मैं बस टहलने जा रही हूं। जब मैं झरने के सामने बैठी और उसे पेंट करने लगी तो एक अजीब सी शांति और सुकून के अहसास ने मुझे घेर लिया। बरसों हो गए थे मुझे ब्रश उठाकर पेंट किए हुए। बाग़ में खेल रहे बच्चों के एक ग्रुप ने जब मुझे पेंट करते देखा तो वे मुझे घेरकर खड़े हो गए। मैंने इस बाधा पर एतराज नहीं किया।

मैंने अपनी कृति को देखा और झरने को देखा। जितना मैं उसे देखती, उतना ही मुझे ग़ुस्सा आता, कुछ देर पहले वाला शांति का अहसास जिसने मुझे अपनी गिरफ़्त में ले रखा था, जल्दी ही गर्म तवे पर पड़ती पानी की बूंदों सा ग़ायब हो चुका था। मुझे गुस्सा इसलिए आ रहा था कि यह असली नहीं बल्कि मानवनिर्मित था। “पहले तो वे इमारतें बनाने के लिए पेड़ काटते हैं और फिर प्रकृति की नक़ल बनाने की कोशिश करते हैं,” मैंने ग़ुस्से से सोचा।

फिर मैंने अपना पेंट ब्रश लिया और अपनी तस्वीर के नीचे लिख दिया “स्वांग—प्रकृति मां।” नीचे मैंने अपने दस्तख़त कर दिए और अब मैं इस अंतिम नतीजे से बहुत ख़ुश थी। जितना मैं तस्वीर को देखती उतना ही गहराई से उसमें देख पाती थी। एक बार फिर मैं पराजय के, भयानक उदासी के भाव से भर गई और मैं धीमे-धीमे रोने लगी। मैं जज़्बात का बवंडर थी। मुझे महसूस हुआ कि जो कुछ मैंने अभी समझा और देखा था, उसे अभि बहुत अच्छी तरह से समझ लेता। उस बदकिस्मत दिन के बाद से, अभि के बारे में सोचे हुए मुझे महीनों गुज़र गए थे। लेकिन अब मैं ख़ुद को रोक नहीं पाई थी। मैं उससे बात करने को तरस रही थी। मैं उसकी आवाज सुनना चाहती थी। मैं उसका हाथ थामना चाहती थी। मैं उसे मुस्कुराते देखना चाहती थी और मैं चाहती थी कि बस एक बार वह अपने होंठ मेरे होंठों पर रख दे। मुझे उस दिन की उसकी बातें याद आईं जब मैं आख़री बार उससे मिली थी, उसने मुझसे संपर्क बनाए रखने की गुज़ारिश की थी। मैंने चाहा कि काश मैंने उससे कहा होता कि मैं संपर्क में रहूंगी। मैंने चाहा कि काश मैंने उससे कहा होता कि मुंबई दूर नहीं है और हम छुट्टियों में मिल सकते हैं और मैं अपना समर प्रोजेक्ट कोचीन में भी कर सकती हूं। मैंने चाहा कि काश मैंने उसे दिलासा दिया होता। लेकिन तब मैं कुछ ज़्यादा ही व्यावहारिक हो गई थी और अपने ही सपनों में मदहोश थी।

अब जिस दर्द को मैं महसूस कर रही थी वह लगभग जिस्मानी था। ऐसा लगा मानो मेरे दिल में कोई हो जो किसी छुरी से उसके छोटे-छोटे टुकड़े खोदकर निकाल रहा हो और फेंक दे रहा हो, उस खुदी हुई जगह को जल्दी ही एक ख़ालीपन का अहसास भर दे रहा हो। मैं अभि के लिए तड़प रही थी। यह एक ऐसी हसरत थी जिसे मैंने ख़ुद को महसूस नहीं करने दिया था। मुझे समझ नहीं आ रहा था क्या करूं, मैं घर की ओर चल दी।

फिर मुझे लगा कि सुवी को ख़त लिखने से मदद मिलेगी। मैंने नई स्टेशनरी निकाली जो मैं ख़रीदकर लाई थी। मैंने लिखना शुरू कर दिया। अल्फ़ाज़ सैलाब की तरह उमड़े आ रहे थे। मैंने उस आख़री दिन अभि से मिलने के बारे में लिखा, मैंने युवा उत्सव के दौरान उस वक़्त के बारे में लिखा जब अभि और मैंने पहली बार किस किया था, मैंने उस झरने के बारे में लिखा था जिसे मैंने तभी पेंट किया था। मैंने हरेक छोटी से छोटी तफ़्सील लिखी जो अभि के बारे में मुझे याद आ पाई। मैंने अपने दिमाग़ की खंगाला, यादों के गलियारों में भटकी, हर उस छोटी से छोटी बात को खींच निकाला जो उसने कही थी, हर उस जगह को जहां हम गए थे, वे चीज़ें जो उसने की थीं, वे जुमले जो वह बोलता था, जिस तरह वह उन्हें कहता था, वे योजनाएं जो हमने बनाई थीं। ये सब बहुत बुरी तरह से महत्वपूर्ण लग रहा था कि मैं सुवी को इसके बारे में लिखूं। मैं लिखती गई, लिखती गई और उन पन्नों में अपने इक्कीस साला दिल को उड़ेलती रही। जब मैंने लिखना ख़त्म किया तो घड़ी पर नज़र डालते ही मुझे झटका लगा, सुबह के लगभग पांच बज चुके थे। एक बार फिर मैं सारी रात जगी रही थी बिना इसका अहसास किए। अपने ख़त की लंबाई देखकर तो मुझे और भी ज़ोर का झटका लगा। यह बयालीस पन्नों में समाया था। मैंने दो बार उसे पढ़ा। फिर उसे एक लिफ़ाफ़े में रखा और बहुत ध्यान से उसका पता लिखा ताकि कॉलेज जाते हुए मैं उसे डाक में डाल सकूं।

इस खत को सुवी को भेजते समय मुझे इस बात का कोई आइडिया नहीं था कि बाद में यह डॉक्टरों के हाथ तक पहुंच जाएगा। मनोचिकित्सक इसे पढ़ेंगे, इसकी चीरफाड़ करेंगे, इसे कतरा-कतरा अलग करेंगे और शायद मन ही मन उसमें लिखी बातों पर हंसेंगे, बाद में उस पर 'उन्माद या मनोविक्षिप्तता के कारण उत्पन्न अस्पष्ट और भ्रांतिमूलक प्रलाप' और फिर वैचारिक विकार के संकेतों को ढूंढ़ेंगे। मैंने कल्पना भी नहीं की थी कि उन पन्नों पर बिखरा मेरा दुख, मेरा दर्द और मेरी गंभीरता को इस तरह नंगा किया जाएगा और उसे ऐसी मैडिकल शब्दावली और शब्दाडंबरों की चौंधिया देने वाली, असहनीय चमक में बेरहमी से जांचा जाएगा जिसे मैंने कभी सुना भी नहीं था। उस जांच की बेरहमी में पीड़ा, हसरत और निष्कपटता से भरे मेरे बड़ी सावधानी से चुने हुए शब्द कुम्हला जाएंगे, नष्ट

हो जाएंगे। उनका क़त्ल कर दिया जाएगा और उन्हें ख़त्म कर दिया जाएगा। उनका एक अंश तक नहीं छोड़ा जाएगा।

यह पहला क़दम था जो मैंने अपने पतन की ओर उठाया था। विडंबना यह थी कि जब मैंने इसे लिखा था तो सोचा था कि इससे मुझे राहत मिलेगी। मुझे ज़रा भी इल्म नहीं था कि यह सांप की तरह मेरी गर्दन में लिपट जाएगा और ऐसी कुंडली मार लेगा जो लगभग मेरे प्राण ही ले लेगा।

और पतन तो अभी शुरू ही हुआ था।

13

कुछ पल का साथ

सुवी को ख़त लिखने ने जैसे मेरे अंदर एक नए दानव को जगा दिया था—लिखने के दानव को। उसे लिखने के बाद मुझे जो चैनो-सुकून महसूस हुआ था, वह मुझमें आश्वस्ति का भाव जगाने में कामयाब रहा था। इसने अभि की यादों को ज़िंदा रखने में मेरी मदद की थी। अभि के बारे में मैं वैभव को नहीं लिख सकती थी क्योंकि मैंने उससे अभि का ज़िक्र कभी नहीं किया था। मैं उसे शुरू से आख़िर तक सारी बात बता देने के बारे में सोचती रही। लेकिन जब मैंने इस बारे में सोचा तो मुझे लगा कि वह कभी नहीं समझ पाएगा। इसलिए इसके बजाय मैंने उसे अपने कोर्स, अपने कॉलेज, मुंबई में अपनी ज़िंदगी, और दौड़ने के अपने नए-नए पाले शौक के बारे में लिखा। मैंने उसे नोट्स याद रखने के रंगों के उस कोड के बारे में लिखा जिसे मैंने खोजा था। मैंने बड़ी तफ़्सील से सांस्कृतिक उत्सव के बारे में लिखा लेकिन उस हिस्से को छोड़ दिया जब मैंने मुंडेर पर डांस किया था। जब मैंने लिखना ख़त्म किया तब तक खत सोलह पन्नों का हो चुका था। मैं संतुष्ट थी और मेरा ख़्याल था कि वैभव के लिए यह अच्छा सरप्राइज़ रहेगा। मैंने ख़त के हाशियों को दिलों और नन्हे-नन्हे चित्रों से सज़ा दिया। फिर मैंने कुछ स्टिकर भी लगा दिए जो नोट्स की उन फ़ोटोकॉपियों पर लगाने के बाद बचे रह गए थे जिन्हें मैंने कॉलेज में बांटा था।

मैं बेसब्री और शीघ्रता के ऐसे भाव से भर गई थी जैसा मैंने पहले कभी महसूस नहीं किया था। मैं जो भी करती थी उसमें उसे तुरंत पूरा कर डालने का प्रेरक भाव भरा होता था। मैं इसकी वजह नहीं समझ पा रही थी, लेकिन अगर मुझे कुछ चाहिए होता था तो वह मुझे तुरंत चाहिए होता था। अभी, अभी और अभी मेरे दिलोदिमाग़ पर हावी था और यह मुझे किसी तेज़ चलती ट्रेन की तरह आगे बढ़ा रहा था।

मैं इतनी ज़्यादा ऊर्जा से भरी हुई थी कि मुझे समझ ही नहीं आ रहा था कि उसका क्या करूं। अपनी सुबह की जॉगिंग पर दौड़ना, पढ़ना, किताबें पढ़ना, भारी मात्रा में विस्तृत नोट्स बनाना—घोर उन्माद के साथ मैं ये सब करती रही। किसी भी काम ने इसे ख़त्म करने में मदद नहीं की। मेरा भंडार अंतहीन था।

कई दिन तो मैं बिल्कुल भी नहीं सोती थी। मेरे दिमाग़ में इतनी तेज़ी से विचार दौड़ते थे जैसे व्यस्त चींटियों का झुंड जिसे खाने का ढेर मिल गया हो, दौड़ता रहता है। मैं इन विचारों को कहीं संजोने की लगभग हताशा

भरी ज़रूरत से भर गई थी। मैं एक नोटबुक ख़रीद लाई और उसमें लिखने लगी। वे ज़्यादातर कविताएं होती थीं। लफ़्ज बेलगाम बहते जाते थे। मैंने विभिन्न विषयों पर लिखी कविताओं से पन्नों पर पन्ने भर दिए। कॉपी के बाईं तरफ़ मैं उनसे मेल खाती ड्रॉइंग बनाती थी। रात दर रात, मैं बैठी कविताएं लिखती रहती थी। मैं साधारण चीज़ों पर लिखती, फैंटेसी के बारे में लिखती, प्यार और हसरत पर लिखती, पीड़ा के बारे में, गंधों और आवाज़ों के बारे में लिखती, मैं मुंबई की बारिश के बारे में लिखती—संक्षेप में, मैं हर उस चीज़ के बारे में लिखती जो मेरे मन को छूती थी। मैं चतुराई भरे द्विअर्थ और तुकबंदी इस्तेमाल करती थी। कभी-कभी कविताओं में कोई तुकबंदी होती ही नहीं थी लेकिन वे उस बात के सार को व्यक्त करती थीं जो मैं कहना चाह रही होती थी। मैं शब्दों से खेलती और ऐसे प्रयोग करती जिन्हें मैं बेहतरीन उपमान समझती थी। मुझे लगता था कि मेरी कविताएं ख़ूबसूरत, संवेदनशील और चतुराई भरी हैं। लेकिन बाद में मनोचिकित्सकों ने इन्हें भी उस ख़त की तरह खंगाला और उनमें वैचारिक विकार के संकेत तलाशे और इसे 'संभवतः मतिभ्रम के कारण उत्पन्न सचेतन सोच की दीर्घस्थायी अशांति' कहा। इसने मेरे पेट की खोह में एक शून्य बना दिया था। उनके निष्कर्षों और ठप्पों ने मुझे बहुत ज़्यादा डरा दिया था और मानसिक रूप से इतना क्षत-विक्षत कर दिया था कि इतनी भी हिम्मत जुटा पाने में मुझे बरसों लग गए कि किसी से कह पाती कि मैंने कभी कोई कविता लिखी है। मैंने किसी भी तरह की रचनात्मकता को मिटा देना सीखा और यह भी सीखा कि 'सामान्य' और 'उचित' बर्ताव कैसा होता है। अगर मैं कोई कविता लिखती तो अपराधबोध से भर जाती और डर से कांपने लगती। किसी मुज़रिम की तरह मैं उसे छिपा देती या फाड़कर चिंदियां कर देती, पकड़े जाने से पहले सारे सुबूत मिटा डालती।

लेकिन उस समय तो मुझे यह कुछ भी पता नहीं था और इसलिए मैं जहां भी जाती अपनी छोटी सी डायरी को साथ रखती और जब भी मेरा दिल चाहता, दिल खोलकर उसमें लिखती और चित्र बनाती।

उस दिन सारी सुबह बारिश होती रही थी और उस दोपहर में होने वाली एमएम की क्लास बाहर बारिश की वजह से बन गए कीचड़ के नन्हे-नन्हे गड्ढों जैसी बदरंग लग रही थी।

"यह बहुत बोरिंग है! मेरा तो कक्षा में जाने का बिल्कुल मन नहीं है," छाया ने हम सबके मनोभावों को आवाज़ देते हुए कहा।

"चलो तो क्लास बंक करते हैं और फ़िल्म देखने चलते हैं," मैंने कहा।

"मैंने देखा था। कोई अच्छी फ़िल्म नहीं लगी," उदय ने कहा।

"तो कहीं और चलते हैं। समुद्र तट कैसा रहेगा?" मैंने सुझाया।

“इस बारिश में? तुम पागल हो क्या?” छाया, उदय और जिग्ना एक सुर में बोल उठे।

केवल जोजेफ़ ने कुछ नहीं कहा।

“थोड़ी-बहुत बारिश हो रही है तो क्या हुआ? मुझे लगता है बारिश में समुद्र सुंदर लगता है,” मैंने थोड़ा रूठते हुए कहा, मुझे गुस्सा आ रहा था कि वे मेरे नज़रिए की दाद नहीं दे रहे हैं।

“मैं तैयार हूं,” जोजेफ़ ने मुझे हैरान करते हुए कहा।”चलो, एंक्स, हम चलते हैं। कोई और आना चाहता है?” उसने पूछा।

कोई नहीं आना चाहता था और इसलिए जोजेफ़ और मैं इंस्टीट्यूट से बाहर चल पड़े।

“मैरीन ड्राइव तक टहलें या तुम टैक्सी लेना चाहती हो?” उसने पूछा।

“दरअसल, जो, मैरीन ड्राइव तो मैं बहुत बार देख चुकी हूं, लेकिन जुहू बीच कभी नहीं गई हूं।”

“क्या? इतने महीनों से यहां होने के बाद भी तुम वहां नहीं गई हो। कितने शर्म की बात है! चलो चलते हैं,” जोजेफ ने एक टैक्सी को रोकते हुए कहा।

“हम वहां तक की टैक्सी ले रहे हैं? हे भगवान, इसमें तो बहुत पैसे लग जाएंगे। बस का इंतज़ार करते हैं।”

“मैं पैसे दे रहा हूं, एंक्स, मुझे अपना शहर तुम्हें दिखाने दो। मुझे इजाज़त दें, मैडम,” उसने कहा, उसकी आवाज़ में कोमलता भरी थी। जब उसने मुझे देखा तो मुझे अभि का ध्यान हो आया। मैं बेसाख़्ता सिहर गई। यह वही नज़र थी जैसी अभि की हो जाया करती थी जब वह मुझे देखता था।

टैक्सी में, बारिश में भीगे मुंबई को देखते हुए मैं ख़ामोश बैठी रही। यह दिलकश था। मानसून ने हर चीज़ को ताजा धुला-धुला सा रूप दे दिया था। यहां तक कि शहर के बेहद सामान्य दृश्यों ने भी जैसे नई ख़ूबसूरती पा ली थी। हसरत और उदासी के भाव ने मुझे तर कर दिया। मैंने अपनी नोटबुक निकाली और बिना कुछ सोचे कविता लिखने लगी। यह कुदरत के रोने के बारे में थी। फिर मुझे अहसास हुआ कि जोजेफ़ मुझे देख रहा है।

“तुम कविता लिख रही हो?” उसने पूछा।

“लिख ली अब,” नोटबुक को बंद करके रखते हुए मैं मुस्कुराई।

“मुझे दिखाओ, एंक्स, मैं इसे पढ़ना चाहता हूं,” उसने कहा। वह फुसफुसा रहा था। उसने अपना बायां हाथ मेरे दाएं हाथ पर रख दिया जो

टैक्सी की सीट पर टिका हुआ था। मैंने अपना हाथ हटाने की कोई कोशिश नहीं की। हम ख़ामोश बैठे रहे, बाहर देखते हुए। फिर उसने मेरा हाथ पकड़ लिया और मैं उसकी तरफ़ घूम गई। वह सीधे मेरी आंखों में देख रहा था। उसने मेरा हाथ उठाया और उसे चूम लिया। उस पल में, उस पलांश में, मैंने जोजेफ़ की जगह अभि को देखा था। फिर वह छवि ग़ायब हो गई। मैं इतनी गहरी हसरत और हताशा से भर गई जो मैंने पहले कभी महसूस नहीं की थी। मेरा दिल दुख रहा था। मेरा सारा बदन दुख रहा था। मैं अपने आंसुओं को गालों पर लुढ़कने से रोक नहीं पाई।

जोजेफ़ घबरा गया, "ए, एंक्स, आय'म सॉरी! कोई बात नहीं। अगर तुम नहीं चाहतीं तो तुम्हें दिखाने की कोई ज़रूरत नहीं है। मैंने तो बस पूछा था। और मुझे अफसोस है कि मैंने तुम्हारे हाथ को चूमा। मुझे नहीं पता कि मुझे क्या हो गया था। सॉरी, सॉरी, एंक्स।"

"नहीं, बुद्धू। यह बात नहीं है," मैंने कहा और मैं उसकी ओर झुकी और उसके होठों को चूम लिया, मेरा आंसुओं से भीगा चेहरा उसके चेहरे से सट गया था। उसकी बढ़ी हुई शेव मेरे गालों पर चुभ रही थी और मैं उसकी परफ़्यूम की गंध सूंघ रही थी जो कि मर्दाना थी और तुरंत मुझे भा गई थी। मैंने गहरी सांस भरकर उसे जज़्ब कर लिया। मैं अभि की ख़ातिर उसे चूम रही थी। मैं उसे इस पछतावे में चूम रही थी कि मैं अभि से कभी यह नहीं कह पाई थी कि वह मेरे लिए मायने रखता है, मैं उसे इसलिए चूम रही थी कि मैं अभि को कभी नहीं चूम पाई थी और मैं उस शून्य को भरने की उम्मीद कर रही थी जो मेरे दिल को खाए जा रहा था जिसे मैं हर बार परे धकेलती आई थी। मुझे जोजेफ़ के लिए ज़रा भी प्यार महसूस नहीं हो रहा था लेकिन फिर भी मैंने उसे चूमा था, इतनी तीव्रता और दृढ़ता से मानो अतीत को सही कर रही होऊं, अभि को फिर से ज़िंदा कर रही होऊं।

जोजेफ़ घबरा गया। लेकिन वह खुश भी नज़र आ रहा था और अचानक ही बहुत शर्मा गया था। टैक्सी ड्राइवर जिसने अपने रियर व्यू मिरर में देख लिया था कि पिछली सीट पर क्या हो रहा है, उसकी आंखें पपोटों से निकली पड़ रही थीं।

"एंक्स! टैक्सी में नहीं!" जोजेफ़ ने सरगोशी से कहा।

"तुम्हारे दिमाग़ में कोई और जगह है क्या? है तो वहीं चलते हैं।" मैंने उसे छेड़ा और वह ठठाकर हंस पड़ा।

फिर मैंने उसे अपनी कविता की डायरी पकड़ा दी। उसने उसे ऐसे पकड़ा जैसे वह कोई ख़ज़ाना हो। एक-एक कर उन्हें पढ़ते हुए वह ख़ामोश रहा। वह प्यार से पन्नों को थपथपाता, चित्रों पर और मेरी लिखाई पर हाथ फेरता।

जब मेरी निगाह समुद्र पर पड़ी तो मैंने उसे कोहनी मारी। आकाश अशांत स्लेटी रंग का हो रहा था और समुद्र ठाठें मार रहा था। हवा उदास सा गीत गा रही थी, क़ुदरत ने अपनी सारी शानो-शौकत बिखेर दी थी, एक ऐसी नर्तकी की तरह जो जानती है कि सबके आकर्षण का केंद्र वही है।

मैं मंत्रमुग्ध सी देखती रही और कह उठी, "ओह, जोजेफ़, देखो तो इसे!"

जोजेफ़ ने ड्राइवर से टैक्सी रोकने को कहा और हम बौछार में भीगते एक रेस्तरां में चले गए जिसका रुख समुद्रतट की ओर था। इस वक़्त यह ख़ाली पड़ा था, कुछ मौसम की भी बात रही होगी।

"अंकिता, मुझे यक़ीन है कि तुम पहले भी कई बार यह सुन चुकी होगी, लेकिन मैं तुमसे यह कहना चाहता हूं कि तुम बहुत ख़ूबसूरत हो," जोजेफ़ ने कहा।

"शुक्रिया, जो," मैंने कहा, और फिर से मुझे उसमें अभि की झलक दिखाई दी।

उस दिन समुद्र किनारे के उस कैफ़े में हम बहुत देर तक बैठे चाय पीते और बातें करते रहे। जोजेफ़ ने मुझे अपने बचपन, अपने बड़े होने, अपने सपनों और आकांक्षाओं के बारे में बताया। उसने मेरे बारे में भी जानना चाहा।

पता नहीं क्यों मैं उसे कोचीन या अभि के बारे में नहीं बताना चाहती थी। अभि एक अनमोल राज़ की तरह था जिसे मैं अपने सीने से लगाए हुए थी। कुछ अजीबोग़रीब ढंग से मुझे लगता था कि जब तक मैं अभि के बारे में बात नहीं करूंगी तब तक मैं सुरक्षित रहूंगी। हालांकि मुझे सुरक्षा क्यों चाहिए थी, यह मैं नहीं बता सकती थी।

"आई लव यू, अंकिता," जोजेफ़ ने आख़िरकार कह ही दिया।

मुझे अपने दिमाग़ में अभि के नाना की आवाज़ सुनाई दी और साथ ही दिल को झकझोर देने वाली उनकी सुब्कियां भी। उस आवाज़ की याद अभी भी मेरी आत्मा को झुलसा देती थी। प्यार का तिरस्कार न करने के बारे में उन्होंने जो कहा था, वह मुझे याद आ गया। मैं कुछ पल ख़ामोश रही।

फिर मैंने कहा, "आई लव यू, जोजेफ़।"

लेकिन मैं क़तई सच नहीं कह रही थी। मुझे उसके लिए बिल्कुल प्यार महसूस नहीं हो रहा था। वह अच्छा लड़का था, बहुत बढ़िया था, आकर्षक था। लेकिन वह मेरे लिए नहीं था। लेकिन मैं किसी भी हालत में उसे यह नहीं बता सकती थी।

बाद में, मैं देर तक अपने कमरे में बैठी सोचती रही। विचार रेले की तरह उमड़े पड़ रहे थे, जैसे चावल का कोई ज़रूरत से ज़्यादा भरा बोरा हो जिसमें छेद हो गया हो और अब चावल के दाने सब ओर बिखर रहे हों।

जोजेफ़ से झूठ बोलने पर मुझे ख़ुद से नफ़रत हो रही थी। मुझे ख़ुद से नफ़रत हो रही थी कि मैं अभि के सामने सच को स्वीकार नहीं कर पाई थी। और मुझे ख़ुद से नफ़रत हो रही थी कि मैं वैभव को कभी भी पूरा सच नहीं बता पाई थी। तीन अलग-अलग आदमियों के साथ जुड़ने पर मुझे ख़ुद पर शर्म आ रही थी। मैंने आईने में अपना चेहरा देखा। मुझे उससे कोफ़्त हुई। मुझे लगा अगर मैं बदसूरत होती तो वे लोग मुझसे यह नहीं कहते कि मैं ख़ूबसूरत और दिलकश हूं। हो सकता है अगर मैं बदसूरत होती तो अभि अभी भी ज़िंदा होता। शायद मुझे अपने चेहरे को बिगाड़ देना चाहिए। अब मुझे यह बहुत ही बुरा लग रहा था।

उस रात भी मैं सो नहीं पाई। मैं अपने कमरे में टहलती रही। वैभव, अभि और जोजेफ़—उनके चेहरे गोल-गोल घूमते रहे। मैं किस क़िस्म की लड़की थी? मैं जोजेफ़ को ऐसे कैसे किस कर सकती थी? और यह कहकर मैं उससे झूठ कैसे बोल सकती थी कि मैं उसे प्यार करती हूं? मेरे विचार बवंडर की तरह गोल-गोल घूम रहे थे। वे बहुत तेज़ी से घुमेड़े ले रहे थे। अब मेरे दिमाग़ में बहुत सारी छवियां आ रही थीं और लगातार तेज़ होते मेरे विचारों के गिर्द कल्लोल कर रही थीं। उन्हें ब्लॉक करने की कोशिश में मैंने आंखें बंद कर लीं। मगर वे जाती ही नहीं थीं।

वे इतनी ज़्यादा गहरा गईं कि आख़िरकार मैं इसे और बर्दाश्त नहीं कर पाई! मैंने अपनी कविताओं वाली डायरी निकाली और यह कविता लिख डाली:

कुछ पल का साथ
वो नम आंखों से उसे देखती है
उन्होंने संभोग किया है
या उसकी कोशिश की थी
वो तृप्त और शांत दिखता है
उससे भी ज़्यादा, संतुष्ट।
नहीं ध्यान देता उसकी ख़ामोशी पर
या शायद नज़रअंदाज़ कर देता है
न जानते हुए इसकी वजह।

अब वो जाने की बात कर रहा है
उसकी आवाज़ एकरस भिनभिनाहट सी है
पीछे चलते पंखे के शोर में

उस छोटे से दो कमरों के फ़्लैट में
जो उनके पसीने भरे बदनों की गंध से भरा है।

उसके दिल में एक ख़्याल कौंधता है
कि उसमें और
सड़क पर खड़ी उसकी बहनों, तथाकथित वेश्याओं में
इकलौता फ़र्क़ बस इतना है
कि वो भुगतान नक़द लेती हैं
और वो लेती है जज़्बात में,
शब्दों के रूप में,
वो शब्द जो अब अपने मायने खो चुके हैं
कोरे शब्द—"आई लव यू"

मैंने यह कविता पढ़ी जो मैंने अभी-अभी लिखी थी। कविता में जो छवियां मैंने दर्शाई थीं, वे पता नहीं कहां से आप ही आप मेरे दिमाग़ में आ गई थीं।

मैं कविता को जितनी बार पढ़ती, उतना ही उससे जुड़ा महसूस करती। मेरे लिए यह पूरी तरह सार्थक थी।

अचानक मैं समझ गई कि क्यों।

मैं ख़ुद को काफ़ी कुछ उस वेश्या जैसा महसूस कर रही थी जिसके बारे में मैंने लिखा था।

14

ज़िंदगी फिसलती रेत

मुझे ठीक से सोए हुए अब कम से कम तीन हफ़्ते गुज़र चुके थे। और उस दौरान भी जब मैं अपने उन बेशुमार कामों से थककर आख़िरकार सो जाती थी जिनमें मैं लगी रहती थी, तब भी यह एक-दो घंटे से ज़्यादा की नींद नहीं होती थी। विचार बेतहाशा तेज़ी से भागते-दौड़ते रहते थे। मैं हताशा से भरकर उन्हें नियंत्रित करने की, बांधने की कोशिश करती। मगर वे तो तेज़ी से भागते जंगली घोड़ों की तरह थे। जितना मैं कोशिश करती, लगता जैसे वे उतना ही सरपट भाग जाते थे। एक वक़्त पर तो मैं इतना थक गई थी कि बस सो जाना चाहती थी। मैं अपने विचारों पर चिल्लाना चाहती थी, उनसे कहना चाहती थी कि रुक जाएं। मैं अपनी आंखें कसकर बंद करके मानसिक स्तर पर उन्हें दूर करने की कोशिश करती। बिस्तर पर लेटकर सोने की भरसक कोशिश करते हुए मैं भेड़ें गिनकर ख़ुद को शांत करने की कोशिश करती। लेकिन जिन भेड़ों को मैं गिनती, वे मायावी ड्रैगनों और विशाल देवों में बदल जातीं। वे लाखों तारों से भरे ब्रह्मांड में कुदानें भरती भाग जातीं। वे बृहस्पति पर कुदान लगातीं और उनके खुर बेहद शांत संगीतात्मक ध्वनि पैदा करते जो मेरे मन में बस जाती थी। मैंने संगीत की इतनी मीठी धुन कभी नहीं सुनी थी। जिन प्राणियों को मैं देखती थी वे लाखो रंगों के थे। वे देखने में जादुई, सम्मोहक और मनमोहक थे। मेरे दिमाग़ में जो एक निरंतर जारी तमाशे का सा माहौल बना हुआ था, उसके चलते सो पाना सुदूर सपना सा लगता था। बेशक मुझे पता था कि यह 'असली' नहीं है और इसका वजूद केवल मेरे विचारों में है लेकिन ओह, फिर भी यह कितना सुंदर था! यह नशीला था। मैं इसकी ओर खिंचती गई और मैंने पाया कि मैं इसमें और गहरी धंस गई हूं।

अपने कमरे को साफ़-सुथरा रखने को लेकर मैं हमेशा से बहुत सजग रही हूं। लेकिन दौड़ने, कविताएं लिखने और पढ़ने जैसे इतने सारे कामों के साथ मैं अपने आसपास की चीज़ों, ख़ासकर अपने कमरे को लेकर बहुत बेपरवाह होने लगी थी। जब हज़ारों दूसरे दिलचस्प काम करने के लिए थे तो मैं कमरे को ठीकठाक करने और चीज़ों को सहेजकर रखने की जहमत मोल नहीं लेती थी। हर तरफ़ किताबों के ढेर लग गए थे। मेज पर ट्रेन और बसों के टिकट पड़े थे। कॉफ़ी के कम से कम पांच जूठे ख़ाली कप पड़े थे। जिन रातों को मैं जगी रहकर कविताएं लिखती रहती थी, उनमें मुझे पता नहीं था कि मैं कितने कप कॉफ़ी पी लेती थी। बिस्तर बेतरतीब पड़ा था और जूते-चप्पल ठीक से रखने की मुझे कोई सुध नहीं थी। कम से कम तीन जोड़े फर्श पर बिखरे हुए थे। कुछ जूठी प्लेटें भी पड़ी थीं जिनमें बचे-

खुचे खाने के अंश भी थे, जिन्हें मैंने पलंग के नीचे खिसका दिया था। मेरा कमरा लगातार उस बेतरतीबी के जैसा लगने लगा था जो मेरे दिमाग़ मे अंदर चल रही थी। यह लाखों विभिन्न चीज़ों का पागलपन भरा घालमेल था जो आपस में बिना किसी संबंध या जुड़ाव के साथ-साथ रहती थीं, बहुत कुछ मेरे दिमाग़ में दौड़ते विचारों की तरह, जो रुकने को तैयार ही नहीं थे।

मैं धीरे-धीरे अपने रूप-रंग को लेकर भी बेपरवाह होने लगी थी। मेरा वज़न भी बहुत ज़्यादा कम हो गया था। पहले से ही दुबली मेरी क़द-काठी अब तो एकदम निचुड़ी हुई लगने लगी थी। मेरी आंखें भुतहा सी लगने लगी थीं। लेकिन फिर भी वे एक अजीब सी ऊर्जा से चमकती रहती थीं। लेकिन इन दिनों मैं आईने में ख़ुद अपने से भी आंखें नहीं मिला पाती थी। दांत साफ़ करते वक़्त जैसे ही मैं अपना अक़्स देखती, तेज़ी से अपनी ही नज़रों से बचती हुई दूसरी ओर देखने लगती। मुझे ख़ुद को देखना बुरा लगता था और इसलिए मैं कम से कम साज-सज्जा से काम चलाती थी। मुझे बस अब कोई परवाह ही नहीं रही थी।

मेरे माता-पिता मुझसे अपना कमरा साफ़ करने को कहते रहते थे और मैं वादा करती रहती थी कि अगले दिन ज़रूर साफ़ कर दूंगी। आख़िरकार मेरी मां से और बर्दाश्त नहीं हुआ और एक दिन जब मैं कॉलेज में थी तो उन्होंने ख़ुद उसकी सफ़ाई करने का फ़ैसला किया।

शाम को जब मैं वापस आई तो मेरा कमरा एकदम साफ़ था। लेकिन घर में एक असहज, मौत की सी ख़ामोशी पसरी हुई थी। अपने माता-पिता के चेहरों पर नज़र डालते ही मैं समझ गई कि कुछ तो गड़बड़ है। डैड के चेहरे पर तूफ़ानी बादलों का सा कालापन फैला हुआ था। मां गुस्से से मुझे घूर रही थीं, उनकी आंखें तमतमा रही थीं। मुझे पूरा यकीन था कि वे इसलिए नाराज़ हैं क्योंकि मैं अपने कमरे की सफ़ाई करने को लगातार टाले जा रही थी और उन्हें सफ़ाई करनी पड़ी थी। मैं माफ़ी मांगने की तैयारी करने लगी।

और तभी मैंने यह देखा। वह ख़त जो अभि ने मुझे ख़ून से लिखा था, वह ड्रॉइंगरूम में सैंटर टेबल पर पड़ा था। उस पर नज़र पड़ते ही मुझे लगा जैसे किसी ने कलेजे में तीर भोंक दिया हो। मैंने सांस रोक ली, मेरा दिल बुरी तरह से धड़क रहा था। मैंने थूक गटका, अपना मुंह खोला और बंद कर लिया। मुझे समझ नहीं आ रहा था कि क्या कहूं। मैं अवाक थी। मुझे धक्का लगा था कि यह मेरे माता-पिता के हाथ लग गया है। मैंने इसकी कभी कल्पना नहीं की थी। पहले मैं हमेशा सावधान रहती थी कि घर से जाते समय अपनी अल्मारी में ताला लगा दूं और चाबी साथ लेकर जाऊं। लेकिन कुछ समय से, मैं इस ओर से भी बेपरवाह हो गई थी। किसी लड़के से इस तरह का ख़त पाना और फिर बेशर्मी से उसे सहेजे रखना उनके

मुताबिक़ किसी अच्छी परवरिश पाई लड़की द्वारा किया जाने वाला घोर पाप था। उनके हिसाब से यह माफ़ किए जाने लायक़ नहीं था कि उनकी बेटी ने जिस पर वे इतना भरोसा करते थे इस तरह का काम किया था। मेरा एक हिस्सा उनके गुस्से से डर रहा था। लेकिन दूसरा हिस्सा उस ख़त को फिर से देखने के दर्द से सुन्न हो गया था। इसने उस समय की सारी यादें ताज़ा कर दी थीं जब मैंने ख़त को देखा था और पहली बार उसके घर गई थी। इसने मुझे उस दोपहर की याद दिला दी जो मैंने उसके साथ, उसके घर में बिताई थी।

"क्या है यह?" मेरे पिता दहाड़े।

"क्या इसीलिए हमने तुम्हें कॉलेज भेजा था?" मेरी मम्मी ने सुर मिलाया।

"कौन है यह लड़का? और यह खून से क्या लिखा है? साला पागल हरामज़ादा। उसकी हिम्मत कैसे हुई?" डैड इतने गुस्से में थे कि उनके अपने शब्द गले में घुटे जा रहे थे। वे गुस्से से कांप रहे थे। ठीक से बोल भी नहीं पा रहे थे।

"और क्या तूने भी उसे जवाब दिया था, बेशर्म कुलटा?" मॉम ने मुझे लताड़ा।

मुझे समझ नहीं आया क्या कहूं। मेरे अंदर कहीं धीरे-धीरे गुस्सा कुलबुला रहा था लेकिन उदासी की एक विशाल लहर भी मचलने लगी थी। मेरे पिता उसके लिए ऐसा कैसे बोल सकते हैं? इन्होंने मेरी निज़ी चीजें खंगालने की हिम्मत कैसे की? ये लोग इस तरह मेरी निजता को कैसे लूट-खसोट सकते हैं और फिर मुझसे सवाल-जवाब कर रहे हैं? मैं अब बच्ची नहीं रही हूं। मैं इक्कीस की हूं और मैं तो अब शादी भी कर सकती हूं और ये लोग मुझे रोक नहीं पाएंगे।

वह पागल हरामज़ादा नहीं है, डैड। वह मर चुका है। मैं कहना चाहती थी लेकिन शब्द मेरे गले में कहीं अटककर रह गए और बाहर ही नहीं निकले।

मां ने मुझे देखा और डैड से कहा, "देखो इसे, कैसे खड़ी है! इसकी बेशर्मी तो देखो। शर्म से इसका सिर झुक जाना चाहिए था। इसकी अकड़ और ख़ामोशी को देखो। आख़िर यह ख़ुद को समझती क्या है?"

मैं अभी भी ख़ामोश रही। मेरी ख़ामोशी ने उनके गुस्से को और बढ़ा दिया।

"जवाब दे, बेशर्म, बदचलन," वे चीख़ीं और उन्होंने मुझे ज़ोर से धक्का दे दिया। उनके धक्के से मैं एक ओर को हट गई। "हमने तुझे इसके

लिए नहीं पाला था। कहां है यह लड़का? क्या रिश्ता है तेरा इसके साथ? तू क्या इससे शादी करने वाली है?" वे गरजीं।

अब मेरे माता-पिता दोनों मेरे कुछ कहने का इंतज़ार करते हुए मुझे घूर रहे थे। मैं उन्हें प्यार जैसी कोई चीज़ कैसे समझा सकती थी? उनके मध्यवर्गीय मूल्यों, उनकी निष्कलंक भारतीय परवरिश और उस सबमें जिसमें उनकी मान्यता थी, प्यार और रोमांस जैसी ओछी बातों के लिए कोई जगह नहीं थी। अगर प्यार होता भी था तो आपको दिखाना होता था कि यह नहीं हुआ। आप इसे दरकिनार कर देते थे और आगे बढ़ जाते थे, क्योंकि ज़िंदगी कठिन थी। आप पढ़ते, नौकरी करते और उस व्यक्ति से शादी कर लेते जिसे आपके माता-पिता ने आपके लिए चुना था। इसी की वे अपेक्षा करते हैं और यही उनके जीने का ढर्रा है। यह सीधा-सादा और प्रत्यक्ष था। सवाल ही नहीं उठता था कि वे जुनून, प्यार और जज़्बात की बात समझ पाते। उनके दिमाग़ या जिंदगी में ऐसी किसी चीज़ के लिए कोई जगह थी ही नहीं।

"वह मर चुका है," आख़िरकार मैंने किसी तरह कहा।

"अगर मर गया है तो बहुत अच्छा हुआ। वह सड़ेगा," वे बोलीं। "देखो, ये सब गुल खिलाने के बाद कैसे पलटकर जवाब भी दे रही है। सब तुम्हारे लाड़-प्यार का नतीजा है, तुम्हीं ने इसे इतनी छूट दी है। हमें इसके साथ थोड़ी और सख़्ती बरतनी चाहिए थी। फिर यह इस तरह अपने मां-बाप को पलटकर जवाब नहीं दे पाती," वे डैड से कहने लगीं।

अभि की मौत के बारे में उन्हें बताने का साहस मुझमें नहीं था। मां ने सोचा कि मैं ढीठ हो रही हूं और जब मैंने कहा कि वह मर गया है तो मैं उन्हें चुप करना चाहती थी। मैंने उन्हें ऐसा सोचने दिया। इस बारे में बात करने से तो यही आसान था।

"तुमने कभी सोचा है कि इस ख़त को रखने का क्या नतीजा होगा?" डैड ने पूछा।

किसी सज़ा पाए कैदी की तरह खड़ी हुई मैं चुप ही रही।

"तुम्हें हमें और कुछ बताना है?" मां ने पूछा।

"नहीं," मैंने कहा।

"तो फिर ये ख़त क्या हैं?" उन्होंने कहा और तब जाकर मेरा ध्यान गया कि उनके पास तो वैभव के भी सारे ख़त हैं। मैंने उन्हें दिनांक के मुताबिक़ बड़ी सफ़ाई से फ़ाइल किया था और अब वह फ़ाइल लिविंग रूम में सोफ़े पर पड़ी थी।

मैं सहम गई। मुझे यक़ीन था कि वे उन सबको भी पढ़ चुके होंगे।

“और कितने लड़कों को तूने अपने जाल में फंसा रखा है, मूर्ख कुलच्छनी?” मां लगभग जहर उगल रही थीं। उनके शब्दों ने मुझे छलनी कर दिया था, मेरी समझबूझ की गहरी भावनाओं को खोदकर उघाड़कर नंगा कर डाला था।

अब तक तो यह मेरे मन में असहजता का एक धुंधला सा अहसास ही रहा था, लेकिन ज़ोर से बोलकर उन्होंने इसे ठोस बना दिया था। मैं जानती थी कि वे पूरी तरह से सही नहीं हैं। ऐसा नहीं था कि मैं ख़ुद इनमें से किसी भी लड़के के पीछे पड़ी थी या उसे लुभाया था, बल्कि वही मेरे पीछे पड़े थे। मैंने तो उन्हें क़तई नहीं फंसाया था। अभि के मामले में मैंने तो उससे यह भी नहीं कहा था कि मैं उससे प्यार करती हूं। मेरा तार्किक मन कहता था कि मैं किसी भी मायने में ज़िम्मेदार नहीं हूं। लेकिन इस अहसास से बचने का कोई तरीक़ा नहीं था कि कहीं न कहीं ग़लती मेरी ही थी। अहसास बहुत ताक़तवर थे और तर्क उनके वज़न के नीचे कुचल गया था। मेरे ऊपर तर्क नहीं, अहसास हावी थे। मैं उनके रहमोकरम पर थी और वे बेरहम, कठोर और बेदर्द थे।

अनजाने ही मेरी मां ने मेरे आत्मसम्मान की जड़ पर वार कर दिया था और उसे किरच-किरच बिखेर दिया था। मैं तो उसकी किरचें तक नहीं उठा पाई थी। लगभग तुरंत ही मैं शर्मिंदगी, पछतावे, अपराधबोध और खोखलेपन के गहरे अहसास से भर गई। मेरा जी मिचलाने लगा।

“अब बस एक काम ही हो सकता है,” डैड ने कहा। “मैं चाहता हूं कि तुम वादा करो कि ये चिट्ठियां लिखने की बेवकूफ़ी बंद कर दोगी। यह तो अच्छा है कि हम केरल से दूर हैं। किसी को इस बारे में पता न लगे। किसी को कानोकान भी ख़बर हुई तो ख़ानदान की इज़्ज़त मिट्टी में मिल जाएगी। हम तुम्हारे मां-बाप हैं। हमें तुम्हारे भविष्य के बारे में सोचना है।”

मैं डैड से कोई वादा नहीं कर पाई। अब मुझे अपने ऊपर भरोसा ही नहीं रहा था—मैं उनसे क्या वादा करती? मैं ख़ामोश रही।

मेरी ख़ामोशी को वे रजामंदी मान बैठे।

“यहां आओ, हमें एक काम करना होगा,” डैड ने कहा।

मैं इतना थक गई थी कि न मैंने यह पूछा कि उनके मन में क्या है, न कोई बहस की।

मैं अपने माता-पिता के पीछे-पीछे किचन की बालकनी में चली गई।

एक कोने में घर की साफ़-सफ़ाई की चीज़ों के साथ केरोसिन की एक बोतल रखी हुई थी। मां आमतौर पर बाई से घर में पोछा लगवाते वक़्त पानी में एक ढक्कन केरोसिन डाल देती हैं। इससे फ़र्श पर चमक आ जाती

है। लेकिन जब डैड ने बोतल उठाई तो उनके दिमाग़ में यह बात नहीं थी। मैं इतनी सन्न थी कि समझ भी नहीं पाई कि वे कर क्या रहे हैं।

लगभग पलक झपकते ही उन्होंने उन ख़तों पर थोड़ा सा केरोसिन उड़ेल दिया जिन्हें वे फाइल में से निकाल लाए थे। उन्होंने उन्हें बालकनी के फ़र्श पर फेंक दिया। फिर माचिस की तीली जलाई और लपटों ने काग़ज़ों को उसी तरह लील लिया जैसे कोई भूखा दानव अपने शिकार पर टूट पड़ता है। तब यकायक मुझे समझ आया कि उन्होंने क्या कर डाला है। लेकिन अब तक तो बहुत देर हो चुकी थी। ढेर में सबसे ऊपर अभि का ख़त था। मैं अभि के ख़ून से भीगे शब्दों को धू-धू कर जलते देखती रही। मेरे गले में फंसी गांठ मानो फट पड़ने को उतारू थी। लेकिन मैं रोई नहीं।

हालांकि मैंने एक भी आंसू नहीं बहाया था, लेकिन मैं हारा हुआ महसूस कर रही थी। मैं बहुत बर्दाश्त कर चुकी थी। मैं तो बस गुड़ीमुड़ी होकर लेटना और मर जाना चाहती थी। ख़तों को जलते देखने से उपजा हार का अहसास दमघोंटू था। ऐसा लग रहा था जैसे किसी ने सलाख गर्म करके मेरी कच्ची उघड़ी खाल को बार-बार दाग़ दिया हो।

"अब सब ठीक हो जाएगा। आज के बाद तुम एक नई लड़की होगी। बीती बातों को भुला दो। वे ख़त्म हो चुकी हैं," मैं अपने कमरे की ओर जाने लगी तो डैड ने कहा। उन्हें इस पर विश्वास भी था। उन्हें लगता था कि मुझे अतीत को बिसरा देना चाहिए। आख़िर मैं एक सपना लेकर मुंबई आई थी और कॉरपोरेट जगत की ऊंचाइयों को नापने के लिए मेरे पास मैनेजमेंट की डिग्री होगी।

लेकिन उस पल मेरे दिमाग़ में यह बिल्कुल नहीं था। मैं अपने कमरे में जाकर लेट गई। मैं ख़ालीपन महसूस कर रही थी।

अब मेरे अंदर एक विशाल, स्याह शून्य गहरा गया था। यह उस अनदेखी पीड़ा की तरह था जो किसी अंग को काट दिए जाने पर इंसान को महसूस होती है। उस अंग का तो फिर कोई वजूद नहीं रहता लेकिन उस अंग में जो अब नहीं रहा है, होने वाली पीड़ा बहुत वास्तविक होती है। मुझे समझ नहीं आ रहा था कि इस पीड़ा से राहत पाने के लिए क्या करूं। मैं ख़ुद को इसमें फंसा हुआ महसूस कर रही थी। मैं चाहती थी कि यह बंद हो जाए। मुझे अब यह दर्द और ज़्यादा नहीं चाहिए था। मैंने अपनी मुट्ठी को अपनी पूरी ताक़त से कसकर बंद कर लिया, मेरी उंगलियों के नाख़ून मेरी हथेली में गढ़ने लगे थे। मैंने बार-बार यही किया। नाख़ून जितना गहरे धंसते, उतना ही मुझे बेहतर लगता। फिर मेरी नज़र पेपर काटने वाले चाकू पर पड़ी जिसे मैंने कुछ समय पहले ख़रीदा था। मैंने उसे उठाया और अपनी कलाई पर एक ओर छोटा सा कट लगा दिया। चाकू के फल ने त्वचा को काटा तो मैं हल्के से चिहुंक उठी और फिर ख़ून की रेखा उभर

आई। फिर मुझे बेहतर लगने लगा। अब कम से कम दर्द असली तो था। मैं इसे बर्दाश्त कर सकती थी। यह उस अनदेखे दर्द जैसा नहीं था जो भयानक रूप से असहनीय था। मैं बाथरूम में गई और कैबिनेट खोलकर रूई और डेटॉल निकाला। मैंने बिना पानी मिलाए डेटॉल को सीधे घाव पर लगा लिया। तेज चुभन हुई, लगभग जला देने जैसी। अजीब ढंग से मुझे राहत महसूस हुई।

मैंने जो किया था उसके बारे में मेरे माता-पिता को कुछ पता नहीं था। मुझे ख़ुशी हुई कि यह एक ऐसी चीज़ है जिसके बारे में वे कुछ नहीं कर सकते थे। उनके द्वारा अभि और वैभव के ख़त पढ़ने से मुझे बहुत गंदा लग रहा था। यह मेरा शरीर था और इसके साथ मैं जैसा चाहती, वैसा कर सकती थी। यह अजीब क़िस्म की अवज्ञा थी। जो उन्होंने किया था, यह जैसे उनसे उसका बदला लेने का तरीक़ा था।

“हा हा, मां, अब देखो मुझे,” मैं कहना चाहती थी। “इसके लिए आप क्या करेंगी, क्यों, मां?” मैं ताना मारना चाहती थी। लेकिन ख़ुशक़िस्मती से मैंने ऐसा कुछ नहीं किया और अपने कमरे में लेटी सोने की कोशिश करती रही।

पहले की ही तरह नींद बिल्कुल नहीं आई। पहले तो मायावी प्राणियों से मुझे सुकून मिल जाया करता था। लेकिन अब वे जा चुके थे। उनकी जगह स्याहपन और शून्य ने ले ली थी। अब मुझे बस अपने सिर में उन ख़तों की मर्मभेदी चीख़ें सुनाई देती थीं जिन्हें उन्होंने जला दिया था। वे कर्कश थीं। जलते हुए हर अक्षर चीख़ रहा था, “मुझे बचा लो, मुझे बचा लो, मुझे जीने दो।” लेकिन एक-एक को धीमी दर्दनाक मौत मरते देखते हुए मैं ख़ामोश थी।

डैड ने कहा था कि उस दिन के बाद मैं एक नई लड़की बन जाऊंगी। उन्होंने सही कहा था, लेकिन उस तरह से नहीं जैसे उन्होंने देखा था।

उस दिन उन चिट्ठियों के साथ ही मेरे अंदर भी कुछ मर गया था। लेकिन क्या यह मुझे पता नहीं था। मैं उसको कोई नाम नहीं दे सकी। शायद वह मेरी आत्मा का एक हिस्सा था। या शायद यह मेरी नियति का हिस्सा था।

वह क्या था, मैं बता नहीं सकती थी।

15

गहरा अंधेरा

उस सुबह मेरी आंख खुली तो मुझे याद है मैं ख़ौफ़ज़दा थी। यह एक ऐसा डर था जैसा मैंने पहले कभी महसूस नहीं किया था। मेरे पेट की गहराई से उठता एक डूबता सा अहसास था जो धीरे-धीरे ऊपर को, मेरे हलक़ की ओर बढ़ रहा था। ऐसा लग रहा था जैसे पीछे से किसी ने मेरी आंखो पर पट्टी बांध दी थी और अब उसके हाथ मेरी गर्दन पर थे और उसे ज़ोर से दबा रहे थे। मुझे डर लगने लगा। बुरी तरह डर लगने लगा। वास्तव में, इसका कोई तार्किक कारण नहीं था।

मैं छठे फ़्लोर की अपनी खिड़की के पास गई और नीचे देखा। ऑफ़िसों को जाने वाले काम के लिए जा रहे थे, बच्चे अपनी स्कूल बसों का इंतज़ार कर रहे थे। मैंने दूसरे घरों की खिड़कियों में झांका! औरतें खाना बना रही थीं, नौकरानियां काम कर रही थीं, बच्चे स्कूल जाने के लिए तैयार हो रहे थे। मैंने नीचे पार्क की हुई कारों की ओर देखा था जहां ड्राइवर अपने मालिकों की कारों को साफ़ कर रहे थे। यह किसी भी दूसरे दिन जैसा ही था—एक सामान्य दिन।

अलावा इसके कि मैं डरी हुई थी। डर मुझपे सवार था। इसे बयान करने के लिए कोई शब्द नहीं थे। यह पूरी तरह हावी था। मेरा दिल तेज़ी से धड़क रहा था और मुझे ठंडे-ठंडे पसीने आ रहे थे। यह अजीबोग़रीब था, समझ से बाहर था और भयावह था। मैं इससे पीछा छुड़ाना चाहती थी, लेकिन यह नहीं समझ पा रही थी कि किस चीज़ से पीछा छुड़ाऊं। मेरा एक भाग मुझे समझाने और मुझसे बात करने का प्रयास कर रहा था, लेकिन सब उस ज़बर्दस्त घबराहट में डूब गया था जो मुझे महसूस होना शुरू हो रही थी।

मैं वापस गई, अपने बेड पर बैठ गई और कुछ गहरी-गहरी सांसें लीं। मैंने अपनी आंखें बंद कर लीं। मैंने अपनी बांहें अपनी टांगों पर लपेट लीं और खुद को शांत करने की कोशिश में आगे-पीछे झूलने लगी।

“सब ठीक है। सब ठीक है,” मैं मन ही मन अपने आप से दोहराने लगी। लेकिन शब्दों में मानो कोई असर ही नहीं रहा था। लग रहा था जैसे डर बलग़ाम की तरह मेरे गले में उमड़ा आ रहा हो और मैं सांस भी नहीं ले पा रही थी।

मुझे समझ नहीं आया कि मुझे क्या हो रहा है। मुझे बस इतना पता था कि मैं डरी हुई थी और इसमें कोई आधार या तर्क नहीं था। ऐसी कोई चीज़ मैंने पहले कभी महसूस नहीं की थी।

मैं करीब पंद्रह मिनट अपने बेड पर बैठी रही और घड़ी को टिकटिक करते देखती रही। हर सैकंड के गुज़रने के साथ मेरा डर बढ़ता ही जा रहा था। लग रहा था जैसे मैं कुछ खो रही होऊं। मैं इसे कोई नाम तो नहीं दे सकी, लेकिन जानती थी कि इसे रुकना होगा। मैं लाचार महसूस कर रही थी।

आख़िरकार मैं किचन में चली गई।

मैंने देखा कि डैड चाय बना रहे हैं। अब तक मुझे सांस लेने में दिक़्क़त होने लगी थी।

मेरा चेहरा राख सा हो रहा था। हाथ ठंडे पड़े हुए थे।

“डैडी,” मैंने बहुत धीमे से आवाज़ दी। मेरी आवाज़ फटी हुई थी। बहुत मुश्किल से ही मेरी आवाज़ सुनाई दे रही थी। डैड ने हैरानी से नज़र उठाई। मुझ पर एक नज़र डालते ही वे समझ गए कि कुछ गड़बड़ है। गंभीर गड़बड़।

“बेबी, क्या बात है?” उन्होंने पूछा। वे चिंतित, तनावग्रस्त सुनाई दिए। इससे पहले कभी उन्होंने मुझे बेबी नहीं बुलाया था। कम से कम मुझे तो याद नहीं पड़ता। मेरे लिए यह बर्दाश्त करना बहुत मुश्किल था। ख़ासकर इसलिए कि यह बहुत प्यार भरा सुनाई दे रहा था और यह उस सज़ा के बाद कहा गया था जो बीती शाम मुझे दी गई थी।

मेरे आंसू फूट पड़े। बेक़ाबू सुबकियां। पहले ज़ोर-ज़ोर की सुबकियां जो दयनीय रिरियाहट में बदल गईं। और फिर ख़ामोश सुबकियां।

मेरे डैड ने मुझे गले से लगा लिया। “क्या हुआ? क्या हुआ?” वे दोहरा रहे थे।

मुझे कुछ पता नहीं था कि क्या हुआ था। कुछ नहीं हुआ था। ऐसा कुछ नहीं जिसे समझाया जा सके।

“मुझे डर लग रहा है, डैडी,” मैंने ख़ुद को कहते सुना। अपनी आवाज़ मुझे किसी और की सी मालूम दी।

“शांत हो जाओ। अगर कोई बात है, तो हम ठीक कर लेंगे।” उन्होंने कहा।

उनके शब्दों का कोई असर नहीं हुआ। अब तक मां भी किचन में आ गई थीं।

“क्या कॉलेज में कुछ हुआ था?” उन्होंने पूछा।

कुछ भी नहीं हुआ था। कॉलेज में तो सब कुछ ठीक ही था। मैं पढ़ाई में बहुत अच्छा कर रही थी।

मैंने अपना सिर हिला दिया और पहली बार मैं पूरी ईमानदारी बरत रही थी। मैं उनसे यह भी नहीं कह सकती थी कि मुझे इसलिए डर लग रहा है क्योंकि चिट्टियां जला दी गई थीं। वास्तव में इसकी वजह यह भी नहीं थी। चिट्टियां नष्ट हो गई थीं और मैं उदासी और दर्द महसूस कर रही थी। मैंने इसे स्वीकार कर लिया था।

लेकिन यह तो विशुद्ध डर था जो मुझे महसूस हो रहा था।

हर पल डर बढ़ता ही जा रहा था। मैं घबराहट की स्थिति में पहुंच गई थी।

“मुझे डर लग रहा है, मां। बहुत ज़्यादा डर।” मैं बड़बड़ाई, मैं किसी छह साल की खोई बच्ची जैसा सुनाई दे रही थी।

मेरी भावनाएं तेज़ी से बेक़ाबू हो रही थीं। ऐसा लग रहा था मानो मैं किसी के वश में होऊं। मैं अभी भी अंदर ही अंदर सुबक रही थी।

“तुम्हें किस चीज़ से डर लग रहा है? तुम कुछ बता सकती हो?” मां ने पूछा।

मैं नहीं बता सकती थी।

मेरे माता-पिता समझ नहीं पा रहे थे कि क्या करे। वे मुझे बैठक में ले गए और उन्होंने मुझे सोफ़े पर बिठा दिया। मां ख़ूब ठंडे पानी की बोतल ले आईं और उन्होंने मुझे एक गिलास ठंडा पानी दिया।

“यह पी लो,” उन्होंने कहा।

मैंने पी लिया। मैं तेज़ी से सांसें ले रही थी लेकिन सुबकियां थम गई थीं।

डैड कमरे में टहल रहे थे।

“शायद इसे नए कोर्स में एडजस्ट करने में कुछ समय लग रहा है। एमबीए बहुत मेहनत मांगता है,” डैड ने कहा।

“लेकिन अपनी पहली परीक्षा में तो इसने बहुत अच्छा किया है। इसके अंक बहुत अच्छे रहे हैं। और अभी उस दिन अपने कॉलेज फ़ेस्ट में भी इसने कोई प्रतियोगिता जीती थी।” मां ने प्रतिवाद किया।

वे इस तरह बात कर रहे थे जैसे मैं वहां थी ही नहीं।

“क्या यह चिट्टियों की वजह से है?” डैड ने मुझसे पूछा।

मैंने अपना सिर हिला दिया। वाक़ई यह वजह नहीं थी।

“अगर हमने उन्हें जलाया भी तो सही काम ही किया था। चिट्टियों की इसकी ज़िंदगी में कोई जगह नहीं है,” मेरी मां ने कहा।

मैं नहीं जानती थी कि क्या कहूं। अब मेरे हाथ बर्फ़ जैसे हो गए थे। मेरे पांवों के तलवे भी ठंडे लग रहे थे। मेरे दिल की धड़कनें दोगुनी तेज़ हो गई थीं। ऐसा लग रहा था जैसे उनसे कोई विशाल स्पीकर जोड़ दिए गए हों, जिसका एंप्लीफ़ायर मेरे सिर के अंदर था और किसी ने उसका पूरा वॉल्यूम खोल दिया हो। अब वे जैसे मेरे कान में गरज रहे थे। थड-थड-थड ही मुझे सुनाई दे रही थी। कमरा जैसे मुझे भींचे दे रहा था। मैं धरती में समाकर ग़ायब हो जाना चाहती थी। मैं कुछ भी सुनना नहीं चाहती थी। मैं उन्हें अपने बारे में बात करते सुनना नहीं चाहती थी।

दूर कहीं से मुझे अपनी मां की आवाज़ यह पूछते सुनाई दे रही थी कि क्या मुझे बेहतर लग रहा है।

मैं जवाब नहीं दे पाई।

मैंने यह चाहते हुए अपनी आंखें बंद कर लीं कि जिस भी चीज़ ने मुझे जकड़ा हुआ है, वह दूर हो जाएगी। मुझे अपनी पीठ पर डैड का हाथ महसूस हुआ। मुझे शांत करने की कोशिश में वे मेरी पीठ सहला रहे थे। वे कह रहे थे, “डरने की कोई बात नहीं है। अब मैं यहां हूं। चिंता मत करो। मैं यहां हूं।” वे यही दोहराते रहे और मेरी पीठ सहलाते रहे।

मैं उन पर विश्वास करना चाहती थी।

“गहरी सांसें लो,” उन्होंने कहा।

मैंने लीं।

“खींचो और छोड़ो, सांस खींचो और छोड़ो,” वे दोहराते रहे। मुझे याद है मैं सोच रही थी कि वे टीवी पर आने वाले किसी योग प्रशिक्षक की तरह सुनाई दे रहे हैं और हैरान थी कि उस हालत में भी मैं इस तरह की कड़ी जोड़ पाई थी।

मैंने सांसें लीं जैसे वे कह रहे थे और धीरे-धीरे घबराहट दब गई। मुझे थोड़ा बेहतर लगने लगा। मैंने अपनी आंखें खोल दीं।

मैंने मां का फ़िक्रमंद चेहरा देखा। मुझे दिख रहा था कि डैड भी फ़िक्रमंद हैं लेकिन वे इसे छिपाने की कोशिश कर रहे थे।

अब मुझे बेहतर लग रहा था। अब कोई डर या घबराहट नहीं हो रही थी। बस एक गहरी बेचैनी सी थी—उस तरह की जैसी तब होती है जब आपने किसी परीक्षा की तैयारी न की हो और आपको पता हो कि परीक्षा दस मिनट में शुरू होने वाली है। मैं अभी भी पूरी तरह शांत नहीं हुई थी लेकिन अब यह अनियंत्रित नहीं था। मैं सोच सकती थी, फ़ोकस कर सकती थी।

डैड और मॉम ने भी मेरे चेहरे पर यह देख लिया था।

“क्या हुआ था?” मॉम ने पूछा। उनकी आवाज़ थोड़ी अस्थिर सी थी।

“मुझे नहीं पता, मां,” मैंने जवाब दिया।

“कल तुम्हारी कोई परीक्षा या टैस्ट है क्या?” उन्होंने पूछा। शायद वे सोच रही थीं कि यह घबराहट या चिंता का दौरा था। शायद उन्होंने इसके बारे में पढ़ा होगा और उन्हें लगा होगा कि मैं ज़बर्दस्त तनावों का शिकार हो गई थी।

आख़िर, हम हाल ही में एक नए शहर में आए थे और मैंने एक बहुत ही मेहनत मांगने वाले शैक्षिक कोर्स में दाख़िला लिया था जो मुझे एक बहुत प्रतिष्ठित मैनेजमेंट योग्यता, जादू की वह छड़ी हासिल करवाएगा जो मेरे लिए कॉरपोरेट दुनिया के दरवाज़े खोल देगी। यह हमेशा से मेरी आकांक्षा रही थी, जैसी आकांक्षा उन दिनों ज़्यादातर युवाओं की होती थी —एक अच्छे मैनेजमेंट संस्थान में प्रवेश पाना और फिर कॉरपोरेट कैरियर पाना, ख़ूब पैसा कमाना और अपना ख़ुद का कैरियर बनाना।

हममें से किसी को यह अंदेशा नहीं था कि आगे एक लंबा भयानक सपना है।

मां का ख़्याल था कि यह बस चिंता का दौरा भर है।

वे इससे ज़्यादा भ्रमित या ग़लत नहीं हो सकती थीं।

***

अब स्याहपन किसी लबादे की तरह मेरे ऊपर उतर आया था। मैं इसके परे देख पाने में नाकाम सी ही रही थी। डर तो चला गया था लेकिन इसकी जगह एक अवसाद भरी भावना ने ले ली थी जिसने मेरे दिल को मनों भारी सा बना दिया था। यह डूबने की सी भावना थी, ऐसी भावना कि कहीं कुछ सही नहीं है, एक मनहूस, दयनीय भावना जो अब मेरे ऊपर हावी थी।

अगले दिन कॉलेज में मेरी क्लास थी मगर मैं जाना नहीं चाहती थी। मेरे माता-पिता ने भी ज़िद नहीं की।

जब मैंने कहा कि मैं कॉलेज नहीं जाना चाहती तो डैड ने कहा, “आज तुम आराम करो। शायद तुम बहुत ज़्यादा मेहनत करती रही हो। कल तुम्हें बेहतर लगेगा।”

मैंने उम्मीद की कि वे सही कह रहे हों। शेष दिन मैंने अपने कमरे में, बेड पर लेटे रहकर बिताया। मेरा मन न पढ़ने को कर रहा था, न नोट्स बनाने को कर रहा था, मैं दौड़ना या कविता तक नहीं लिखना चाह रही थी। वे सब काम जिनसे मैं पहले अपने समय को भरा करती थी, अब उन्हें करने का मेरा बिल्कुल मन नहीं हो रहा था और मैंने कुछ नहीं किया।

शायद डैड सही कह रहे थे और शायद मैं ख़ुद को बहुत ज़्यादा मेहनत में लगाए हुए थी। मैंने तय किया कि जैसा उन्होंने कहा है वैसा ही करूंगी।

लेकिन अगले दिन भी मुझे कुछ बेहतर नहीं लगा। फिर से मैं घर पर ही रही।

उस शाम जोजेफ़ ने यह जानने के लिए फोन किया कि मैं कॉलेज क्यों नहीं आई थी। मां ने फोन उठाया। उन्होंने कहा कि मैं फ़ोन पर नहीं आ सकती और मेरी तबीयत ख़राब है। जब मैं बेहतर महसूस करूंगी तो कॉलेज आऊंगी और वह मुझसे तब बात कर सकता है। उन्होंने उससे यह भी कहा कि दोबारा फ़ोन करने की ज़रूरत नहीं है। मैंने उनकी बात सुन ली थी लेकिन अब मुझमें इतनी भी ताक़त नहीं थी कि उनका सामना कर सकूं। मैंने ख़ामोशी से उनके इस नियम को कि "किसी लड़के को तुम्हें फ़ोन करने की इजाज़त नहीं है" मान लिया था। हालांकि मैं मैनेजमेंट डिग्री ले रही थी, लेकिन यह नियम अभी भी लागू होता था। यह दकियानूसी था लेकिन मेरी मां ऐसी ही थीं। अगर यह आज के समय की बात होती तो शायद जोजेफ़ के मुझे दस टैक्स्ट मैसेज आ गए होते और मेरे माता-पिता को इसकी ख़बर भी न लगती। लेकिन उन दिनों तो टेलीफ़ोन भी पुश बटन वाले नहीं, डायलिंग वाले थे, इसलिए आज के समय की तुलना में एक-दूसरे से संपर्क साधने के तरीक़े बहुत ही सीमित थे।

वैसे भी, मेरी उससे बात करने की इच्छा भी नहीं थी। मैं उसे क्या बताती? कि मैं इसलिए घर पर हूं कि मुझे एक बेवजह का डर सता रहा है और मेरे पेट में हौल सा उठ रहा है जो दूर होने को तैयार ही नहीं है? यह बहुत बेवकूफ़ी भरी बात लग रही थी और मेरे मिज़ाज के एकदम उलट थी। जोजेफ़ को टालना आसान था और मैं इतनी परास्त हो गई थी कि आसान रास्ते के अलावा और कुछ लेने की मुझमें हिम्मत नहीं थी।

चौथे दिन भी जब मैं कॉलेज नहीं गई तो मैं जान गई थी कि कुछ तो गड़बड़ है। मेरे माता-पिता को भी इसका आभास हो रहा था। लेकिन हममें से कोई भी इसका सामना करने का इच्छुक नहीं था। हमें उम्मीद थी कि यह दौर निकल जाएगा।

शुक्रवार को डैड ने कहा, "देखो, अंकिता, तुम फ़िज़ीकली तो ठीक हो। ख़ुद को कॉलेज जाने के लिए तैयार करो। जब तुम अपने दोस्तों से मिलोगी, अपने कोर्स का काम करोगी तो तुम्हें बेहतर लगेगा। घर पर रहकर तुम बहुत कुछ खो रही हो। अब चार दिन हो चुके हैं। मेरी बात मानो और आज जाओ। कल और परसों फिर घर पर रह सकती हो। सोमवार को तुम एकदम भली-चंगी होगी।"

मुझे लगा कि उनकी बात में दम है। इसलिए अपने नियत समय पर मैंने किताबें उठाई और घर से निकल पड़ी। जब बस स्टॉप पर पहुंची तो

डर का वही दौरा फिर पड़ गया जैसा पहले पड़ा था। पिछली बार की तरह ही आज भी इसकी कोई तर्कसम्मत वजह नहीं थी। बाहर सब कुछ पहले जैसा ही था। यह वही बस स्टॉप था जहां से मैंने पहले भी बहुत बार बस पकड़ी थी। जब से कॉलेज शुरू हुआ था। मैं रोज़ाना इसी जगह आती थी। फिर भी आज यह वैसा नहीं लगा था। मैंने ख़ुद को समझाने की कोशिश की कि कुछ नहीं बदला है। लेकिन तर्क और समझबूझ की मेरे मन में पहले की सी जगह नहीं रही थी। मेरे आसपास का ट्रैफ़िक, लोग और अन्य चीज़ें हमेशा की तरह अपने सामान्य कामों में लगे थे। लेकिन मेरे लिए, दुनिया जैसे रुक गई थी। मैं डर के मारे सुन्न सी पड़ गई थी।

मेरे बदन से ठंडा पसीना फूट पड़ा। मेरी हथेलियां ठंडी पड़ गईं और एक बार फिर मुझे सांस नहीं आ रही थी। दस मिनट तक मैं बस स्टॉप पर बैठी अपने दिमाग़ में किसी किस्म की तरतीबी लाने की कोशिश करती रही। मेरे आसपास के अन्य यात्री सुखद रूप से मेरी आंतरिक हलचल से अनजान थे। उनके लिए सब कुछ सामान्य था और यह बस एक और आम सा दिन था। लेकिन मुझे यह दुनिया के अंत जैसा लग रहा था। आख़िरकार, स्तब्ध सी मैं किसी तरह घर की ओर चल दी। मेरे ताबड़तोड़ घंटी बजाने पर मां ने दरवाज़ा खोला।

“क्या हुआ? तुम ठीक तो हो?” उन्होंने पूछा। उनके चेहरे पर फ़िक्र साफ़ दिख रही थी। डैड काम के लिए निकल चुके थे। मां चिंतित दिखीं। वे मुझे आश्वस्त करना चाहती थीं कि मैं ठीक हूं।

मैं नहीं हो सकी।

मैं ठीक नहीं थी।

यह पहली बार था जब मुझे अहसास हुआ कि शायद कहीं कुछ ज़्यादा ही गड़बड़ है। मैं बुरी तरह मना रही थी कि यह जो भी गड़बड़ी है वह मेरे कॉलेज जाने से ठीक हो जाएगी।

“देखो, अंकिता। मज़बूत बनो। ये महज़ तुम्हारे दिमाग़ी ख़्याल हैं। अपने ख़्यालों को क़ाबू में करके तुम इससे बाहर निकल सकती हो,” मां ने कहा।

ओह, मैंने कितनी कोशिश की थी! मैं ख़ुद को इससे बाहर निकालना चाहती थी। मैंने तो चाहा था कि यह दूर हो जाए। मैंने सुखद बातें सोचने की कोशिश की थी। मैंने अपने विशाल प्राणियों और संगीतात्मक खुरों वाले बौनों को वापस बुलाने की कोशिश की थी। उन्होंने मेरी मदद के लिए आने से इंकार कर दिया। अब बचा था तो बस एक विशाल शून्य और कालापन।

जब डैड काम से वापस आए, तो मैंने सुना कि मां उन्हें बता रही हैं कि सुबह को क्या हुआ था। डैड फ़ौरन मेरे कमरे में आए और उन्होंने मुझसे बात करने की कोशिश की। उन्होंने मुझसे पूछा कि मैं कैसी हूं।

मुझे महसूस हुआ जैसे मैंने किसी तरह से उन्हें निराश कर दिया है। मैं रोने लगी। मैं जैसे अपने आंसुओं को रोक ही नहीं पा रही थी।

उस समय न मेरे माता-पिता जानते थे और न ही मैं जानती थी कि यह उसके कहीं बड़ी कोई बात है जिसकी हममें से किसी ने भी कल्पना की होगी, अंदाज़ा या अनुमान लगाया होगा।

यह एक तीखे मोड़, एक दर्दनाक भटकाव, एक ऐसे सफ़र की शुरुआत थी जो मुझे अपनी मंज़िल से पूरी तरह से दूर, किसी शिखर के कगार पर ला खड़ा करेगा। एक ऐसा सफ़र जो लगभग मेरी ज़िंदगी ले लेगा, मुझे पूरी तरह से नष्ट कर देगा, मेरे अंदर से जीवन-बल को चूस लेगा और फिर मुझे ख़ाली खोल की तरह दूर फेंक देगा।

और सबसे भयंकर बात तो यह थी कि यह अभी शुरू ही हुआ था।

16

स्याही के धब्बे

जब मैं आंखों में सपने, दिल में उम्मीदें लिए, प्यार और उन दूसरी छोटी-छोटी बातों को रौंदते हुए मुंबई आई थी जिनमें उस उम्र के युवा लड़के-लड़कियां आमतौर पर लिप्त रहते हैं, तो मुझे यह अंदेशा या अनुमान क़तई नहीं था कि मैं ख़ुद को किसी मनोचिकित्सक की क्लीनिक के दरवाज़े पर खड़ा पाऊंगी।

मैंने अपने माता-पिता को यह आश्वासन देकर कि मैं ठीक हूं, ख़ुद को, साथ ही अपने माता-पिता को भी मूर्ख बनाने की कोशिश की थी। मैंने उनसे कहा था कि मैं कुछ दिन में ठीक हो जाऊंगी। उन्होंने मुझ पर विश्वास किया था। मैंने भी ख़ुद पर विश्वास किया था। आख़िर यह बस वही तो था जो मैं महसूस करती थी और यह सब मेरे दिमाग़ में था। मुझे लगता था कि मैं बहुत मज़बूत हूं और इसे दूर हटा दूंगी। मैंने ख़ुद को मजबूर करने की पूरी कोशिश की थी। लेकिन हालात बस बिगड़ते ही गए।

मैं एक हफ़्ते और घर पर रही और तब तक मेरे मन में यह स्पष्ट हो गया था कि मैं अपनी पढ़ाई पर वापस जाने की हालत में क़तई नहीं थी। मुझे जो अहसास हुआ था, इसके बारे में मैंने अपने माता-पिता को नहीं बताया था। उन्हें पता नहीं था, घबराहट का वही दौरा जो पहले पड़ा था, दो बार और तब पड़ गया था जब मैंने अपने कॉलेज वापस जाने के बारे में सोचने की कोशिश की थी। इसलिए मैंने इसे दरकिनार कर दिया और इस बारे में सोचना ही बंद कर दिया। मैं नहीं चाहती थी ये डरावने दौरे फिर से पड़ें। मेरे माता-पिता को समझ नहीं आ रहा था कि क्या करें। वे बौखला गए थे। जब उन्होंने मुझसे पूछा था कि मैं पढ़ाई कब से फिर शुरू करूंगी तो मैंने उनसे कहा कि मुझे बस कुछ दिन और दें।

मेरे पिता ने कॉलेज फ़ोन किया और डीन से बात की। मुझे नहीं पता उन्होंने उनसे क्या कहा। मैं जानना भी नहीं चाहती थी। ऐसा लग रहा था जैसे मैं कॉलेज और उससे जुड़ी और किसी भी चीज़ को बंद कर देना चाहती थी।

स्याहपन अब एक स्थायी चीज़ हो गया था। यह हर समय मुझे घेरे रहता था, हटने को तैयार ही नहीं होता था। शून्य स्थायी चीज़ हो गया था। ऐसा लगता था जैसे मैं अंदर से मर गई थी। पहले तो मुझे दर्द का एक गहरा अहसास होता था। लेकिन अब लगता था कि उसकी जगह एक अथाह गर्त ने ले ली है। कुछ हफ़्ते पहले मैं जैसी थी, अब उसकी एकदम उलट हो गई थी। अब मुझे दौड़ने की कोई चाह नहीं होती थी। अपनी

मैनेजमेंट की किताबों में मुझे कोई दिलचस्पी महसूस नहीं होती थी। मुझे किसी चीज़ में दिलचस्पी महसूस नहीं होती थी। मैं बस अपने बेड पर लेटे रहना और उस शून्य में और गहरे उतर जाना चाहती थी जो कि अब मेरा मन था। मैं उन कविताओं को देखती जो मैंने कुछ समय पहले लिखी थीं। मैं अपने भीतर कुछ जोश जगाने की, अपने भीतर किसी क़िस्म के जज़्बात पैदा करने की, ख़ुद को वह बनने की ओर धकेलने की कोशिश करती जो मैं हुआ करती थी। लेकिन नाकाम रहती। बुरी तरह से। न कोई शब्द आते थे। न विचार आते थे। फंस जाने के लिए यह एक भयानक जगह थी। मैं वहां नहीं होना चाहती थी। लेकिन कोई बचाव नज़र नहीं आता था।

आख़री कील तब लगी जब मैंने पढ़ने की कोशिश की। मैंने अपनी मेज़ पर रखी एक किताब उठाई जिसे मैंने बहुत समय पहले, जब मैं कोचीन में थी, पढ़ने के इरादे से ख़रीदा था। आर्थर हेली की होटल। मैंने उसे खोला और पढ़ने की कोशिश की। मुझे एक ज़ोरदार झटका लगा। मुझे यह जानकर बड़ा धक्का लगा था कि जब तक मैं वाक्य के अंत पर पहुंचती थी, मुझे याद ही नहीं रहता था कि उसके शुरू में क्या था। मैंने फिर कोशिश की। फिर एक बार और कोशिश की। और फिर से। मुझे इसपे यक़ीन ही नहीं हो रहा था। शब्दों के साथ-साथ ऐसा लगता था जैसे मैं उन्हें पढ़ने और समझने की क्षमता भी खो बैठी हूं।

मैंने ख़ुद को समझाना चाहा कि इसकी वजह यह है कि मेरा ध्यान भटका हुआ है और बेशक मैं पढ़ सकती हूं। मैंने कितनी सारी किताबें चट की हैं, वे भी इससे कहीं ज़्यादा मोटी-मोटी। इसके अलावा, यह तो ऐसी चीज़ थी जिसे पढ़ने में भी मुझे मज़ा आता। मैं चाहे जो करती, जितनी चाहे कोशिश करती, लेकिन पढ़ ही नहीं पा रही थी। जितना मैं कोशिश करती, उतना ही नाकाम रहती।

फिर, मैंने अपने रंगीन कोड वाले नोट्स की फ़ाइल खोली जिसे मैंने बहुत जतन से बनाया था। मैंने उन्हें पढ़ने की कोशिश की। लेकिन एक पैराग्राफ़ से आगे नहीं पढ़ पाई। मुझे कुछ समझ नहीं आ रहा था कि उनका मतलब क्या है। मैं एक भी बात समझे बिना एक ही वाक्य को बार-बार पढ़े जा रही थी। ऐसा लग रहा था जैसे मेरा दिमाग़ बहुत ही कम समय, शायद कुछ सैकंडों के लिए केवल एक ही शब्द पर फ़ोकस कर पा रहा था, फिर अगले ही सैकंड वह उसे भूल जाता था। जैसे ब्लैकबोर्ड पर चॉक से लिखे शब्दों को पोंछ दिया जाता है, उसी तरह शब्द मेरे दिमाग़ से भी ग़ायब होते जा रहे थे। लगता था जैसे उन पर मेरा कोई नियंत्रण ही न रहा हो। फिर मैंने कोटलर की किताब खोली और मेरा जी लौटने लगा। मैंने मार्केटिंग की शब्दावलियों को देखा और मुझे उल्टी सी आने लगी। दिल डूबने का वह अहसास जो अब स्थायी बन चुका था, मुझे डुबोते हुए

गहराने लगा था। मैंने फिर से अपनी उंगलियां कसकर बंद कर ली और मेरे नाख़ून गहरे धंस गए।

मैंने एक कोशिश और की। मगर यह बेमानी था। यह ऐसा था जैसे किसी ने मेरे दिमाग़ के किसी ऐसे अहम हिस्से को बंद कर दिया हो जो पढ़ने, समझने और सोचने तक को नियंत्रित करता था। मैं एक टूटे खिलौने जैसा महसूस कर रही थी। मुझे बहुत गहरी निराशा महसूस हो रही थी। उस परिस्थिति की निराशा जिसमें मैं थी इतनी ज़्यादा थी कि उसे बर्दाश्त करना नामुमकिन हो रहा था। मुझे समझ नहीं आ रहा था कि क्या करूं। वह ज़िंदगी खो चुकी थी जिसे मैं जानती थी, और अपनी जगह उसने मुझे यह मज़ाक थमा दिया था। वह सब कुछ खो गया था जिसे मैं सहज ही लेती आई थी। यह असहनीय था। घोर हताशा की झोंक में मैंने एक झटके में अपने नोट्स वाली फ़ाइल, कोटलर की किताब और कुछ दूसरे काग़ज़ अपनी मेज़ से नीचे फेंक दिए। एक रीडिंग लैंप को, जिससे नीचे गिरते हुए किताब टकरा गई थी, अपने साथ लेते हुए वे ज़ोरदार आवाज़ के साथ नीचे गिरे। लैंप का बल्ब टूट गया और मुझे लगा जैसे वह मेरी ज़िंदगी था। शोर सुनकर मेरे माता-पिता दौड़ते हुए मेरे कमरे में आ गए।

“क्या हुआ?” मां ने पूछा।

“तुम तो ठीक हो, अंकिता?” डैड ने पूछा।

मैं इतनी शर्मिंदा थी कि मान भी नहीं पाई कि मैंने उन चीज़ों को ज़मीन पर फेंका था। मैं जानती थी कि मैं किसी भी तरह अपने माता-पिता को यह नहीं समझा सकती कि अब मैं पढ़ नहीं पा रही हूं, बल्कि जो मैं पढ़ती हूं उसे समझ ही नहीं पा रही। मैं ख़ुद ही यह नहीं समझ पा रही थी। फिर मैं अपने माता-पिता से इसे समझने की अपेक्षा कैसे कर सकती थी? इस डरावनी नई चीज़ के बारे में मैं उन्हें क्या बताती जिसका मुझे उसी वक़्त पता लगा था? मैं उन्हें और ज़्यादा परेशान ही कर देती। अभी भी, वे मेरे लिए बहुत फ़िक्रमंद थे। अब भी जब वे बोलते थे तो मैं उनके चेहरों पर फैली चिंता और परेशानी को देख सकती थी।

“मेज़ ठीक करते में लैंप फिसल गया,” मैंने झूठ बोल दिया।

“तुम्हें ध्यान रखना चाहिए। देखो किरचें सारे में फैल गई हैं,” मां ने कहा।

मैंने कुछ नहीं कहा और किरचें बीनने लगी। मेरे माता-पिता ने मेरी कही बात पर यकीन कर लिया था और वे मुझे अकेला छोड़ गए।

उनके जाने के बाद मुझे लगा जैसे कमरा मुझे भींचे डाल रहा है।

मैं हताश-निराश महसूस कर रही हूं। मैं अनुपयोगी महसूस कर रही हूं। मुझे नहीं पता कि मेरे साथ हो क्या रहा है और मुझे ऐसा क्यों महसूस हो

रहा है। वास्तव में इसकी कोई वजह नहीं है। मैंने बहुत कोशिश की है कि इन विचारों को दूर कर दूँ। मैं नाकाम रही हूं। अब मैं यह एमबीए नहीं करना चाहती। मैं दोबारा जोजेफ़, छाया और जिग्ना को देखने का ख़्याल भी बर्दाश्त नहीं कर सकती। अपने सहपाठियों से मिलने के ख़्याल से ही मेरा जी लौटने लगता है। प्रोफ़ेसर, कोर्स की पढ़ाई, केस स्टडीज़—मैं उन्हें दोबारा कभी नहीं देखना चाहती हूं। लेकिन ये सब बातें मैं अपने माता-पिता को भी नहीं बताना चाहती। उन्हें मुझे लेकर बहुत उम्मीदें हैं। उन्हें मुझ पर बहुत नाज़ है और अगर मैं एमबीए छोड़ देती हूं तो वास्तव में वे उन लोगों को क्या मुंह दिखाएंगे जिनके सामने उन्होंने इतने गर्व से मेरी उपलब्धियों की डींगें हांकी हैं।

मेरा गला सूख रहा है। मैं अपने हाथों में सिर पकड़कर बैठ जाती हूं। मैं नहीं जानती कि कितने घंटे मैं ऐसे ही बैठी रहती हूं। मुझे लगता है कि अब मैं और जारी नहीं रख सकती। जीने के लिए अब कुछ नहीं बचा है। अब कुछ नहीं बचा है जिसकी आस लगाई जाए। मैं एक पैन उठाती हूं और जो मैं महसूस कर रही हूं उसे लिखने की कोशिश करती हूं। लेकिन शब्द भी जैसे मेरा साथ छोड़ गए हैं। कुछ नहीं लिखा जाता। मैं लिखने में भी असमर्थ हूं। ठीक वैसे ही जैसे मैं पढ़ने में असमर्थ हूं। मैं जोर से काग़ज़ पर पैन घिसती हूं। गोल-गोल, गोल-गोल। मैं पैन घिसती हूं और उसकी नोक को ज़ोर से दबाती हूं जब तक कि काग़ज़ फट नहीं जाता। फिर मैं उसे एक ओर फेंक देती हूं और शून्य में तकती निश्चल बैठी रहती हूं।

यह डरावना है, यह शब्दहीन दुनिया, यह अंधकार और शून्य से भरी दुनिया। मैं अब यहां नहीं रहना चाहती। मैं चाहती हूं यह थम जाए।

मुझे फिर से पेपर काटने वाले चाकू की याद आती है। मैं उसे उठाती हूं और इस बार मैं ख़ुद को बहुत बुरी तरह से चोट पहुंचाना चाहती हूं। मैं अपने भीतर के इस दर्द को मार डालना चाहती हूं जो ख़त्म होने को राज़ी ही नहीं है। मैं बेहतर महसूस करना चाहती हूं। मैं इस दर्द को एक भौतिक रूप देना चाहती हूं।

मैं इस चाकू को लेकर बाथरूम में चली गई होऊंगी।

अगली बात जो मुझे याद है वह डैड की मेरे हाथ से इसे लेने की कोशिश करना है। मैंने अपनी पूरी ताक़त से प्रतिरोध किया और बाएं हाथ से उन्हें दूर धकेलने की कोशिश करते हुए मैंने अपने दाएं हाथ को लहराया जिसमें चाकू था। चाकू ने मेरी बाईं बांह को पीछे से लेकर लगभग बीच के हिस्से तक तिरछा काटते हुए कलाई के पास तक ज़ख़्मी कर दिया था। शोर सुनकर अपने बेडरूम से भागी चली आई मां ख़ून देखकर सकते में आ गई थीं।

“तुम आख़िर करना क्या चाह रही थीं?” डैड चिल्लाए। उनकी आवाज़ में सदमा, दर्द और दुख था।

“हे भगवान, हे भगवान। इसे क्या हुआ?” मां बार-बार दोहरा रही थीं। वे रो रही थीं।

मैं अविचलित थी। विचित्र रूप से मुझे थोड़ी सी राहत मिली थी कि दर्द का केंद्र अब कहीं और शिफ़्ट हो गया है। डैड ने मेरी बांह के ज़ख़्म पर एस्ट्रिंजेंट लगाया और ज़ख़्म को रूई से ढक दिया। ख़ून रोकने के लिए उन्होंने उसके चारों ओर क्रेप बैंडेज भी बांध दी।

उस रात जब मैं बिस्तर पर लेटी, तो उस रोज़ जितना अकेलापन मैंने कभी महसूस नहीं किया था, नींद अभी भी मुझसे दूर थी। उसके बाद मेरे माता-पिता मुझे अकेला नहीं छोड़ते थे। वे बारी-बारी से मुझ पर निगाह रखते। मेरे लिए फ़िक्र की वजह से वे ऐसा करते थे। वे वाक़ई चिंतित थे। लेकिन मैं क़ैदी सा महसूस करती थी। मैं ख़ुद को जाल में फंसा और डरा हुआ महसूस करती थी। मैं नहीं चाहती थी कि मुझ पर इस तरह निगाह रखी जाए। इस तरह मुझे लगता कि सांस लेना भी मुश्किल हो रहा है। मेरा तो खाने का भी दिल नहीं करता था लेकिन मेरे माता-पिता ज़बर्दस्ती खिलाते थे। बस उन्हें संतुष्ट करने के लिए मैं खा लेती थी, इतना थोड़ा सा कि बस मेरा शरीर चलता रहे। मैं चाहती थी कि सब कुछ बस ख़त्म हो जाए। मैं अब इस हालत में नहीं रहना चाहती थी। मैं थक गई थी। मैं हार गई थी। मैं टूट भी गई थी।

आख़िरकार चौथी रात को मैंने उनसे वादा किया कि मैं फिर कभी ऐसा नहीं करूंगी। डैड चाहते थे कि मैं उनके साथ साइकियाट्रिस्ट के पास चलने को तैयार हो जाऊं। मैं इतनी परास्त थी कि मैंने बहस नहीं की और इस तरह उस सुबह अपनी बाईं बांह के ज़ख़्म को छिपाने के लिए पूरी आस्तीन की क़मीज़ पहने हुए मैंने ख़ुद को क्लीनिक के बाहर पाया।

मैं बलि दिए जाने के इंतज़ार में खड़े मेमने की तरह महसूस कर रही थी। मुझे बिल्डिंग का रूप-रंग ही पसंद नहीं आया था। क्लीनिक तीन मंज़िला इमारत के ग्राउंड फ़्लोर पर थी, जिसे पेंट किए जाने की सख़्त ज़रूरत महसूस हो रही थी। डैड ने समय ले रखा था और मां भी हमारे साथ आई थीं।

डॉक्टर मुक्ता नागराज नाम की एक महिला थीं जो बहुत युवा लग रही थीं। उन्होंने साड़ी पहनी हुई थी और उनके छोटे-छोटे बाल सुघड़ता से संवरे हुए थे। लगता था कि उन्हें अपनी अनेक शैक्षिक योग्यताओं पर बहुत गर्व था क्योंकि उनके पीछे वाली दीवार दुनिया भर के विभिन्न कॉलेजों की विभिन्न मैडिकल डिग्रियों से सजी हुई थी। मुझे उनसे मिलने में ज़रा भी दिलचस्पी नहीं थी। मैं तो बस अपने माता-पिता की ख़ातिर आ गई थी।

“हैलो, गुड मॉर्निंग। तुम अंकिता हो, है ना?” उन्होंने मेज़ पर अपने सामने खुली रखी अपनी डायरी में दर्ज़ मरीजों की लिस्ट पर नज़र डालते हुए कहा।

मैंने जवाब नहीं दिया। उनका बर्ताव नक़ली था, उनकी मुस्कुराहट पेशेवराना थी और ऐसा मालूम देता था जैसे कि उन्हें असलियत में फ़िक्र हो। लेकिन मैं इसके पार देख सकती थी। मुझे उनकी सूरत से नफ़रत हो रही थी। डैड ने उन्हें बताया कि हम हाल ही में कोचीन से आए हैं। उन्होंने बताया कि कैसे मुंबई के सबसे ज्यादा नामचीन मैनेजमेंट स्कूल में मेरा दाख़िला हो गया था। उन्होंने उन्हें बताया कि मैं शैक्षिक स्तर पर कितनी ज़हीन थी, कैसे मैं चुनाव जीती थी। फिर उन्होंने बताया कि कैसे मैं मैनेजमेंट कोर्स में भी अच्छा प्रदर्शन कर रही थी लेकिन अब कैसे मैं वहां वापस जाने में हिचकिचा रही थी। मैं शुक्रगुज़ार थी कि उन्होंने उस चाकू वाली घटना का जिक्र नहीं किया।

वे ध्यान से सुनती रहीं और फिर उन्होंने मेरे माता-पिता से कहा कि वे मुझसे अकेले में बात करना चाहती हैं। उन्होंने कहा कि वे बाहर इंतज़ार करेंगे।

उन्होंने मुझे देखा और मुस्कुराईं।

मैंने अड़ियलपन से उन्हें देखा।

“तुम मेरे कुछ सवालों का जवाब दे सकती हो, अंकिता?”

मैं तो तुझे इतनी ज़ोर से मारना चाहती हूं कि तेरे चेहरे की यह हंसी हमेशा के लिए ग़ायब हो जाए।

“हां।”

“तुम्हें पिछले दिनों ठीक से नींद आती रही है?”

तुझे इससे क्या मतलब है कमीनी?

“पहले जितनी अच्छी नहीं।”

वे मुझसे अंतहीन सवाल करती रहीं। क्या मैं ठीक से खा रही थी? क्या मुझे कोर्स में अच्छा लग रहा था? मुझे और किन चीज़ों में दिलचस्पी थी? मुझे कोचीन छोड़कर आना कैसा लगा? क्या मैं पुराने दिनों को मिस करती थी? अगर मुझे कोचीन वापस जाने का मौक़ा मिले तो क्या मैं जाना चाहूंगी? मुंबई की ट्रेनों में आवाजाही मुझे कैसी लगती थी? क्या एक छोटे शहर से बड़े शहर में आना बहुत भारी बदलाव था?

मैंने हां-ना में जवाब दिया। मुझे गुस्सा आ रहा था कि मेरी ज़िंदगी की इस तरह बखिया उधेड़ी जा रही है।

फिर उन्होंने कुछ ऐसा पूछा जिसका मैं हां-ना में जवाब नहीं दे सकती थी।

“अगर एतराज़ न हो तो क्या तुम मुझे बताओगी कि क्या तुम्हारा किसी के साथ प्रेम संबंध था?”

एक मर गया, एक मेरे प्यार में दीवाना हैं और एक इस समय हैरान-परेशान होगा कि हो क्या रहा है और वह मुझसे संपर्क क्यों नहीं कर पा रहा और वह मुझसे बात करने को बेताब होगा।

“नहीं,” मैंने झूठ बोल दिया। किसी भी हालत में मैं इस नक़ली हंसी हंसती, मुझे नीचा दिखाती औरत को अपने जीवन की कहानी नहीं सुनाने वाली थी। ये करेंगी क्या? मुझे सलाह देंगी और सब कुछ ठीक हो जाएगा? मुझे तुरत-फुरत अच्छा लगने लगेगा और मैं अपने कोर्स में वापस चली जाऊंगी?

उन्होंने मुझे कोई सलाह दी ही नहीं। उन्होंने इससे भी बुरा काम किया। उन्होंने मुझसे पूछा कि क्या मैं कुछ मनोवैज्ञानिक टैस्ट दे सकती हूं। उन्होंने कहा कि इससे उन्हें अपने विश्लेषण में मदद मिलेगी। मैंने मना करने का सोचा। फिर मैंने बाहर उम्मीद और फ़िक्र के साथ इंतज़ार करते अपने माता-पिता के बारे में सोचा। इसलिए मैं तैयार हो गई।

“ठीक है,” उन्होंने कहा। “मैं तुम्हें कुछ तस्वीरें दिखाऊंगी और मैं चाहूंगी कि तुम मुझे बताओ कि उन्हें देखते ही तुमने उन्हें किस चीज़ से जोड़ा। उनके बारे में बहुत ज़्यादा मत सोचना। बस जैसे ही तुम उन्हें देखो तो मुझे बता देना कि तुम्हारे ख़्याल में वे क्या हो सकती हैं। जो तुम कहोगी मैं उसे लिखती जाऊंगी। ये मेरे नोट्स के लिए हैं। उनके बारे में चिंता मत करना।” उन्होंने कहा।

मैंने हामी भरी।

वे फिर से मुस्कुराईं।

मेरे पोर-पोर से पिघले लावा की तरह नफ़रत फूट रही थी लेकिन मैंने उसे छिपा लिया। मगर मैं उनके घमंडी, बड़प्पन से भरे चेहरे को देखकर मुस्कुरा नहीं सकी।

उन्होंने पहला कार्ड लिया, जो करीब ए4 आकार के काग़ज का था। उस पर एक स्याही का धब्बा था, एक बहुत ही एब्सट्रैक्ट सा काला और सफ़ेद स्याही का धब्बा और इसे उन्होंने मुझे दिखाया। उन्होंने मुझसे पूछा कि मैं क्या देख रही हूं।

मैं उसमें पचासों चीज़ें देख सकती थी लेकिन यह इस पर निर्भर करता था कि कौन सा सिरा ऊपर है और आप इसे किस ओर से देख रहे हैं।

“यह किस ओर से रखा गया है?” मैंने पूछा।

“किसी भी ओर से, डियर, बस यह बताओ कि तुम क्या देख रही हो!” वे अपनी आवाज़ से कृपाभाव को अलग नहीं रख पाईं।

मुझे अपना पूरा आत्मनियंत्रण लगाना पड़ा कि उनके हाथ से वह कार्ड खींचकर उसे बार-बार उनके चेहरे पर न दे मारूं।

इसके बजाय मैंने कार्ड को देखा और तुरंत कम से कम दस ऐसी चीज़ें बता डालीं जो मैं उसमें देख सकती थी। उन्होंने वे सब लिख लीं। मैंने उनसे पूछा कि क्या वे चाहती हैं कि मैं और भी बताऊं। मुझे यक़ीन था कि इस बार मैं अपनी आवाज़ से श्रेष्ठता का भाव अलग नहीं रख पाई थी। अपनी रचनात्मक क्षमता और कल्पना शक्ति पर मुझे बहुत गर्व महसूस हो रहा था।

उन्होंने कहा इतना काफ़ी है।

इतने दिनों में पहली बार मैं मुस्कुराई।

फिर और कार्डों के साथ उन्होंने इस परीक्षण को जारी रखा। कुल मिलाकर वे दस थे। मुझे इसमें मज़ा आने लगा था।

फिर यह ख़त्म हो गया।

मेरे जवाबों का अध्ययन करने के लिए उन्होंने मुझसे पांच मिनट का समय मांगा।

उन्होंने क़रीब बारह मिनट लगाए।

फिर उन्होंने मेरे माता-पिता को अंदर बुलाया।

“मैंने इनके जवाबों का अध्ययन किया है, और जो इन्होंने मुझे बताया उसका गहराई से विश्लेषण किया है। मैंने उस टैस्ट का भी विश्लेषण कर लिया है जो इन्होंने अभी-अभी दिया था।”

मेरे माता-पिता ने कृतज्ञता से सिर हिलाया, वे हर उस बात को सुनने के लिए बेचैन थे जो वे कहतीं, उनकी बुद्धि के हर उस नन्हे कतरे को पाने के लिए आतुर थे जो इस बात पर कुछ रोशनी डाल पाता कि उनकी बेटी, उनकी आंखों का तारा इस तरह से व्यवहार क्यों कर रही है।

“ये गंभीर अवसाद से पीड़ित हैं। हमें तुरंत इनकी दवाइयां शुरू करनी होंगी। उनसे इन्हें बहुत मदद मिलेगी। वर्ना इनकी हालत और बिगड़ जाएगी,” उन्होंने ऐलान किया।

फिर उन्होंने कुछ ऐसी दवाओं के नामों वाला नुस्खा लिखा जिनके बारे में मैंने पहले कभी सुना भी नहीं था।

मेरे माता-पिता ने इस तरह उसे उनके हाथ से लिया मानो वह कोई अनमोल रत्न हो।

“इनसे इन्हें ठीक से सोने में मदद मिलेगी और इनका उदास मन भी नियंत्रित होगा,” उन्होंने कहा।

उन्होंने मेरे माता-पिता से दो हफ़्ते बाद दोबारा आने को कहा, तब वे फिर से मेरा आकलन करेंगी और ज़रूरी हुआ तो दवाएं एडजस्ट करेंगी। फिर हमें जाने को कह दिया गया और मैंने देखा कि वे तुरंत अपने अगले अपॉइंटमेंट पर नज़र डाल रही हैं।

डैड एक कैमिस्ट की दुकान पर रुके और उन्होंने डॉ. मुक्ता की बताई दवाएं ख़रीद लीं।

“चिंता मत करो, अंकिता,” कार में आते हुए उन्होंने कहा। “सब ठीक हो जाएगा। तुम बहुत जल्दी ठीक हो जाओगी।” उनकी आवाज़ में भरी आशा ने मेरा दिल टूक-टूक कर दिया।

उसी समय मैंने रोना शुरू कर दिया।

घर पहुंचने तक भी मेरा रोना बंद नहीं हुआ था।

17

रोशनी बुझ गई

मेरी हालत लगातार ख़राब होती गई। डॉक्टर ने जो दवाएं लिखी थीं, उनसे ज़रा भी फ़ायदा होता नहीं लग रहा था। मेरे माता-पिता को यक़ीन था कि वे काम करेंगी और मैं बस ठीक होने ही वाली हूं। दुख की बात यह थी कि इलाज़ उस छलिया लॉटरी की तरह था जिसे आशा से भरे लोग हफ़्ते दर हफ़्ते कोई कारून का ख़ज़ाना हाथ लगने की उम्मीद में ख़रीदते रहते हैं। लेकिन वे अपनी नाकामी से उतने ही अनजान थे जितना कि मैं थी।

दवाएं दिन में दो बार लेनी थीं। एक छोटी सी पीली और एक थोड़ी बड़ी सफ़ेद गोली थी। मुझे जरा भी इल्म नहीं था कि वे किसलिए हैं और उनके नाम क्या हैं। लेकिन मेरे माता-पिता ने अपनी सारी उम्मीदें और मेरे प्रति अपनी आकांक्षाएं इन दो नन्ही-नन्ही गोलियों पर लगा रखी थीं जो चमत्कारिक, या कहें चिकित्सकीय, ढंग से मेरी ज़िंदगी की कायापलट करने का दावा करती थीं।

रोज़ाना सुबह डैड हाथ में ये गोलियां और पानी का गिलास लेकर मेरे बिस्तर के पैताने के पास खड़े होते थे। लगभग रोज़ाना ही वही कहानी दोहराई जाती थी।

“डैड, मैं वाक़ई ये गोलियां नहीं लेना चाहती। इनसे मुझे सुस्ती आती है,” मैं कहती।

“अंकिता, तुम्हारे दिमाग़ और शरीर को आराम चाहिए। अगर तुम दवा नहीं लोगी तो ठीक कैसे होगी? बस कुछ समय की बात है। अब अच्छी लड़की की तरह ये ले लो,” वे धीरज के साथ मुझे मनाते।

फिर मैं एक साथ दोनों को निगल लेती और वे ख़ुश हो जाते।

मुझे कुछ-कुछ क़ैद में होने का सा अहसास होता था, लेकिन वह एकमात्र जगह जहां मैं फंसी हुई थी, मेरा अपना दिमाग़ था। सबसे बुरी बात तो यह थी कि इससे बच निकलने का कोई रास्ता भी नहीं था।

दवाओं से मुझे नींद आती थी। मैं जब चाहती सो जाती और जब चाहती उठ जाती। असल में भयानक चीज़ तो ख़ालीपन था। मेरे मन में बस कोई विचार नहीं थे ही। सब बस ख़ाली था। यह एक अंतहीन शून्य था, एक विशाल शून्य। पहले, मैं उन शानदार बिंबों में शरण लिया करती थी जिन्हें मैं बिना किसी कोशिश के गढ़ लिया करती थी। मैं जब चाहती तब लिख सकती थी। मैं अपने जज़्बात और अपनी भावनाओं को शब्दों में ढाल सकती थी। मेरे पास अपनी कविता, अपनी तस्वीरें और शब्द थे।

लेकिन यह भयानक और पूरी तरह अजनबी स्थिति जिसमें मैं ख़ुद को पा रही थी, कुछ ऐसी चीज़ थी जिसे मैं बर्दाश्त नहीं कर पा रही थी। इसकी पीड़ा मुझे रोने, और अपने दुखों को अपने रोने में निकाल देने की इच्छा करने पर मजबूर करती थी लेकिन दुख भी मुझसे दूर हो गया था। मैं सुन्न और बेसुध थी। मैं कुछ महसूस करने को छटपटा रही थी। मैं दर्द महसूस करने को छटपटा रही थी। मैं रोने को छटपटा रही थी। मैं सोचने की छटपटा रही थी। मैं छटपटा रही थी और बस छटपटा रही थी। यह छटपटाहट छाया की तरह मेरी सतत साथी बन गई थी। इससे कोई छुटकारा नहीं था। यह कभी दूर नहीं जाती थी और मेरे आंख खोलने के साथ ही यह सामने आ खड़ी होती थी, मुझे कोंचती, सताती, ताने मारती और मेरा मज़ाक़ उड़ाती। मैं इससे दूर भाग जाना चाहती थी। मैं चैन चाहती थी। मैं बच निकलना चाहती थी। मैं बस एक बार और महसूस करने में समर्थ होना चाहती थी।

रात और दिन एक-दूसरे में घुलमिल गए थे। मैं रोशनी नहीं सह पाती थी और अपने कमरे की खिड़कियां बंद करके परदे डाले रखती थी। अगर मेरे माता-पिता कभी ज़रा सी भी खिड़की खोलने की कोशिश करते तो मैं चीख़-चीख़कर उनसे उसे बंद रखने को कहती। मेरे अंदर हर उस चीज़ के लिए लगाव पनपने लगा था जो अंधेरी होती थी। जगे होने के समय में भी जिंदा होना घोर पीड़ा की बात थी। दर्द भयानक था। वह सब कुछ जो कभी लुभावना और दिलचस्प था, अब उबाऊ लगता था। कभी किसी वक़्त जो बहुत सहजता से हो जाया करता था, उसे करने में अब ज़बर्दस्त कोशिश लगती थी। उठना और बिस्तर से निकलना भी अपने आप में एक घोर दंड था। मैं अपने मन के अंधेरे और कपंनी के लिए ख़ालीपन के साथ अंधेरे में लेटे रहना ही पसंद करती थी। मैं चाहती थी कि मुझे अकेला छोड़ दिया जाए। अगर मेरे माता-पिता मेरे साथ बैठने की कोशिश करते तो मैं उत्तेजित और नाराज़ हो जाती और उनसे जाने को और मुझे शांति से छोड़ देने को कहती। उन्हें समझ नहीं आता था कि क्या करें और इसलिए ज़्यादातर वे मुझे अकेला छोड़ जाते थे, और बस यही देखने को अंदर आते थे कि मैंने अपनी दवाइयां ले ली हैं या नहीं।

***

मैंने अपनी मेज़ पर सफाई से लगी किताबों को देखा और मेरा जी मिचलाने लगा। पता नहीं यह दवाइयों का असर था या मेरी दिमाग़ी हालत, मैं नहीं जानती, लेकिन मैं टॉयलेट में गई और मुझे ज़बर्दस्त उल्टी हो गई। मुझे समय का कोई अंदाज़ा नहीं था। वैसे भी मेरे कमरे में हमेशा अंधेरा ही रहता था। मैं शायद घंटों टॉयलेट में कमोड के पास जब-तब उल्टी करती बैठी रही होऊंगी। आख़िरकार थककर इतनी चूर हो जाने पर कि खड़े होना भी मेरे लिए मुश्किल हो गया, मैं गठरी बनकर वहीं बाथरूम के फ़र्श

पर सो गई। बिखरे बालों, लाल आंखों और मुंह पर जमी सूखी उल्टी के साथ मैं बड़ी बेतरतीब लग रही होऊंगी। थोड़ी सी उल्टी मेरे कपड़ों पर भी थी। मां ने मुझे जगाया था।

“हे भगवान! उठो, उठो,” वे मेरे कधे पकड़कर मुझे हिला रही थीं। “तुम यहां कब से लेटी हुई हो?”

मैंने बड़ी मुश्किल से आंखें खोली। रोशनी उनमें चुभी और तीखी सुइयों की तरह आंखों मैं चुभ रही रोशनी से बचने के लिए मैंने अपनी आंखें मिचमिचा लीं। मुझे समय का कोई अंदाज़ा नहीं था। शायद मैं सारी रात बाथरूम के फ़र्श पर सोती रही थी। मुझे पहले से ज़्यादा मितली हो रही थी। लेकिन मेरा पेट ख़ाली था और मैं कुछ और नहीं उलट सकती थी। कड़वाहट भरी मितली मेरे सारे बदन को तोड़ती रही जबकि मैं उसे रोकने की कोशिश कर रही थी।

“अपना चेहरा धो लो और कुल्ला कर लो, तो तुम्हें बेहतर लगेगा,” मां ने कहा।

मैंने वही किया जैसा उन्होंने कहा था और जाकर फिर से अपने कमरे में लेट गई।

मैं एकदम अनुपयोगी महसूस कर रही थी। अब छोटे-छोटे काम करना भी नामुमकिन लगने लगा था। मैं ख़ुद को मूर्ख, नादान और एकदम अयोग्य पा रही थी। मैं सुबह से रात तक बस अपने बिस्तर पर लेटे रहने के अलावा जैसे कुछ नहीं कर सकती थी। यही एकमात्र काम था जिसे करने में मैं सक्षम थी। ऐसा लगता था जैसे मेरे भीतर की रोशनी बुझ गई हो। यह एक अंधियारी सुरंग थी और मुझे कुछ पता नहीं था कि यह कब ख़त्म होगी। सेंट एग्निस और वह सब कुछ जो वहां हुआ था, एक सुदूर सपना लगता था। यहां तक कि मैनेजमेंट संस्थान में मेरा दाख़िला लेना भी किसी और के साथ हुई घटना जैसा लगता था। मैं अब खुद को वही इंसान महसूस नहीं करती थी। मैं इससे तालमेल नहीं बिठा पा रही थी।

इस तरह अपने ही शरीर में फंसे होना मौत से भी बदतर नियति है। मौत के साथ कम से कम कोई अंत तो होता है। यहां तो यातना अंतहीन है। आप ख़ुद से नहीं भाग सकते। यह यातना वहशियाना है। मुझे लगातार ऐसा लगता था मानो कोई मेरी पसलियों के नीचे से, मेरी धमनियों को काटते हुए मेरा दिल खींच रहा हो, उसे बाहर निकालकर एक ओर फेंक दिया हो और फिर अपने भारी पैरों तले उसे रौंद रहा हो, उसे कुचले दे रहा हो। और मैं बस लाचारी से देख रही थी। रात-दिन मुझे बस यही लगता था। जगे होने पर मुझे बेरहम यादें सतातीं कि मैं कभी क्या थी। मैं पहले से भी बुरी हालत में थी और मेरे माता-पिता मुझे फिर से डॉ. मुक्ता को

दिखाने ले गए। मैं बिना किसी हील-हुज्जत के उनके साथ चली गई। पहले की ही तरह, वे मुझसे अकेले में बात करना चाहती थीं।

अब उन्हें देखने पर मुझे डर लगा। मैं ख़ुद को उस चूहे की तरह महसूस कर रही थी जिसे वैज्ञानिक प्रयोगों के लिए इस्तेमाल किया जाता है। पहले उनके लिए मेरे मन में जो ग़ुस्सा था, अब उसकी जगह घोर डर ने ले ली थी। जब मैं उनके रूबरू हुई तो मेरे हाथ कांप रहे थे। वे ठंडे पड़ गए थे और मैंने अपनी हथेलियों की मुट्ठी बनाकर उन्हें कसकर भींच रखा था। मैं किसी घायल पशु की तरह महसूस कर रही थी और अपने कमरे की सुरक्षा और अंधेरे में छिप जाना चाहती थी। यहां उनकी क्लीनिक में, मेरी हर हरकत को देखती उनकी सर्द आंखों के साथ मैं नग्न और असुरक्षित महसूस कर रही थी। मैं चीख़ना चाहती थी मगर मैं इतना डरी हुई थी कि मेरे मुंह से रिरियाहट भी नहीं निकल पाई।

“और अब क्या हाल है, अंकिता?” उन्होंने अपनी नक़ली जोशीली पेशेवराना आवाज़ में पूछा।

मैं जवाब नहीं दे पाई।

“दवाएं ठीक से काम कर रही हैं?” उन्होंने पूछा। मुझे महसूस हुआ कि उनके लहजे में भी उपहास है।

मैंने अपनी मुट्ठियां और कस लीं। मेरे दिल की धड़कनें बढ़ गई थीं। कपड़ों के नीचे मेरी बग़लों से ठंडा पसीना बहने लगा था। मैं उनसे आंखें नहीं मिला सकी। मैंने नज़रें झुका लीं और परे देखने लगी।

आख़िरकार, शायद मेरे उदासीनता से थककर उन्होंने मेरे माता-पिता को अंदर बुला लिया।

“ऐसा लग सकता है कि दवाइयां असर नहीं कर रही हैं, लेकिन यक़ीन करें, यह ऐसे ही होना चाहिए,” उन्होंने कहा।

यही शब्द तो मेरे माता-पिता सुनना चाहते थे।

“ये पहले से बेहतर सो रही हैं और बेचैनी भी बहुत कुछ नियंत्रण में है,” उन्होंने कहा।

लेकिन मैं तो अंदर से मृत महसूस करती हूं। क्या तुम समझ नहीं रही हो कि तुम मुझे तिल-तिल करके मार रही हो?

हर शब्द को आतुरता से सुनते, उनके दिलासों में सुकून पाते मेरे माता-पिता उत्सुकता से सिर हिला रहे थे।

“एक दवा और है जो इस हफ़्ते मैं इन्हें देना चाहूंगी। वह इनके सेरोटॉनिन स्तरों को वापस सामान्य पर लाकर इनके दिमाग़ को फ़ोकस

करने में सहायता करेगी।" उन्होंने नरमी से कहा और अभ्यस्त तरीक़े से एक नया नुस्खा लिख दिया।

"क्या यह उनके अतिरिक्त है जो यह पहले से ले रही है?" डैड ने पूछा।

"हां," उन्होंने जवाब दिया। "जो ये ले रही हैं, वे बस माइल्ड रिलैक्सेंट हैं जो इन्हें शांत करने के लिए थे। यह असली इलाज है। आप फ़र्क़ देख लेंगे। दो हफ़्ते बाद दिखाइएगा।"

मैं एकदम लाचार थी। मैं और दवाइयां नहीं लेना चाहती थी। मैं अपनी कविताएं वापस पाना चाहती थी। मैं अपनी तस्वीरें वापस चाहती थी। वही मेरी इकलौती उम्मीद थीं और वे खो गई थीं। लेकिन इस मामले में मेरे सामने कोई विकल्प नहीं था।

नई दवा मेरे गले में एक अजीब क़िस्म की खुश्की पैदा कर देती थी जो लगातार अंदर से गले को खरोंचती सी लगती थी। इसने मुझे बहुत ही असहज कर दिया था। मुझे एक अजीब क़िस्म की बेचैनी महसूस हो रही थी। मुझे हर वक़्त उल्टी सी आती थी, लेकिन बस मितली होती थी और कुछ भी नहीं निकलता था। जब सोती तो अचानक ठंडे पसीने में नहाई, मुश्किल से सांस लेती उठ जाती। ऐसा लगता जैसे मुझे किसी ज़िंदा नर्क में धकेल दिया गया हो।

मैं अपनी मेज़ पर बैठी अपनी किताबों को तक रही थी। मैंने कोटलर की किताब को देखा जो सुघड़ता से सजी किताबों के ढेर में सबसे ऊपर थी। एक वक़्त था जब मैं लोलुपता से इसकी सामग्री को आत्मसात करती इसका आनंद लिया करती थी। मैंने फिर से उसे खोला इस उम्मीद में कि जाने-पहचाने शब्दों और जुमलों से सुकून पाऊंगी। मुझे लग रहा था कि पढ़ने और समझने की पहले वाली अक्षमता अब ग़ायब हो गई होगी और सब सहजता से वापस आ जाएगा। मैं ग़लत थी। जब मैंने किताब को खोला और उसे पढ़ने की कोशिश की तो एक बार फिर निराशा, घबराहट और ग़ुस्से ने मुझे अपनी गिरफ़्त में ले लिया। यह पहले की तरह ही था। कुछ नहीं बदला था। प्रचंड ग़ुस्से में मैंने एक बार फिर रीडिंग लैंप को उठाया और घुमाकर कमरे में फेंक दिया। मैंने कोटलर की किताब भी दीवार पर दे मारी और वह एक ज़ोरदार आवाज़ के साथ ज़मीन पर गिरी। फिर मैंने चीनी मिट्टी के उस कप को ज़मीन पर फेंककर चूर-चूर कर दिया जिसमें पैन-पेंसिल रखे थे। कप टुकड़े-टुकड़े हो गया। और पैन चारों ओर बिखर गए। फिर ग़ुस्से में भरकर मैंने उन नोट्स को फाड़ डाला जिन्हें मैंने इतने जतन से बनाया था। मैं ज़ोर-ज़ोर से सांस ले रही थी और आंसू मेरे चेहरे पर बह रहे थे। इस सारे शोरगुल से मेरे माता-पिता भागे चले आए थे।

जब मुझे अहसास हुआ कि वे लोग यह न समझ पाकर कि क्या करें मुझे हतप्रभ से तक रहे हैं तो मैं वहीं ठिठककर रुक गई। लड़कियों का इस तरह से ग़ुस्सा जताना ऐसी बात नहीं है जो भारतीय समाज में सहज स्वीकार्य हो। उन्हें समझ नहीं आ रहा था कि क्या करें या इससे कैसे पार पाएं। अपनी उग्र प्रतिक्रिया पर मैं भी थोड़ा सा सकपका गई थी।

बाद में जब मैं बाथरूम गई तो मेरी नज़र अपने आदमकद अक्स पर पड़ी और मुझे झटका लगा। अब मेरी पेंसिल जैसी छरहरी काया नहीं रही थी। मैं तो उस साये को पहचान ही नहीं रही थी जो आइने से हकबकाया सा मुझे देख रहा था। इतने समय से घर पर रहकर, बिस्तर में लेटे रहकर मेरा वज़न बहुत बढ़ गया था। आंखों की जगह डरी हुई दो खांपें थीं जो मुझे तक रही थीं। मेरे गाल फूल गए थे। मेरा पेट तक बढ़ गया था। बाल बेतरतीब जटाजूट से हो रहे थे। मुझे याद नहीं था कि आख़री बार मैंने उनमें कंघी कब की थी। मेरी त्वचा ने एक बीमार ज़र्द सी रंगत अख़्तियार कर ली थी जैसे पीलिया होने पर हो जाती है।

मेरी यातनाएं अभी ख़त्म नहीं हुई थीं। अगले हफ़्ते फिर मुझे अपने माता-पिता के साथ डॉ. मुक्ता से मिलना पड़ा। उन्होंने फिर से वही दवाएं जारी रखने को कहा लेकिन ख़ुराक में तब्दीली कर दी थी और उसे थोड़ा बढ़ा दिया था।

यह कहावतों वाला वही आख़री तिनका था जिसने ऊंट की कमर तोड़ दी थी। मैं तो पहले ही टूटी हुई थी लेकिन इसने मुझे पूरी तरह कुचलकर रख दिया था।

सबसे बड़ी विडंबना तो यह थी कि सबको लगता था कि मैं वास्तव में बेहतर हो रही हूं और जल्दी ही अपनी कक्षाओं में वापस जाने लगूंगी। लेकिन किसी को यह आभास तक नहीं था कि असल में हो क्या रहा है।

बाहर से, मैं साक्षात मौत सी लगती थी।

और अंदर से, मैं ऐसा ही महसूस करती थी।

मैं इस सबसे थक गई थी। मैं चाहती थी यह ख़त्म हो जाए। इस मुसीबत से निकलने का बस एक ही तरीक़ा था। यही मेरा इकलौता बचाव था।

शांति मगर दृढ़ता से मैंने अपनी जान लेने का इरादा पक्का किया।

18

अंतिम प्रस्थान की ओर

यातना, निराशा और दुखदायी पीड़ा के नौ और हफ़्ते बीत गए, तब कहीं जाकर मैं इतनी हिम्मत जुटा पाई और मैंने ख़ुद को ख़त्म करने की दूसरी कोशिश की।

मेरे माता-पिता को अंततः समझ आ गया था कि डॉ. मुक्ता की दवाइयां असर नहीं कर रही हैं और मुझमें सुधार का कोई चिह्न नज़र नहीं आ रहा है। वे मुझे एक दूसरे मनोचिकित्सक के पास ले गए जिसे देश के बेहतरीन मनोचिकित्सकों में माना जाता था। उसके सामने तो डॉ. मुक्ता किसी फ़रिश्ते जैसी मालूम देती थीं।

समय हफ़्तों पहले एडवांस में लेना होता था। मुझे बताया गया था। कि वे देश के व्यस्ततम मनोचिकित्सकों में से थे। मेरे माता-पिता इसे सौभाग्य मान रहे थे कि वे मुझे देखने को तैयार हो गए हैं। मुझे न कोई कृतज्ञता महसूस हुई, न कोई ख़ुशी। मैं दर्द और इसकी निरथर्कता से सुन्न थी। मैं ख़ामोश थी और मैंने अपने माता-पिता से बात करने से इंकार कर दिया था। जब उन्होंने मुझसे अपने साथ चलने को कहा, तो मैं ख़ामोशी से चल दी।

उनकी क्लीनिक छोटी सी थी और अपॉइंटमेंट के लिए समय से पहुंचने के बावजूद हमें क़रीब एक घंटा चालीस मिनट इंतज़ार करना पड़ा, तब जाकर वे हमसे मिल पाए। छोटा सा प्रतीक्षा कक्ष बहुत सारे लोगों से अटा पड़ा था। मैंने अपनी नज़रें फेर लीं और अपने पैरों को देखती रही, और हम इंतज़ार करते रहे। डॉ. कोहली गंजे और मोटे थे और उनकी फ्रेंच कट दाढ़ी थी। उनके छोटे से केबिन में जहां वे रात-दिन मरीज़ों को देखते थे, बसी तंबाकू की गंध को देखते हुए वे सिगरेट पीने वाले भी मालूम देते थे।

उन्होंने तो मुझसे बात भी नहीं की, और बस और दवाइयों का नुस्खा लिख दिया। उन्होंने इस तरह मेरे माता-पिता से बात की जैसे मेरा वजूद ही न हो। डॉ. मुक्ता ने कम से कम यह पता करने की कोशिश तो की थी, भले ही वह कितनी भी पेशेवराना रही हो, कि मैं कैसा महसूस कर रही थी। डॉ. कोहली तो शायद सोचते थे कि ये औपचारिकताएं समय की बर्बादी हैं ख़ासकर तब जब भीड़ भरे मुंबई सबर्ब की उस जर्जर सीढ़ियों वाली पुरानी सी बिल्डिंग के तीसरे माले की उनकी छोटी सी क्लीनिक में उनका ध्यान पाने को बेताब सैकड़ों मरीज़ जगह की धकापेल में लगे हों।

लगातार, जैसे-जैसे एक-एक दिन बीतता गया, मुझे अपने अस्तित्व की निरर्थकता का यक़ीन होता जा रहा था। मुझमें न केवल ज़रा सा भी

उपयोगी कोई काम न कर पाने की अपनी अक्षमता पर, बल्कि अपने माता-पिता को तनाव और परेशानी में डालने को लेकर निराशा का भाव बढ़ता जा रहा था। उन्हें अभी भी विश्वास था कि मैं ठीक हो जाऊंगी और वे हार मानने को तैयार नहीं थे। वे ध्यान रखते थे कि मैं वे दवाएं ले लूं जिन्हें डॉ. कोहली ने इतने जतन से लिखा था। उन्होंने जो दवाएं मुझे दी थीं, वे डॉ. मुक्ता की दी दवाओं से तीन गुणा ज़्यादा लगती थीं। मैं लगातार किसी ज़ॉम्बी की तरह रहती थी और बड़ी आसानी से अपने नए व्यक्तित्व में ढल गई थी। संघर्ष करने के लिए, बहस करने के लिए और विरोध करने के लिए मैं बहुत ज़्यादा थक गई थी। ऐसा लगता था मानो मैंने यह मान लिया था कि यही मेरी नियति है।

मैं लोगों से मिलने-जुलने से बचने लगी। अपने रेज़ीडेंशियल कॉम्प्लेक्स में मैं किसी से मिलना नहीं चाहती थी। मैं किसी से बात करना नहीं चाहती थी, ना किसी को यह समझाना नहीं चाहती थी कि मैं अब कॉलेज क्यों नहीं जा रही थी। मैं हमेशा लोगों से मिलने और उनका सामना करने के भय में जीती थी। मैं नहीं चाहती थी कि कोई मुझे इस हालत में देखे। मैं मोटी, बदसूरत और मैली-कुचैली हो गई थी। अब मैं वैसी नहीं रही थी जैसी हुआ करती थी, और मैं ख़ुद को बर्दाश्त नहीं कर पाती थी। मेरा सेंस ऑफ़ ह्यूमर और हाज़िरजवाबी पूरी तरह से लुप्त हो गई थी। अब तो मैं सामान्य बातचीत तक नहीं कर पाती थी। मैं न केवल अपने माता-पिता पर बल्कि ख़ुद पर भी बोझ बन गई थी। मेरा अस्तित्व एकदम बेमानी था। इस उलझट्टे से निकलने का बस एक ही रास्ता था और वह था अपनी ज़िंदगी ख़त्म कर देना।

मैं काफ़ी भावहीनता के साथ आत्महत्या के विभिन्न तरीक़ों पर विचार करती रही थी। मैंने हफ़्तों इस बारे में सोचा था। मैंने अपनी कलाइयां काटने और फिर उन्हें पानी की बाल्टी में डुबो देने के बारे में सोचा जिससे पक्का हो जाता कि ख़ून बहने से मेरी मौत हो गई। फ़िल्मों में वे आमतौर पर बाथटब में ऐसा करते हैं। लेकिन हमारे बाथरूम में बाथटब तो था नहीं और बाथटब का विकल्प मैं पानी भरी बाल्टी ही सोच पाई थी जिससे काम बन जाता। मगर दो वजहों से मैंने इस तरीक़े को दरकिनार कर दिया। अगले दिन यह बहुत गंदा दिखाई देता और साथ ही यह बहुत धीमा तरीक़ा भी था। मुझे यह भी यक़ीन नहीं था कि मुझमें इतनी ताक़त होगी कि मैं तब तक अपने हाथों को पानी में डुबोए रख सकूं जब तक कि प्राण न निकल जाएं। दूसरा तरीक़ा जो मैंने सोचा वह था अपने ऊपर केरोसिन उड़ेलना और खतों की तरह जल जाना। लेकिन इसमें भी नाकामी के डर ने मुझे डरा दिया। मैंने तीसरे दर्जे के जले लोगों के फ़ोटोग्राफ़ देखे हुए थे। अगर मैं नाकाम हो गई तो तकलीफ़ अकल्पनीय होगी। मैं अंदर से पक जाऊंगी। इसके अलावा हमेशा के लिए बदसूरत हो जाने का जोख़िम भी

था। फिर मैंने पंखे से लटकने के बारे में सोचा जो कि फिल्मों में इस्तेमाल किया जाने वाला सबसे आम तरीक़ा था। मैं बड़ी आसानी से अपनी मां की साड़ी इस्तेमाल कर सकती थी जैसा कि फ़िल्मों में दिखाया जाता है। लेकिन मुझे इस बात का भी यक़ीन नहीं था कि मैं ठीक से फंदा बना पाऊंगी या नहीं। इसके अलावा यह भी यक़ीन नहीं था कि मैं ऐसा कर पाऊंगी। इसमें बहुत सारे मापदंड शामिल थे और इसकी कामयाबी के लिए सबका कारगर होना ज़रूरी था। फिर मैंने अपनी दवाई की ज़्यादा खुराक लेने पर विचार किया। मैं जानती थी कि मेरी दवाएं रेफ़्रिजरेटर के ऊपर रखी जाती हैं और मुझे बस उन सबकी निगलना भर था और फिर अपने बेड पर लेटकर चले जाना था। इसने मुझे अपील किया मगर मुझे यह पता नहीं था कि दवाएं पर्याप्त घातक थीं या नहीं। मुझे यह भी पक्का पता नहीं था कि इसका असर क्या होगा। मुझे यह भी पक्का नहीं था कि मेरा शरीर उन सबको स्वीकार कर लेगा या फिर मैं उल्टी कर दूंगी। इसलिए मैंने इस विकल्प को भी दरकिनार कर दिया। आख़िरकार जो एकमात्र विकल्प सबसे ज़्यादा कारगर मालूम दिया, वह था उस बिल्डिंग की छत से कूद जाना जिसमें मैं रहती थी। मौत यक़ीनी और झटपट हो जानी थी। जब मैंने सख़्त कंक्रीट पर टकराते अपने शरीर की कल्पना की, जिसका वेग और संघात मेरी हड्डियों को चकनाचूर कर देता और शायद मेरी खोपड़ी को भी, और मेरा दिल धड़कना बंद कर देता तो बस पलभर के लिए मैं हिचकिचाई। मुझे यक़ीन था कि बस कुछ सैकंडों के लिए ही मुझे दर्द होगा। मैंने पढ़ा था कि अगर कोई पचास फुट की ऊंचाई से गिरे तो यह घातक होता है। मैं तो आठवें माले से कूदती—इसलिए मरने का तो मुझे यक़ीन था।

रात के करीब ग्यारह बजे होंगे जब मैं दबे पांव बाहर निकल गई।

मैं अपनी बिल्डिंग की छत की ओर चल दी। आमतौर पर वहां ताला नहीं होता था क्योंकि मेंटीनेंस वाले लोग अक्सर टेलीविज़न के एंटीना ठीक करने, और पानी की टंकियों और पाइप लाइनों की दूसरी समस्याओं को ठीक करने के लिए छत पर जाते रहते थे। मैं छत पर चली गई। रात की ठंडी हवा मुझसे टकराई। मैंने गहरी सांस ली।

मैंने लाखों टिमटिमाते तारों से भरे आसमान को देखा। मुझे मुंबई की एक दूसरी छत पर फ़्रेशर्स पार्टी वाली अपनी रात याद आ गई जब मैं कूद जाने की धमकी देते हुए जोजेफ़ को चिढ़ा रही थी। अब मुझे स्थिति की विडंबना का आभास हुआ। अब चिढ़ाने के लिए कोई जोजेफ़ नहीं था और मैं अब बस मर जाना चाहती थी।

मैं छत की दीवार के पास गई और नीचे झांका। आठ मंज़िल नीचे कंक्रीट का सख़्त फ़र्श मुझे घूर रहा था, मानो मुझे कूदने की चुनौती दे रहा हो। पहले से निर्धारित पार्किंग स्थानों पर करीने से पंक्तियों में कारें खड़ी

हुई थीं। उनके अलावा मुझे पेड़ों के शिखर दिख रहे थे। मैंने और आगे झांका, और कूदने के लिए सही जगह का चुनाव करते हुए दीवार के साथ-साथ चली। मैं किसी की बालकनी में नहीं गिरना चाहती थी। मुझे ऐसी जगह चुननी थी जहां नीचे कोई बालकनी या किसी क़िस्म के बचाव की जगह न हो। बेहतरीन जगह वह थी जहां शौचालय बने हुए थे। यहां बस पाइप लाइनें थीं जो दीवार की ऊंचाई के साथ-साथ जा रही थीं।

मैं उस जगह पर खड़ी होकर नीचे देखती रही। रात भयानक रूप से ख़ामोश थी। एक पत्ता भी नहीं सरसरा रहा था। आमतौर पर चौकीदार बिल्डिंग के चारों ओर चक्कर लगाता था लेकिन अपनी नींदरहित रातों की वजह से मुझे पता था कि वह अपने चक्कर आधी रात बीतने के बाद ही लगाना शुरू करता है। तब तक तो मैं मरकर दूर जा चुकी होऊंगी।

मैं दीवार पर चढ़ी और अपने दिमाग़ में उन आख़री लम्हों को समेटती नीचे देखती बैठी रही।

तभी मुझे धीमी-धीमी आवाज़ें सुनाई दीं।

“ओह, कीर्ति, मैं सच में तुमसे प्यार करता हूं। मैं बस तुमसे यह कह रहा हूं कि जो मैंने कहा है, उस पर ज़रा सोचो,” एक पुरुष स्वर ने कहा।

अपने पहले से ही उलझे दिमाग़ में यह मुझे बिल्कुल अभि की सी आवाज़ लगी और यह बहुत कुछ वैसा ही था जो अभि ने मुझसे कहा था। स्तब्ध होकर मैंने पलटकर देखा।

वह संचित था, किसी लड़की के साथ। मुझे याद था कि जब मैं पहलेपहल मुंबई आई थी तब उनसे मिली थी। दोनों मेरी बिल्डिंग में ही रहते थे। वे पानी की टंकी के बग़ल में छिपे हुए थे। संचित की पीठ मेरी ओर थी। कीर्ति उसके सामने थी।

अभि के नाना के शब्द फिर से मुझे सताने के लिए वापस आ गए थे। “मुहब्बत को कभी बेइज़्ज़त मत करना,” उन्होंने कहा था।

मेरा ध्यान बंट गया था और मैं स्तंभित सी उन्हें देखती रही।

“अंकिता। हे भगवान। आख़िर तुम यहां क्या कर रही हो?” अचानक डैड की आवाज़ ने मेरे विचारों को काट दिया और अगले ही पल मैं पलटी और मैंने डैड को देखा।

डैड की आवाज़ ने संचित और कीर्ति को भी आगाह कर दिया था, और मैंने उन्हें दबे पांव बिल्डिंग के दूसरी ओर पानी की टंकियों के पीछे की तरफ़ बढ़ते देखा। मुझे नहीं लगता कि उन्हें इस बात का अंदाज़ा था कि मैं पहले ही उन्हें देख चुकी थी।

डैड सन्न थे। उस रात कुछ बेचैनी सी होने पर उनकी आंख खुल गई थी, और जब वे मेरे कमरे में आए तो उन्होंने उसे ख़ाली पाया। ऐसा लगता था मानो उन्हें कुछ पूर्वाभास हो गया हो या हो सकता है जब मैं दरवाज़ा खोलकर बाहर निकली थी तो उन्होंने मेरी आहट सुन ली हो। फिर उन्हें हमारे फ़्लैट का मुख्य दरवाज़ा खुला मिला, तो वे नीचे गए और उन्होंने सिक्योरिटी गार्ड से पूछा कि क्या उसने मुझे कहीं देखा है। जब गार्ड ने इंकार किया तो डैड मुझे ढूंढ़ते हुए छत पर आ गए थे।

मुझे समझ नहीं आया कि उनसे क्या कहूं। लेकिन मुझे यक़ीन है कि मेरे उतरे चेहरे और शिथिल, ढलके कधों को देखकर वे मेरे इरादों को अच्छी तरह समझ गए थे।

मैंने कभी डैड को रोते नहीं देखा था, लेकिन उस रात मैंने हार और पीड़ा के आंसुओं को देखा जिन्हें वे पीछे धकेल रहे थे। मैंने उनके चेहरे पर मेरे लिए कुछ न कर पाने की घोर लाचारी और ग़ुस्सा देखा। वे बहुत मज़बूत आदमी थे, अपनी मेहनत से कामयाब हुए आदमी जिन्होंने बहुत कठोर हालात से ऊपर उठकर अपनी ज़िंदगी और अपना कैरियर बनाया था। उन्होंने हमेशा हमें बेहतरीन चीज़ें हासिल करवाई थीं।

लेकिन उस रात मैंने उन्हें टूटते देखा और यह मेरी वजह से था।

उन्होंने मुझसे एक शब्द भी नहीं कहा। वे मुझ पर न तो चिल्लाए और न ही उन्होंने मुझे डांटा। काश उन्होंने कुछ कहा होता। उनकी ख़ामोशी की बनिस्बत उनके शब्दों को बर्दाश्त करना कहीं ज़्यादा आसान होता। उन्होंने मेरा हाथ अपने हाथ में लिया और चुपचाप मुझे सीढ़ियों से हमारे दूसरे माले के फ़्लैट में वापस ले गए।

“सॉरी, पा,” मैंने आख़िर किसी तरह कहा, मेरे शब्द गले में रुंध रहे थे। ज़िंदगी में मैंने इतनी कठिन माफ़ी कभी नहीं मांगी थी।

मैं दिल से यह कह रही थी।

लेकिन इसकी गहराई जताने के लिए मेरे पास और कोई शब्द नहीं थे।

19

बंद गली

डॉक्टर के ऑफ़िस के बाहर कुर्सी पर बैठी मैं अपनी बारी का इंतज़ार कर रही हूं। वास्तव में, मनोचिकित्सक के ऑफ़िस के बाहर। तथाकथित विशेषज्ञ के। इस मुलाक़ात के लिए हम मुंबई से बंगलौर आए हैं। यहां अपॉइंटमेंट पाना वैटिकन सिटी में पोप के साथ अपॉइंटमेंट पाने जैसा है। यह भारत के सर्वश्रेष्ठ मानसिक स्वास्थ्य सेवा केंद्रों में से एक है।

आख़िरकार, नर्स मेरा रोगी नंबर पुकारती है। किसी को क़तई परवाह नहीं कि मेरा नाम क्या है या मैं क्या हुआ करती थी। मैं अंदर जाने के लिए खड़ी होती हूं।

फिर वह सवाल पूछना शुरू करता है। मुझे अपनी ज़िंदगी में किसी का इस तरह से झांकना बिल्कुल पसंद नहीं है। इस सबसे गुज़रने से मुझे नफ़रत हो रही है।

मैं फंसा हुआ सा महसूस करती हूं, मैं हताश, बेतहाशा नाराज़ और थका हुआ महसूस करती हूं। मेरा दिल करता है कि बस ये सब किसी तरह ख़त्म हो जाए।

इसलिए मैं जवाब देना शुरू कर देती हूं।

सवाल बिल्कुल वैसे ही थे जैसे डॉ. मुक्ता ने मुझसे पूछे थे। लेकिन यह बहुत ज़्यादा तफ़्सील में था। वे केवल मुझसे ऐसे सवाल ही नहीं पूछ रहे थे जो बहुत तफ़्सील में और स्पष्ट थे, बल्कि वे मेरे जवाबों को रिकॉर्ड भी कर रहे थे। मैं जो कुछ भी कह रही थी, वे उस सबको लिखते जा रहे थे।

उन्होंने मेरे सारे जवाबों को रिकॉर्ड करने में अपना समय लिया। फिर उन्होंने मुझसे बाहर इंतज़ार करने को कहा, जबकि वे वरिष्ठ डॉक्टरों डॉ. शाह और डॉ. मधुसूदन से मशवरा करते। उन्होंने कहा कि वे मेरे माता-पिता से बात करना चाहेंगे।

मैं बाहर चली गई, अपने माता-पिता को अंदर भेज दिया, और ख़ुद प्रतीक्षा कक्ष में लोहे की ठंडी कुर्सी पर बैठ गई। प्रतीक्षा कक्ष बड़ा था और उसमें कम से कम सौ मरीज़ और उनके रिश्तेदार मौजूद थे। ऐसा कैसे मुमकिन था कि इतने सारे लोगों को मानसिक स्वास्थ्य संबंधी परेशानियां थीं? इतने लोगों को कैसे इस तरह की मदद की ज़रूरत थी? उन्हें क्या परेशानियां थीं? मैं सोच रही थी कि क्या उनमें से कोई मेरी तरह मैनेजमेंट स्कूल को छोड़ देने वाला होगा? मुझे इसमें शक था।

लगभग पूरे पंद्रह मिनट बाद मेरे माता-पिता बाहर निकले। उनके चेहरे गंभीर थे।

“अंकिता, यहां के बड़े डॉक्टरों ने तुम्हारे केस पर बात की है। उन्हें लगता है कि तुम्हें यहां एडमिट करना और अपनी निगरानी में रखना सबसे सही होगा,” डैड ने मेरे कंधे पर अपना हाथ रखकर कहा।

मुझे तो यह सजाए-मौत जैसा लगा। मैं एकदम सकते में थी। मैं तो यहां आना ही नहीं चाहती थी। अब वे लोग मुझे यहीं रखने वाले थे। मुझे तो यह क़तई मंजूर नहीं था। लेकिन वे मुझे तो कोई विकल्प दे ही नहीं रहे थे।

मैं बोल ही नहीं पाई हालांकि मैं चीख़ना चाहती थी।

“हमने तुम्हारे लिए प्राइवेट कमरा लिया है। यह उनका सबसे अच्छा कमरा है। तुम बहुत जल्दी अच्छी हो जाओगी,” डैड कहते रहे।

“प्लीज, डैड, मुझे घर वापस ले चलें। मैं वादा करती हूं कि फिर कभी वैसा कुछ नहीं करूंगी,” मैंने उनसे विनती की। इस तरह अपने माता-पिता के आगे गिड़गिड़ाने पर मुझे ख़ुद से नफ़रत हो रही थी। लेकिन किसी मेंटल हॉस्पिटल में भरती किए जाने का आतंक और डर मेरी अनिच्छा पर विजयी हो गए और मैंने फिर विनती की।

“प्लीज़, डैड, प्लीज़, मुझे यहां मत छोड़िए,” मैंने फिर कहा।

“देखो, हमारे लिए भी यह आसान नहीं है,” उन्होंने कहा। “लेकिन इसी में बेहतरी है। हम कब तक इसी तरह चलता रहने दे सकते हैं? तुममें कोई सुधार नहीं हो रहा है। हम पहले ही दो मनोचिकित्सकों को दिखा चुके हैं। यह देश की सबसे अच्छी मैडिकल केयर है। तुम्हारी यहां बहुत अच्छी तरह से देखरेख होगी,” उन्होंने आवाज़ में निर्णयात्मकता के साथ कहा।

मैंने अपनी आंखें बंद कर लीं और अपने ज़ोर-ज़ोर से धड़कते दिल को शांत करने की कोशिश करने लगी। मुझे अपने माहौल की सख़्त तलाश महसूस हो रही थी।

अब न केवल मैं मानसिक रूप से क़ैद थी, बल्कि इस जगह पर, जो इलाज का वादा करती थी, शारीरिक रूप से भी क़ैद थी।

पहले से कहीं ज़्यादा मैं मर जाना चाहती थी लेकिन अब मरने का भी कोई जरिया नहीं था।

जब मेरे माता-पिता चले गए और मुझे अटैंडेंट के साथ अकेला उस प्राइवेट कमरे में छोड़ दिया जिसे उन्होंने मेरे लिए चुना था, तब डर और घबराहट की वही जानी-पहचानी भावना मेरे अंदर घर करने लगी, किसी

ऐसे पुराने और अच्छे दोस्त की तरह जो बिन बुलाए ग़लत वक़्त पर आपके घर आ धमकता है।

कमरा साधारण सा था। यह किसी भी सरकारी अस्पताल के सामान्य कमरे जैसा था। लोहे का ऊंचा सा बेड, सफेद पेंट किया हुआ, जिसके कोनों पर इधर-उधर से जंग दिखने लगी थी, दीवारों पर गंदा हरा औद्योगिक स्थानों वाला पेंट था जो जगह-जगह से उखड़ने लगा था, एक दरवाज़ा जो मोज़ैक टाइलों वाले बाथरूम में खुलता था जिसने कभी बेहतर दिन देखे थे, और कीटाणुनाशक की वही सुस्पष्ट गंध जो सारे अस्पतालों में बसी रहती है। सालों बाद भी वह गंध मुझे सताती रहेगी और उसमें तब भी मुझे त्रस्त कर देने की उतनी ही शक्ति रहेगी, लेकिन उस समय मैं यह नहीं जानती थी। मैं तो बस छोड़ दिए जाने का दुखद अहसास महसूस कर रही थी जो मुझे घेरे हुए था और नीचे खींचे लिए जा रहा था। मैं, एक भरी-पूरी वयस्क, किसी दो साल के बच्चे की तरह महसूस कर रही थी जो अपनी मां के खो जाने पर उसके लिए रोता है। मुझे ख़ुद से नफ़रत हो रही थी। मैं यह मानना नहीं चाहती थी कि मुझे अपने माता-पिता की ज़रूरत है। मैं मज़बूत होना चाहती थी। मैं नियंत्रण में रहना चाहती थी। मैं यहां नहीं होना चाहती थी, अकेले, मेंटल हॉस्पिटल के वार्ड में अपने दम पर, एक मरीज़ के रूप में निष्कासित, जो कि बहुत ज़्यादा बदहाल हो और जिसे बहुत निगरानी और देखरेख की ज़रूरत हो।

लेकिन डर वापस आ रहा था। अब मैं उसी जाने-पहचाने पेट की गहराई से उठते हौल को महसूस करने लगी थी जो धीरे-धीरे ऊपर की ओर उठ रहा था। मुझे उनकी ज़रूरत थी। मैं चाहती थी कि वे रुक जाएं। मैं चाहती थी कि मां मुझे गले से लगा लें और कहें कि वे मेरे साथ मौजूद हैं। मैं चाहती थी कि वे कहें कि मैं उनके लिए अहम थी। मैं चाहती थी कि वे मुझे शांत करें और दिलासा दें कि सब कुछ ठीक हो जाएगा।

उन्होंने ऐसा कुछ भी नहीं किया।

“मां, डैड। प्लीज़ मत जाइए। प्लीज़,” मैंने आवाज़ दी, गिड़गिड़ाते हुए, एक ऐसे लहजे में जिसे मैं ख़ुद भी नहीं पहचानती थी, एक ऐसा लहजा जो मेरे अपने कानों को अजनबी सा सुनाई दिया था।

मैं देख रही थी कि मेरी मां होंठों को भींचकर पलट गई हैं, उन्होंने अपने मुंह को रुमाल से ढक लिया था और मेरे पिता उन्हें सहारा दे रहे थे, उन्होंने अपना हाथ मां के कंधे पर रखा हुआ था और वे बाहर की ओर जा रहे थे।

मैं रोष, लाचारी, हताशा, गुस्से और त्यागे जाने के निराशा भाव से भर गई थी। वे मुझे इस तरह कैसे छोड़ सकते थे? वे मुझे मेंटल हॉस्पिटल में

छोड़ने को कैसे तैयार हो सकते थे? मैं पागल नहीं थी। मैं यहां नहीं रहना चाहती थी।

उस वक़्त मुझे दुनिया से नफ़रत हो रही थी। मुझे अपने माता-पिता से नफ़रत हो रही थी। मुझे ज़िंदगी से नफ़रत हो रही थी। मुझे हर चीज़ से नफ़रत हो रही थी। मैं इतनी स्याह, इतनी गहरी और इतनी अभेद्य नफ़रत से भरी हुई थी कि और कुछ भी देख पाना मुश्किल था। मेरे दिमाग़ में बस यह चल रहा था कि अब मैं मेंटल हॉस्पिटल में भरती थी और अकेली थी।

"मुझे आपसे नफ़रत है। आप दोनों से। वापस आइए यहां-मुझे इस तरह छोड़कर मत जाइए-आप मेरे माता-पिता है, डैम इट।" मुझे यह अहसास भी नहीं था कि मैं गला फाड़कर चिल्ला रही थी। मैंने यह भी ध्यान नहीं दिया कि मैं गुस्से से कांपती अपनी मुट्ठियां भींचे चिल्ला रही थी।

"साला आपने मुझे पैदा क्यों किया था? वापस आइए, डैम इटवापस आइए," मैं चिल्लाती रही। मुझे धुंधला सा अहसास था कि मैं बेक़ाबू हो रही हूं लेकिन जज़्बात पूरी तरह से मुझ पर हावी हो चुके थे। मैंने आसपास कोई चीज़ ढूंढ़ी कि उसे दरवाज़े पर दे मारूं, लेकिन कुछ नहीं दिखा। कुछ नहीं मिला तो मैंने झक्क सफ़ेद चादर खींची और बेड से उतार फेंकी। उसके बल से तकिए उड़ते हुए दूर जाकर गिरे।

डॉक्टर बाद में मेरी केस हिस्ट्री शीट मे लिखते "रोगी हिस्टीरिया से पीड़ित। नींद की दवा दी गई।"

मैंने देख लिया था कि नर्स दो और अटैंडेट्स के साथ दौड़ती हुई अंदर आई है।

"यह बेक़ाबू हो रही है," नर्स ने अपने पास खड़े अटैंडेंट से कहा।

"शट अप," मैं उस पर चिल्लाई। "तुम साला बेक़ाबू होने के बारे में क्या जानती हो?" मैंने अपनी भड़ास उस पर निकाल दी, मेरी आवाज़ हिस्टैरिकल हो रही थी जिसे एक बार फिर मैं नहीं पहचानती थी।

वह सुन ही नहीं रही थी।

तब जाकर मैंने देखा कि उसके हाथ में सिरिंज है। अब दोनों अटैंडेंट मेरे दोनों ओर आ गए थे और उन्होंने मेरी बांहें पकड़ ली थीं। वह ग़ुस्सा जो किसी फ़ैक्टरी की विशाल चिमनी से निकलते धुएं की तरह उठा था, अब मुझे अंधा कर देने की धमकी दे रहा था। मैं उनकी खोपड़ियां बजा देना चाहती थी। इनकी हिम्मत कैसे हुई यह तय करने की कि मैं बेक़ाबू हो रही हूं? मैं चंडी हो रही थी। ये लोग कौन होते हैं मुझे मेरा ग़ुस्सा जताने से रोकने वाले? मैंने अपनी लात चलाई लेकिन तब तक नर्स सिरिंज घुसा चुकी थी। मैं बहुत अपमानित, तिरस्कृत और असहाय महसूस कर रही थी।

मेरे जज़्बात इतने गहरे थे कि मैं कांप रही थी और अब बोल भी नहीं पा रही थी।

मैं ज़ोर-ज़ोर से रोने लगी और बिस्तर पर लुढ़क गई। मुझे ठीक से याद नहीं क्योंकि नींद की दवा का इंजेक्शन अपना असर दिखाने लगा। था और मेरी आंखें बंद हो गईं।

***

जब मुझे होश आया तो मैंने अविश्वसनीय सी शांति महसूस की। मेरे जबड़े में मीठा सा दर्द था और बहुत हल्का सा सिरदर्द था। मेरा गला सूख रहा था, जैसे सालभर से मैंने पानी न पिया हो। लेकिन हौल खत्म हो गया था, और ग़ुस्सा भी। कुछ मिनट तक तो मुझे याद ही नहीं आया कि मैं कहां हूं और मेरे साथ क्या हुआ था। मैं थोड़ी भ्रमित सी थी। यह सपना सा लग रहा था। क्या मैं गिर गई थी? यह अजीब सा हरा रंग जो मैं देख रही थी, क्या था? मेरे घर के किस कमरे में ऐसा रंग था? मुझे किसी कमरे में ऐसी दीवारों का होना याद नहीं आया।

फिर धीरे-धीरे समझ में आने लगा। मैं अस्पताल में थी। 'मेंटल हॉस्पिटल' मेरे दिमाग़ में एक आवाज़ ने मुझे याद दिलाया, मुझे ताना मारा और मैं झिझक गई, शर्मिंदगी के गहरे अहसास से भर गई। सेंट एग्निस की बेहद लोकप्रिय, सराही जाने वाली, बिंदास, स्मार्ट, ज़हीन और उज्जवल भविष्य वाली नौजवान छात्रा अब मेंटल हॉस्पिटल में एक मरीज़ थी।

"हैलो, अंकिता। मैं सिस्टर रोज़ालीन हूं। तुम्हें कैसा लग रहा है? पानी पियोगी?" एक नर्स ने पूछा।

"हैलो, सिस्टर। हां, प्लीज़ और उस वक़्त आप पर चिल्लाने के लिए मुझे माफ़ करना," मैंने कहा। उस तरह से नियंत्रण खोने और उन पर चिल्लाने के लिए मुझे अब वाक़ई शर्मिंदगी हो रही थी। मैंने अब उन्हें ध्यान से देखा। उनकी आंखें दयालुता से भरी लगीं। वे गदबदे बदन की थीं, पचास के दशक में रही होंगी और बहुत ही अनुभवी मालूम दे रही थीं।

"ओह, कोई बात नहीं है, बेटे," उन्होंने पानी की बोतल मुझे थमाते हुए मुस्कुराकर कहा।

जब मैं बहुत आतुरता से पानी पी रही थी तो उन्होंने आगे कहा, "मरीज़ों पर ईसीटी का असर अक्सर अच्छा होता है।"

इस बात ने तो मेरी हवा ही निकाल दी। हालांकि ऐसा नहीं था कि बहुत हवा बची थी, लेकिन मैं सोच में पड़ गई कि क्या मैंने सही सुना है। ईसीटी? इलेक्ट्रोकन्वल्सिव थेरेपी? बिजली के झटके? मैं सन्न रह गई थी। उन्होंने जो कहा था, उस जानकारी की भयावहता के तले मैं कसमसा रही थी।

आख़िर क्यों? और ऐसा कैसे कि किसी ने मुझे इस बारे में नहीं बताया? क्या मुझे बिजली के झटके दिए गए थे? हे भगवान। मेरे साथ आखिर ऐसा कैसे हो सकता था?

बाक़ी दिन मैं ख़ामोश रही।

शाम को डॉ. मधुसूदन राउंड पर आए।

"हैलो, अंकिता," उन्होंने प्रसन्न आवाज़ में मुस्कुराते हुए कहा। "तुम्हें कैसा महसूस हो रहा है?"

"नाराज़ और धोखा खाया हुआ, डॉक्टर। क्या मुझे ईसीटी दिया गया था? और मुझे इस बारे में क्यों नहीं बताया गया? ऐसा कैसे कि किसी ने कोई ज़िक्र भी नहीं किया?" मैंने चिड़चिड़ाते हुए जवाब दिया।

"ओह," उन्होंने कहा, मेरे स्पष्ट जवाब से वे हैरान रह गए थे। उन्होंने मिनट भर सोचा। फिर कहा कि वे मुझसे बात करना चाहते हैं और उन्होंने सिस्टर रोज़ालीन और अपने साथ आए दूसरे दो जूनियर डॉक्टरों को कमरे से बाहर जाने और हमें कुछ वक़्त देने को कहा। मैंने देखा कि वह युवा डॉक्टर भी कमरे से बाहर जाने वाले ग्रुप में था जिसने शुरू में मुझसे सवाल-जवाब किए थे और विस्तार से नोट्स बनाए थे।

उन्होंने तब तक इंतज़ार किया जब तक कि हम कमरे में अकेले नहीं रह गए। उन्होंने एक कुर्सी खींची, उसे मेरे बेड के पास लाए और बैठ गए। "अंकिता," उन्होंने कहना शुरू किया, "तुम्हारा केस गंभीर बाइपोलर डिसऑर्डर का है।"

अपनी ज़िंदगी में पहली बार मैं यह शब्द सुन रही थी।

"मैं तुम्हें बताता हूं कि यह कैसे काम करता है। यह चक्र में आता है। इस तरह," उन्होंने कहा और उस राइटिंग पैड के एक काग़ज़ पर जिसे वे साथ लेकर चल रहे थे, एक ग्राफ़ बनाया। यह एक लहर की तरह दिख रहा था, जो ऊपर-नीचे जा रही थी, बहुत कुछ फ़िज़िक्स के डायग्राम की तरह जो परिमाणों को दर्शाता है। "तुम समझ रही हो?"

मैंने हामी भरी।

"इस वक़्त, तुम यहां हो," उन्होंने कहा, और घुमाव की एकदम तली में एक बिंदु पर निशान लगाया। "इसीलिए तुमने दो बार आत्महत्या करने की कोशिश की थी।"

मैं चुप रही।

"यह किसी भी दूसरी बीमारी की तरह ही एक बीमारी है। देखो, जब हड्डी टूटती है तो हम हड्डी के डॉक्टर के पास जाते हैं, ठीक है? और जब

दांत में दर्द होता है तो डेंटिस्ट के पास जाते हैं? उसी तरह, जब दिमाग़ में कोई बीमारी होती है तो लोग हमारे पास आते हैं। लोगों के दिमाग़ में इसे लेकर एक लांछन है। वे इसकी गंभीरता को नहीं समझते हैं। लोग इससे ख़ुद को निकाल ही नहीं पाते हैं, ठीक होने के लिए उन्हें इलाज की ज़रूरत होती है," उन्होंने समझाया।

मैं फिर चुप रही, लेकिन वे मेरी आंखों में देख रहे थे, यह भांपने की कोशिश करते हुए कि वे जो कह रहे हैं वह मुझे समझ आ रहा है या नहीं। वे देख सकते थे कि बात मेरे दिमाग़ में आने लगी है।

"देखो, अंकिता," उन्होंने आगे कहा, "ईसीटी के बारे में बहुत ग़लत-सलत कहा गया है लेकिन यह क़तई ऐसा नहीं है। यह वैसा नहीं है जैसा फ़िल्मों में दिखाया जाता है। प्लीज़ डरो मत। यह जीवनरक्षक हो सकता है और बहुत शानदार नतीजे दे सकता है। फ़िलहाल, अंकिता, तुम घुमाव की एकदम तली में हो। इन हालात में अगर हम यह नहीं देते हैं, तो बहुत मुमकिन है कि तुम फिर से ख़ुद को नुक़्सान पहुंचाने की कोशिश करो। हम तुम्हें एंटी-डिप्रेसेंट दे सकते थे लेकिन उन्हें काम करने में तीन हफ़्ते लग जाते। मैं वास्तव में यह जोख़िम नहीं लेना चाहता था। ईसीटी की सबसे ख़ास बात यह है कि इसे दिए जाने के बाद आत्महत्या की कोशिशें ना के बराबर होती हैं। एकमात्र चीज़ यह है कि इसे हफ़्ते में दो बार दिया जाना होगा। एक हफ़्ते बाद हम आकलन करेंगे कि और इलाज की ज़रूरत है या नहीं।"

मुझे समझ नहीं आया कि क्या कहूं। इतने महीनों में पहली बार ऐसा हो रहा था कि कोई मुझे समझा रहा था कि मेरे साथ क्या हो रहा है और मुझे आश्वासन दे रहा था कि इसमें कोई खास बात नहीं है। इतने महीनों में पहली बार ऐसा हो रहा था कि कोई मुझसे इस तरह बात कर रहा हो जैसे कि मैं मायने रखती थी। यह पहली बार था कि मुझे आश्वस्त किया जा रहा था कि मुझे किसी ऐसी चीज़ के लिए अपराधी महसूस करने की ज़रूरत नहीं है जो मेरे नियंत्रण से बाहर थी।

मैं इससे 'बाहर नहीं निकल' पाने को लेकर बहुत त्रस्त रही थी, और ख़ुद को इल्ज़ाम देती थी, ख़ुद से कहती थी कि यह 'सब मेरा फितूर' है और अगर मैं अपने विचारों को बदल लूं तो फिर से ठीक हो जाऊंगी। मुझसे कहा जा रहा था कि यह ऐसा क़तई नहीं है और जिस चीज़ से मैं गुज़र रही थी अब उसका एक नाम था, दुनिया में मुझ जैसे अनेक लोग थे जिनका इसके लिए इलाज किया जा रहा था। यह मेरे नियंत्रण से परे था और मैं सुरक्षित हाथों में थी और मेरा बख़ूबी ध्यान रखा जाएगा।

मैं वैसी ही राहत महसूस करने लगी थी जैसे सूखे से प्यासी धरती को बारिश की पहली बूंदों से महसूस होती है जो कि गर्मी की अधिकता से

फटने लगी हो।

“यह मुश्किल होने वाला है, अंकिता। अनुपयोगी होने का अहसास और घोर अवसाद ऐसी ताक़तों के साथ मिलकर जिन पर तुम्हारा कोई बस नहीं है और जो तुमसे कहती हैं कि ख़ुद को ख़त्म कर लो, फिर से सिर उठाएगा और बार-बार तुम्हारे पास आएगा। वे लहरों की तरह आएंगे। तुम्हें हार नहीं माननी होगी। तुम्हें हमारे साथ सहयोग करना होगा और इससे लड़ने में मदद करनी होगी। हम तुम्हारे साथ हैं, तुम्हारे ख़िलाफ़ नहीं हैं।”

उस वक़्त अगर उन्होंने मुझसे कहा होता कि एक नारियल पकड़कर एक पैर पर नाचने से मुझे बेहतर महसूस होगा, तो मैं खुशी से उन पर यक़ीन कर लेती।

वे मुझे उम्मीद का अंतिम सिरा थमा रहे थे और मैं डूबते व्यक्ति की सी हताशा से उससे चिपक रही थी।

20

उम्मीद की नन्ही सी किरण

यह कहना कि प्राइवेट रूम में अकेले रहना मुश्किल था, यह कहने जैसा होगा कि शारीरिक सहनशक्ति के उच्चतम स्तर वाली योग्यताओं के बिना माउंट एवरेस्ट पर चढ़ना मुश्किल है। लेकिन एवरेस्ट पर चढ़ने वाले व्यक्ति के विपरीत इस मामले में मेरी अपनी कोई मर्ज़ी नहीं थी। पड़े रहने के अलावा कोई रास्ता ही नहीं था। यह बड़ा ही अवास्तविक सा लग रहा था। खिड़कियों पर चिड़ियाघर के पिंजरों की तरह लोहे की मज़बूत जालियां थीं, शायद कूदने की कोशिशों को रोकने के लिए। कमरे में ऐसा कुछ नहीं था जिसके द्वारा ख़ुद को चोट पहुंचाई जा सके। कोई मेज़ तक नहीं थी। कमरे में सिर्फ़ एक बेड था और उसके अलावा कोई फर्नीचर नहीं था।

अजीब सी बात थी कि कमरे का ख़ालीपन मेरे दिमाग़ के ख़ालीपन से मेल खा रहा था। यह माहौल मुझे एक सुरक्षित खोल सा लग रहा था जहां मैं सबसे बचकर रह सकती थी। यहां दवाई लेने के लिए मेरे माता-पिता मेरे सिर पर सवार नहीं रहते थे। मेरे ऊपर कॉलेज वापस जाने का कोई दबाव नहीं था। मैं पढ़ने को मजबूर महसूस नहीं करती थी। मुझे कुछ नहीं करना था। मेरा समय मेरा अपना था। मैंने कभी इसकी उम्मीद नहीं की थी और मैं चकित थी कि मुझे एक कोकून मिल गया है जिसमें घुसकर मैं ख़ुद को ज़िंदगी की कड़वी हक़ीक़तों से सुरक्षित कर सकती थी। अजीब बात थी कि मैं शांत थी। जो बदतरीन हो सकता था, वह हो चुका था। अब ऐसा कुछ नहीं था जो मुझे और चोट पहुंचा सके। अब आत्महत्या के विचार एक बुरे सपने जैसे लगने लगे थे।

डॉक्टर सुबह-शाम अपने नियमित राउंड पर आते थे। सुबह को जूनियर डॉक्टर आते थे। मैं उनमें से किसी से बात नहीं करती थी। जब वे आते, तो मैं बस खिड़की के बाहर देखने लगती और ख़ामोश रहती। मैं उनसे बात करना या उनके किसी सवाल का जवाब नहीं देना चाहती थी। शाम को सीनियर डॉक्टर आते थे। इन राउंड्स का मुझे इंतज़ार रहता था क्योंकि डॉ. मधुसूदन शाम को ही आया करते थे।

डॉ. मधुसूदन न सिर्फ़ दयालु और विनम्र थे बल्कि उनमें सहजबोध भी था। ऐसा लगता था जैसे वे मेरे दिमाग़ को पढ़ सकते हैं और अच्छी तरह जानते हैं कि मुझे शांत रखने के लिए क्या बोलना है। वे हमेशा आशा और प्रेरणा से भरी दिलासा देने वाली बातें कहते थे। मेरा ख़्याल है कि ज़िंदगी जीने की मेरी दूसरी कोशिश पूरी तरह इसी व्यक्ति की देन थी। उन्होंने मुझे कई बार जीवित रखा था। वे मुझसे इस तरह बात करते थे जैसे मैं अहम

हूं। वे वास्तव में चिंता करते थे और इसी से सारा फ़र्क़ पड़ गया। हैरत की बात है कि शब्दों और दयालुता में उपचार की शक्ति है, शायद दवाइयों से भी ज़्यादा। डॉ. मधुसूदन ने वे दवाइयां बंद कर दी थीं जो पिछले दोनों डॉक्टरों ने लिखी थीं। इसके बजाय वे मुझे बस एक दवाई देने लगे। उन्होंने मुझे समझाया कि ये लीथियम है और इस समय यह अनिवार्य है कि मैं इसे पाबंदी के साथ दिन में दो बार लेती रहूं क्योंकि बाइपोलर लोगों के लिए यह जीवनरक्षक है। उन्होंने मुझसे वादा किया कि जैसे ही उन्हें लगेगा कि मैं इसके बिना काम चला सकती हूं, वे इसे बंद कर देंगे। उन्होंने ज़ोर देकर कहा कि मेरे सामने इसे लेने के अलावा कोई विकल्प नहीं है और कि वे धीरे-धीरे इसकी खुराक कम कर देंगे। उन्होंने मुझे बताया कि मुझे सिर्फ इसी दवा की ज़रूरत है। पिछले दोनों डॉक्टर मेरा उपचार गंभीर नैदानिक अवसाद के लिए कर रहे थे, लेकिन मुझे इससे कहीं ज़्यादा गंभीर रोग था। डॉ. मधुसूदन न केवल मेरे मददगार थे बल्कि उन्हें विश्वास था कि मैं बहुत जल्दी अच्छी हो जाऊंगी। सबसे बढ़कर, मुझमें उनका अडिग विश्वास मुझे साहस दे रहा था।

अब मेरे पास अपने उन सारे कामों के बारे में सोचने के लिए बहुत समय था जिनके नतीजे में मैं यहां पहुंच गई थी। डॉ. मधुसूदन मुझे विश्वास दिलाते रहते थे कि इसमें मेरी कमी' या 'मेरी ग़लती' नहीं थी। उन्होंने कहा कि जिस तरह कभी-कभी लोगों का शारीरिक रोगों पर कोई नियंत्रण नहीं होता है, उसी तरह कभी-कभी मानसिक बीमारी पर भी नियंत्रण नहीं होता है। उन्होंने बताया कि मानसिक बीमारी से संबंधित किसी भी चीज़ के साथ जुड़ा होने की बदनामी के कारण ही उन्होंने डॉक्टर बनना चाहा था।

वे जब भी अपने राउंड पर निकलते, तो मेरे कमरे को सबसे आखिर के लिए छोड़ते। मुझे दूसरे ही दिन इस पैटर्न का अंदाज़ा हो गया था। मेरी तबीयत पूछने की शुरुआती बातों के बाद वे अपने साथ आई नर्सों और जूनियर डॉक्टरों को जाने को कह देते थे। फिर वे मुझसे पूछते कि अगर वे मुझसे कुछ बातचीत करना चाहें तो मुझे एतराज तो नहीं होगा। मुझे इसमें क़तई एतराज नहीं था। एक ऐसे कमरे में जहां वैसे भी करने को कुछ था ही नहीं, यह अच्छा मनबहलाव था। हमारे बीच एक ऐसा संबंध पनपने लगा था जो डॉक्टर और रोगी के सामान्य संबंध से हटकर था। मुझे इसकी परवाह नहीं थी। वे मेरी ओर उम्मीद का आखरी तिनका बढ़ा रहे थे और मैं उसे पूरी मज़बूती के साथ पकड़ रही थी।

ऐसी ही एक बातचीत के दौरान वे अपने बारे में भी खुल गए और उन्होंने मुझे अपनी कहानी सुनाई जिसने मुझ पर गहरा प्रभाव डाला।

"अंकिता, तुम सोचती होगी कि यह डॉक्टर मुझमें इतनी दिलचस्पी क्यों लेता है?" एक शाम उन्होंने मुझसे पूछा।

“नहीं, डॉक्टर। मेरे पास तो यहां करने को वैसे भी कुछ नहीं है। लेकिन समय देने के लिए आपका शुक्रिया, मैं आभारी हूं।”

“देखो, अंकिता, मैं केरल के एक छोटे से गांव का हूं। मेरा ख़्याल है तुम भी पहले केरल में थीं ना?”

“हां, मैंने वहां ग्रेजुएशन की पढ़ाई की थी।”

“तो तुम जानती ही होगी कि वहां का समाज कैसा है और वहां परिवार की इज़्ज़त का कितना महत्व होता है। कभी-कभी तो उनके पास बस यही होती है,” आंखों में सुदूर सा भाव लिए वे बोले।

मैंने सिर हिलाया। मैं समझ सकती थी वे क्या कह रहे हैं।

“मैं केरल में ही बड़ा हुआ था और बहुत साल पहले मेरी एक बड़ी बहन थीं। वे मुझसे लगभग चौदह साल बड़ी थीं। जब वे बाईस साल की थीं, तो उन्होंने हमारे पिछवाड़े के कुएं में कूदकर आत्महत्या कर ली थी। बज़ाहिर वे ठीकठाक और खुश थीं। लेकिन उनके दिमाग़ में ज़रूर कुछ ऐसी चीज़ें रही होंगी जो उन्हें परेशान कर रही होंगी। उनकी मौत ने मेरे माता-पिता को बुरी तरह तोड़ डाला और बाक़ी की ज़िंदगी के लिए हमें सदमे में डाल दिया। हमारे पास कोई जवाब ही नहीं था। वे बहुत मेधावी छात्रा थीं और उनका किसी लड़के से कोई संबंध भी नहीं था क्योंकि ख़ासकर इस उम्र में आत्महत्या का यह एक बड़ा कारण होता है। उनकी मौत ने मेरी ज़िंदगी में एक शून्य पैदा कर दिया जिसने मुझे मनोचिकित्सा पढ़ने को प्रेरित किया और मैंने आत्महत्या की कोशिश करने वाले लोगों की मदद करना अपनी ज़िंदगी का मिशन बना लिया। ज़िंदगी एक तोहफ़ा है, अंकिता। हमें इसे बर्बाद नहीं करना चाहिए। हमें दूसरों को मारने का कोई अधिकार नहीं है। तो फिर तुम्हें अपनी जान लेने का अधिकार कैसे हो सकता है?” उन्होंने कहा, और ऐसा कहते-कहते उनका लहजा बहुत नर्म हो गया था।

मेरी समझ में नहीं आया क्या कहूं।

“मुझे यह सुनकर दुख हुआ, डॉक्टर,” आख़िरकार मैंने कहा।

“ओह, नहीं, नहीं। प्लीज़ दुखी मत हो। इसने मुझे शक्ति ही दी और आज मैं प्रमुख डॉक्टरों में से एक हूं। मैंने अपनी ज़िंदगी बना ली है। मैं चाहता हूं तुम अपनी ज़िंदगी के बारे में सोचो। सब कुछ सिर्फ़ इसलिए ख़त्म नहीं हो गया कि तुमने एमबीए ड्रॉप कर दिया है। यह ज़िंदगी का अंतिम उद्देश्य नहीं है। तुम अब भी अपनी ज़िंदगी में दूसरी चीज़ें कर सकती हो, अंकिता,” वे बोले।

यह पहला मौक़ा था जब ऐसा कोई विकल्प मेरे दिमाग़ में आया था। अभी तक तो मेरे माता-पिता ने यही उम्मीद लगा रखी थी कि मैं वापस

जाकर अपना कोर्स पूरा करूंगी। मैं जानती थी कि मैं वापस नहीं जाना चाहती। जब से मैं डिस्टर्ब हुई थी, मुझे अन्य विकल्पों का ख़्याल ही नहीं आया था। अब डॉ. मधुसूदन ने मुझे सोचने के लिए कुछ दे दिया था। यह एक बीज था जो उन्होंने बो दिया था और इसने जड़ पकड़ ली थी। कई महीनों बाद पहली बार मैंने भविष्य के बारे में सोचा था और यह सोचा था कि अगर मैं एमबीए पूरा न करूं तो और क्या कर सकती हूं। कई महीनों बाद पहली बार मेरे अंदर एक हल्की सी उम्मीद ने सिर उठाना शुरू किया था। यह दरवाज़े की एक महीन सी दरार में से मनमोहक ढंग से अंदर आ रही धूप की एक नन्ही सी किरण थी जिसने मुझे पूरी तरह अपनी गिरफ़्त में ले लिया था। मैं इसकी ओर बढ़ने को तैयार थी।

जब वे अगले दिन आए, तो मैंने खुलने और बोलने और अपने सबसे गहरे डरों को आवाज़ देने का फ़ैसला कर लिया था।

"डॉक्टर, मैंने आपकी बात के बारे में काफ़ी सोचा है," मैंने बात शुरू की।

उन्होंने उत्साहवर्धक ढंग से सिर हिलाया।

"बात यह है कि मुझे लगता है कि मैंने अपनी पढ़ने और समझने की क्षमता खो दी है। मैं पढ़ना चाहती हूं। वास्तव में पढ़ने की बहुत ज़्यादा इच्छा है। लेकिन मैं जो कुछ भी पढ़ती हूं वह मेरे दिमाग़ में नहीं टिकता। अब कुछ भी अर्थपूर्ण नहीं लगता, डॉक्टर। मैं जब भी कोई किताब खोलकर पढ़ने की कोशिश करती हूं, तो मुझे डर लगने लगता है। यहां मैं सुरक्षित महसूस करती हूं। मैं संतुष्ट हूं। मुझे बहुत डर लग रहा है कि यहां से मेरे डिस्चार्ज होने के बाद क्या होगा," मैंने कहा।

"अंकिता, तुम्हें सीधे तुम्हारे घर नहीं भेजा जाएगा। तुमने अभी अपना पहला कदम उठाया है। तुम अभी इंसान के सामने पेश आने वाली सबसे भयानक मानसिक कठिनाइयों में से एक से बाहर निकली हो। तुम अभी भी उबर रही हो। सप्ताह के अंत में, तुम्हें ऑक्युपेशनल थेरेपी खंड में भेजा जाएगा। हमारे पास एक विशाल खंड है जो कैंपस के दूसरे छोर पर है। अच्छा होगा कि तुम वहां कम से कम एक महीना रहो। हम तुम्हें एक ऐसे कार्यक्रम के अंतर्गत रखेंगे जो तुम्हारी बहुत मदद करेगा और मेरा विश्वास करो, बहुत जल्दी तुम्हें ये सब बस एक बुरे सपने सा लगने लगेगा," उन्होंने विश्वस्त करते हुए कहा।

"आप वहां राउंड पर आया करेंगे, डॉक्टर?" मैंने उनसे पूछा। उस समय मेरी बस यही एक चिंता थी। डॉ. मधुसूदन मेरी जीवनरेखा थे और मैं उनसे मिलना बंद नहीं करना चाहती थी।

"वहां दूसरे डॉक्टर इंचार्ज हैं। मैं इसी वार्ड की देखरेख करता हूं।"

ये शब्द सुनकर मेरा दिल बैठने लगा। मैं कल्पना नहीं कर पा रही थी कि उनसे बात किए बिना मैं पूरा दिन कैसे बिताऊंगी। शायद वे भी यह समझ गए।

“लेकिन यहां अपने राउंड पूरे करने के बाद मैं तुमसे नियमित रूप से मिलने के लिए आता रहूंगा,” उन्होंने कहा।

मेरे चेहरे पर मुस्कुराहट खिल आई। महीनों बाद यह पहला मौक़ा था जब मैं मुस्कुराई थी।

उस सप्ताह के अंत तक मुझे कैंपस के दूसरी ओर शिफ़्ट कर दिया गया जहां ऑक्युपेशनल थेरेपी खंड था, जिसे आमतौर पर ओ.टी। विंग कहा जाता था।

ओ.टी. विंग एक बिल्कुल ही भिन्न दुनिया सा लगता था। वहां मुझे अस्पताल जैसा जरा भी अहसास नहीं हो रहा था। वास्तव में, इस विंग से अस्पताल की बिल्डिंग दिखाई भी नहीं देती थी क्योंकि कैंपस अस्सी एकड़ से ज़्यादा क्षेत्र में फैला हुआ था और ओ.टी. विंग मुख्य अस्पताल से बहुत दूर था। यह औपनिवेशिक वास्तुकला में बनी एक विशाल बिल्डिंग थी, बिल्कुल किसी हॉलीडे होम या रिज़ॉर्ट जैसी। यह एक ही फ़्लोर में फैली हुई थी। इसके सामने की ओर ख़ूबसूरत बग़ीचे और साफ़-सुथरे लॉन थे। वहां की क्यारियों में गेंदा, अजेलिया, कुमुद और कई अन्य रंग-बिरंगे फूल खिले हुए थे। यहां एक खुशनुमा सा माहौल था, जो अस्पताल से बिल्कुल भिन्न था और पहली बार इसे देखने पर मुझे बड़ा अचंभा हुआ था। मुझे मेरे कमरे में ले जाया गया, जहां दो सिंगल बेड, एक डेस्क, एक कुर्सी थी और बाथरूम में एक आईना भी था। मेज पर स्टेशनरी थी, दो पेन और पेंसिलें थीं। मेज पर एक बहुत छोटा सा चीनी मिट्टी का गुलदान था जिसमें दो पीले फूल थे जिनके नाम मैं नहीं जानती थी। उन्होंने कमरे को खुशनुमा और माहौल को ख़ुशगवार बना दिया था। मेज़ पर एक चार्ट भी था जिस पर ‘रुटीन कार्यक्रम’ छपा हुआ था जो मेरे लिए बनाया गया था। इसमें लिखा हुआ थाः

नामः अंकिता शर्मा

डॉक्टरः मधुसूदन जयराम

रुटीनः

सवेरे 6.30	: उठना, ब्रश करना, तैयार होना
सवेरे 7.30	: सवेरे की टहल
सवेरे 8.30	: नाश्ता
सवेरे 10.00 से 11.00	: डॉक्टरों के राउंड। आपसे निवेदन है कि आप इस समय अपने कमरे में रहें।
11.00 से दोपहर 12.30	: मनोरंजन कक्ष
दोपहर 12.30 से 2.30	: लंच
दोपहर 2.30 से 4.30	: आराम। आप इस समय का उपयोग अपनी इच्छा से जो चाहें वह करने में कर सकती हैं
शाम 4.30 से 6.30	: बाग़बानी या आउटडोर खेलकूद
शाम 6.30 से 7.30	: मनोचिकित्सा
7.30 से रात 8.30	: पढ़ाई, मनोरंजन, आराम, योग
रात 8.30 से 9.45	: डिनर
रात 10.30	: सोने का समय

मैं एक सुनियोजित कार्यक्रम देखकर चकित रह गई। हफ़्तों के नाकारापन के बाद यह मेरे लिए एक झटके सा था, लेकिन इससे न तो मैं डिस्टर्ब हुई और न ही मुझे गुस्सा आया। बल्कि मुझे ख़ुशी हुई कि आख़िरकार मेरे पास करने को कुछ होगा। कुछ ऐसा होगा कि मुझे सोचना नहीं पड़ेगा कि मैं अपने ख़ाली समय का या अपनी ज़िंदगी के ख़ालीपन का क्या करूं।

मैं बस एक चीज़ को लेकर फ़िक्रमंद थी। मैं नहीं चाहती थी कि मेरे माता-पिता मुझसे मिलने आएं। मेरी अभी भी उनसे मिलने की इच्छा नहीं थी। मुझे लगता था कि अगर वे मुझसे मिलने आए तो नकारात्मकता और मेरे एमबीए पूरा करने की उनकी अनकही और सोई हुई उम्मीदें फिर से वापस आ जाएंगी। जब अटैंडेंट मुझे मेरे कमरे में पहुंचाने आया, तो मेरी यह चिंता ख़त्म हो गई क्योंकि उसने इसकी पुष्टि कर दी, "मैडम, आपने निवेदन किया है कि आपसे मिलने के लिए कोई नहीं आए?" उसने पूछा।

मैंने स्वीकृति में सिर हिला दिया।

फिर मुझे एक फ़ॉर्म पर साइन करना पड़ा जिसमें लिखा था कि मैं अभी किसी विज़िटर से नहीं मिलना चाहती। मैंने स्वेच्छा से उस पर

हस्ताक्षर किए और उम्मीद करने लगी कि मेरे माता-पिता इससे बुरा नहीं मानेंगे और इसे समझने की कोशिश करेंगे।

मुझे मेरे लिए बनाए गए इस 'रुटीन' में तुरंत ही डाल दिया गया। जब मुझे मेरे कमरे में लाया गया तो लगभग साढ़े दस बजे थे। मैं अभी अपने नए माहौल के साथ ठीक से मेल भी नहीं बिठा पाई थी कि अटैंडेंट आकर सारे दरवाज़ों पर खटखटाने लगा।

"ऊ... टी... ऊ... टी...। मनोरंजन कक्षं, मनोरंजन कक्ष," वह एक तान में चिल्लाता हुआ मेरे कमरे समेत सभी दरवाज़ों पर दस्तक दे रहा था।

दूसरे कमरों में रहने वाले भी बाहर निकल आए थे। उनमें एक बहुत ही स्टाइलिश कपड़े पहने छरहरी सी औरत थी, जो छोटी स्कर्ट और स्टिलेटो पहने थी और बेहद ख़ूबसूरत थी। उसके नाख़ून बड़ी अच्छी तरह से संवरे हुए थे और उसका रंग लगभग पारभासी था। वह दूसरों की ओर नज़र उठाकर देखे बिना अटैंडेंट के पीछे चल दी। एक उलझी हुई दाढ़ी वाला लड़का था जो इतना कमज़ोर था कि बिल्कुल हड्डियों का ढांचा लगता था! वह कुर्ता पहने हुए था। एक अधेड़ उम्र का आदमी था जिसका वज़न थोड़ा ज़्यादा था और जो गंजा होने लगा था। एक बूढ़ी सी औरत थीं जो हारी हुई सी दिख रही थीं। गुप में दो ऐसे लड़के भी थे जो अच्छे कपड़े पहने हुए थे और बिल्कुल सामान्य दिख रहे थे। वे एक दूसरे से बातें कर रहे थे। हड्डियों के ढांचे जैसा लड़का बूढ़ी औरत से बातें कर रहा था। लगता था जैसे वे एक दूसरे को अच्छी तरह जानते थे। हम सभी अटेंडेंट के पीछे-पीछे मनोरंजन कक्ष को चले गए।

मनोरंजन कक्ष में बहुत सी तरह की गतिविधियां थीं। वहां स्क्रैबल था, शतरंज था, कैरम था। एक ओर टेबल टेनिस टेबल थी। आरामदेह सोफ़े थे। एक टीवी और वीडियो प्लेयर भी था। सारी नई मैगज़ीनें बड़े करीने से लगी हुई थीं। कमरे में एक ओर काग़ज़, क्रेयॉन और कला सामग्री थी। मैं इस सबको देखकर दंग रह गई। इस सबको देखकर कोई कह ही नहीं सकता था कि यह मानसिक स्वास्थ्य के ऐसे मरीज़ों की जगह है जो अभी उबर ही रहे हैं। हम सब बिल्कुल सही दिख रहे थे।

हम सब विभिन्न क़िस्म के लोग थे जिन्हें हालात ने एक जगह इकठ्ठा कर दिया था। दूसरे लोग अपनी-अपनी पसंद की गतिविधियों में लग गए थे। बूढ़ी महिला गहरे ब्राउन रंग का ऊन का गोला निकालकर ख़ामोशी से बुनाई करने लगीं। मैं सोचने लगी कि वे क्या बना रही हैं और किसके लिए।

ख़ूबसूरत औरत मैगज़ीनों की ओर गई और उसने पढ़ना शुरू कर दिया। बाक़ी सब भी विभिन्न खेलों और गतिविधियों में व्यस्त हो गए।

मैं अनिश्चित सी वहां खड़ी सोचती रही कि मैं क्या करूं। आख़िरकार मैं उस मेज़ की ओर खिंची चली गई जिस पर कला सामग्री थी।

मैंने काग़ज़ों, क्रेयॉन और पेंट को देखा, जो ब्रशों के साथ में रखे हुए थे। मैंने हिचकिचाते हुए उन्हें छुआ। ऐसा लग रहा था जैसे रंगों का इस्तेमाल किए मुझे महीनों हो चुके हैं। एक समय में वे मेरी ज़िंदगी का एक बेहद अहम भाग थे। अब मेरे अंदर एक धुंधली लेकिन कुछ जानी-पहचानी सी इच्छा सिर उठा रही थी। मुझे पहली बार झरना पेंट करने की ख़ुशी याद आने लगी। मुझे याद आने लगा कि पेंटिंग करते समय मैं कितना जीवंत सा महसूस करती थी। मुझे वे ख़ुशी भरे जज़्बात याद आने लगे जिनका मुझे अनुभव होता था। और सबसे बढ़कर, मुझे याद आने लगा कि मैं कभी कितनी हंसमुख, आशावान, संतुष्ट और ख़ुश थी। मैं वह सब वापस पाना चाहती थी। मैं इस मुर्दनी का अंत चाहती थी।

और अचानक मैं एक बार फिर से पेंट करना चाहती थी।

21

विश्वास में बहुत ताक़त है

फिर से पेंटब्रश को पकड़ना अजीब सा महसूस हो रहा था। मैं समझ नहीं पा रही थी कि क्या पेंट करूं। मैंने खिड़की के बाहर नज़र डाली और धूप में ख़ुशी-ख़ुशी सिर हिलाते फूलों की क़तारों को देखा। आख़िरकार मैंने यही पेंट कर दिया। यह उन फूलों का एक तुरंत अंकन था। लाल और पीले का छिड़काव। मैंने इसमें हरा भी जोड़ दिया। फिर मैंने हल्का नीला आसमान पेंट किया। मैं बड़ी तेजी और प्रचंडता से काम में लगी हुई थी। मैं इस तरह पेंट का इस्तेमाल कर रही थी जैसे मैंने पेंट पहले कभी देखा ही न हो। मैं अपनी तस्वीर में इतना खोई हुई थी कि मुझे पता ही नहीं चला कि लंच का समय हो चुका है। जब मैं पलटी तो मैंने उन दोनों लड़कों को देखा जिन्हें मैंने पहले देखा था! वे मेरे पीछे खड़े मेरी तस्वीर को देख रहे थे।

"अच्छी है," उनमें से लंबा वाला लड़का बोला।

दूसरे ने तारीफ़ में सिर हिलाया।

"शुक्रिया," मैंने किसी तरह कहा। मैं विश्वास से नहीं कह सकती थी कि मुझे अपने काम के लिए कोई दर्शक चाहिए थे या नहीं। मैंने अभी अपने कोकून से बाहर निकलना शुरू किया ही था और मैं किसी से बात नहीं करना चाहती थी। मैं उम्मीद कर रही थी कि वे मुझे अकेला छोड़ दें। लेकिन उन्होंने मेरे आभार की बात करने का संकेत समझ लिया।

"हाइ। मैं सागर हूं," लंबा वाला बोला।

"और मैं अनुज हूं." दूसरे ने कहा।

"हाइ," मैं नज़रें मिलाने से बचती हुई बस इतना ही बोल सकी। मैं उम्मीद कर रही थी कि वे इशारे को समझ लेंगे और मुझे अकेला छोड़ देंगे। मैं तस्वीर को अंतिम स्वरूप देने का बहाना करने लगी। मैं अभी भी अपनी आंख के कोने से उन्हें देख सकती थी। वे हिल ही नहीं रहे थे।

"और तुम...?" सागर ने कहा।

"अंकिता," मैंने अपनी तस्वीर पर झुके-झुके कहा।

"लंच का समय हो गया है। हमें डाइनिंग हॉल जाना है," अनुज बोला।

मैं उनके साथ डाइनिंग हॉल चली गई।

मैंने थोड़े से चावल, थोड़ी रसे की और थोड़ी सूखी सब्जी ली। महीनों बाद यह पहला मौक़ा था जब मैं वाक़ई ध्यान दे रही थी कि मैं क्या खा रही

हूं। अभी तक मैं खाना बस इसलिए खा रही थी कि मुझे ज़िंदा रहना था। लेकिन अब मैंने सचमुच ध्यान दिया कि सब्ज़ियां वाक़ई स्वादिष्ट हैं। रसे की सब्ज़ी एकदम सुर्ख़ थी, लेकिन उतनी तीखी नहीं थी जितनी दिख रही थी। यह चटपटी और स्वादिष्ट थी। चावल बिल्कुल सही पके हुए थे। हल्के और फूले हुए। और मेरे मुंह में स्वर्ग का सा स्वाद दे रहे थे। या कम से कम मुझे ऐसा लग रहा था। ऐसा लगता था जैसे एक मुर्दा बहुत लंबे समय के बाद जीवित हो उठा हो और खाने का स्वाद ले रहा हो। मैंने एक कौर लिया और फिर कुछ सैकंड तक अपनी प्लेट में मौजूद खाने को देखती रही। फिर मैं अपने नए दोस्तों अनुज और सागर की टेबल पर चली गई जिन्होंने इशारे से मुझे अपने साथ खाने के लिए बुलाया था।

फिर हम फ़िल्मों और किताबों के बारे में बात करने लगे। सागर और अनुज पढ़ने के बेहद शौकीन थे और उन्होंने हमारी आयु समूह के लगभग हर व्यक्ति की तरह मेरी देखी हुई तमाम फ़िल्में देखी थीं। मैंने देखा कि मैं आसानी से बात कर पा रही हूं। किसी ने मुझसे यह नहीं पूछा कि मैं वहां क्यों हूं और मेरा अतीत क्या था। शायद यह वहां मौजूद सभी लोगों के बीच एक अनकहा सा समझौता था। मुझे यह अच्छा लगा। इससे मुझे सुरक्षा की भावना महसूस होने लगी। अगर वे कुरेदना शुरू कर देते, तो मुझे बहुत ख़राब लगता और मैं अपने खोल में चली जाती। लेकिन वे सहज और दोस्ताना थे और उनकी बातों और हंसी का भाग न बन पाना मुश्किल था।

बाद में अपने कमरे में मैं सोच रही थी कि वे ओ.टी. में क्यों थे। मुझे तो वे पूरी तरह समझदार और सामान्य लग रहे थे। ऐसा लगता ही नहीं था कि उनके साथ मानसिक स्वास्थ्य का कोई मुद्दा या कोई समस्या थी। वे दो सामान्य लड़के थे। अचानक मुझे लगा कि उन लोगों को भी ऐसा ही लगता होगा जो मुझे देखते होंगे।

और यह अहसास एक दिव्यप्रकाश जैसा था। इससे मुझे एक झटका सा लगा। मैं वाक़ई 'सामान्य' थी! अगर मैं 'सामान्य' बनी रहूं और दूसरे लोगों की तरह व्यवहार करूं, अगर मैं अपनी भावनाओं को छिपा लूं और ख़ूब मुस्कुराया करूं, भले ही मैं बुरी तरह निराश होऊं, तो कोई नहीं समझ पाएगा। मैंने उसी क्षण फ़ैसला कर लिया कि अगर 'सामान्य' होने का यही अर्थ है तो मैं अब के बाद से ऐसी ही रहूंगी। मैं चाहे जैसा भी महसूस करूं, इसे कभी ज़ाहिर नहीं होने दूँगी। मैं ऐसा दिखाऊंगी कि सब कुछ ठीक है। मैं अब पहले की तरह आत्मघाती महसूस नहीं करती थी। इसका कारण शायद लीथियम रही हो, या शायद ओ.टी. रुटीन। लेकिन मैं जानती थी कि मैं निश्चित रूप से पहले से बेहतर महसूस कर रही थी।

उस एकाकी कारावास की ठंडक से, जिसमें मैं फंसकर रह गई थी, इस 'सुरक्षित क्षेत्र' तक का रास्ता जिसमें मैं अब भी थी, बड़ा ही पथरीला

रहा था। यह किसी भी तरह आसान नहीं था। इसने लगभग मेरी जान ही ले ली थी। लेकिन वास्तविकता यह भी थी कि मैंने इसे पार कर लिया था और अब मैं यहां थी।

मुझे अनुज और सागर से पता चला कि शाम को साढ़े चार से साढ़े छह के निर्धारित समय में हम वॉलीबॉल, बास्केटबॉल या बैडमिंटन खेल सकते थे। अगर कोई खेलना नहीं चाहे, तो वह बाग़बानी कर सकता था। अगर आप बाग़बानी का विकल्प चुनेंगे, तो आपको ज़मीन का एक टुकड़ा दिया जाएगा और आप उसमें अपनी पसंद का कुछ बो सकते हैं। लेकिन अगर आप अकेले यह नहीं करना चाहें, तो आप बग़ीचे में पौधों की देखभाल कर सकते थे। बग़ीचा बेहद ख़ूबसूरत था।

मुझे फूलों को निहारना और पेंट करना अच्छा लगा था, लेकिन मुझे तुरंत महसूस हो गया कि मैं खेलने का विकल्प चुनूंगी। सागर ने खेलने के बजाय बाग़बानी के विकल्प को चुना था। अनुज बास्केटबॉल खेलता था और मैंने फैसला किया कि मैं उसके साथ खेलूंगी।

उस दिन शाम को अनुज के साथ खेलते हुए, मेरे शरीर की नस-नस ज़िंदगी से फड़कने लगी थी। अनुज आसानी से जीत गया। मैं हॉफ रही थी और उसका मुक़ाबला करने में मुझे कठिनाई हो रही थी। लेकिन, क्या मज़ा था! मैं पूरी जान लगाते हुए दौड़ रही थी, मेरे माथे पर पसीना बहने लगा था, और मैं ज़िंदगी से भरपूर महसूस कर रही थी। किसी भी क़िस्म की शारीरिक वरजिश किए मुझे अरसा बीत चुका था और एक्शन में वापस आने को मजबूर होने पर मेरी मांसपेशियां खिंच रही थीं और कराह रही थीं। मैं इसका भरपूर आनंद ले रही थी और खेलने की कोशिश में तमतमा रही थी। बाद में, बुरी तरह थके और पूरी तरह संतुष्ट हम कोर्ट के सख़्त सीमेंट के फ़र्श पर बैठ गए। मैंने अपने चेहरे से पसीना पोंछा और फिर एक प्लास्टिक की बोतल से ठंडा पानी पिया जो सागर अपनी बाग़बानी के बाद हमारे लिए लेकर आया था। पानी बिल्कुल अमृत सा महसूस हुआ।

“तुम दोनों के पास पसीने से भीगे इन कपड़ों से छुटकारा पाने और तैयार होने के लिए पंद्रह मिनट हैं,” सागर ने कहा।

“गेम इतना अच्छा था कि मैं भूल ही गया था कि हमें पीटी भी करनी है,” अनुज ने जवाब दिया।

जब सागर ने मुझसे पूछा कि क्या मुझे पता है कि मुझे कौन सा डॉक्टर मिला है, तब मेरी समझ में आया कि पीटी का मतलब साइकोथेरेपी था।

“मेरे ख़्याल से डॉ. मधुसूदन होंगे,” मैंने कहा। कम से कम मैं यही उम्मीद कर रही थी।

“आमतौर पर साइकोथेरेपी के लिए जूनियर डॉक्टर आते हैं। डॉ. मधुसूदन बहुत सीनियर हैं। मेरी तो अंजना थॉमस हैं। वे बहुत अच्छी हैं,” अनुज ने कहा।

“हां, बिल्कुल। हम सब यह बात जानते हैं!” सागर ने कहा और मैं मुस्कुराने लगी।

मुझे ध्यान आया कि हम साइकोथेरेपी और डॉक्टरों की बातें इस तरह कर रहे हैं जैसे कॉलेज में विषयों और प्रोफ़ेसरों की बातें किया करते थे।

साइकोथेरेपी सत्रों में आपको उस डॉक्टर से बात करनी होती थी जो आपको दिया गया है। मैं पागलों की तरह उम्मीद कर रही थी कि मुझे डॉ. मधुसूदन मिलेंगे। उन्होंने मुझसे वादा किया था कि वे आकर मुझसे मिलेंगे। मैं उम्मीद कर रही थी कि वे बहुत ज़्यादा व्यस्त नहीं होंगे और यह यंद रखेंगे। लेकिन मेरी उम्मीदें जल्द ही टूट गईं जब मुझे पता चला कि मुझे नमिता देशमुख नाम की एक जूनियर डॉक्टर दी गई थीं।

“हैलो, अंकिता। आओ, बैठो। मैं डॉ. नमिता हूं,” उन्होंने हंसमुख भाव से कहा और मैंने देखा कि उनकी मुस्कान उनकी आंखों तक पसरी हुई थी। वे साड़ी पहने हुए थीं और उनकी आवाज़ सुरीली थी। ऐसा लगता था कि वे दिल से मेरा स्वागत कर रही हैं लेकिन मैं बहुत सहज नहीं हो पा रही थी।

फिर मैंने मेज़ पर अपनी फ़ाइल देखी।

“अंकिता, मैं तुम्हें विश्वास दिलाना चाहती हूं कि तुम बहुत अच्छा कर रही हो और हम सब यहां तुम्हारी मदद करने के लिए हैं,” वे बोलीं।

मैंने सिर हिला दिया। मुझे यह सोचकर बुरा लग रहा था कि उन्होंने मेरी ज़िंदगी को देख लिया है। मुझे यह अच्छा नहीं लग रहा था कि मेरी ज़िंदगी के बारे में सब कुछ उन काग़ज़ात में लिखा था और वे इस बारे में सब कुछ जानती थीं। मुझे डॉ. मधुसूदन से इस बारे में बात करने में कोई दिक़्क़त नहीं थी, लेकिन मुझे लगा कि डॉ. नमिता को मेरी बीती ज़िंदगी की उन सारी घटनाओं के बारे में जानने का कोई हक़ नहीं था जिन्होंने मेरी ज़िंदगी को इस तरह बदल डाला था। ऐसा लगा जैसे उन्होंने मेरे मन को पढ़ लिया हो।

“डॉ. मधुसूदन को तुम्हारे केस में विशेष दिलचस्पी है और वे जल्दी ही यहां आएंगे। उन्होंने ही मुझे तुम्हारे साथ लगाया है, और मुझसे कहा है कि उनके आने तक मैं तुमसे बात करूं। अगर तुम नहीं चाहो तो बात करना ज़रूरी नहीं है। हम फ़िल्मों वग़ैरा या किसी भी ऐसी चीज़ के बारे में बात कर सकते हैं जिसमें तुम्हें रुचि हो।”

मैं समझ नहीं पा रही थी कि मेरी प्रतिक्रिया क्या होनी चाहिए। आख़िरकार मैंने कहा कि मैं डॉ. मधुसूदन का इंतज़ार करूंगी। हम ख़ामोशी से बैठे रहे और मुझे लगता है कि वे मुझसे भी ज़्यादा असहज हो रही थीं क्योंकि उन्हें समझ नहीं आ रहा था कि वे क्या करें।

डॉ. मधुसूदन लगभग दस मिनट बाद आ गए। उन्हें देखकर मेरी ख़ुशी का कोई ठिकाना न रहा।

“शुक्रिया, नमिता,” वे डॉ. नमिता को जाने के लिए कहते हुए बोले, और उनके जाते ही मुझे सुकून महसूस हुआ।

डॉ. मधुसूदन भी यह समझ गए थे।

“अंकिता, सारे डॉक्टर मदद करने के लिए प्रशिक्षण प्राप्त हैं। डॉ. नमिता बहुत मीठे स्वभाव की और दक्ष हैं। मैंने ख़ुद उन्हें तुम्हारे केस पर लगाया था। उन्होंने तुम्हारी फ़ाइल का बड़ी गहराई से अध्ययन किया है,” वे बोले।

“लेकिन डॉक्टर, मुझे इसी बात से तो परेशानी हो रही है!” मैंनेकहा।

“फ़ाइल में हर चीज़ गोपनीय है, अंकिता, और मैं तुम्हें विश्वास दिलाता हूं निज़ी जानकारी वाली फ़ाइलों तक सिर्फ़ उन्ही डॉक्टरों की पहुंच होगी जिन्हें केस पर लगाया गया है,” उन्होंने कहा।

इससे मुझे थोड़ा सा संतोष मिला।

फिर डॉ. मधुसूदन ने कहा कि मैं बहुत प्रतिभाशाली हूं और मेरे पास लिखने का बहुत अच्छा हुनर है। उन्होंने कहा कि मुझे इसको विकसित करना चाहिए। उन्होंने यह भी कहा कि मेरी पेंटिंग्स अच्छी हैं और मुझे इसे भी आगे बढ़ाना चाहिए।

मैं असमंजस में पड़ गई। डॉ. मधुसूदन को मेरे लेखन के बारे में कैसे पता चला? यह जानने का बस एक ही तरीक़ा था और मैंने उनसे पूछ लिया।

“अंकिता, तुमने अपनी दोस्त को जो बयालीस पन्ने की चिट्ठी लिखी थी, उससे हमें इसका अंदाज़ा हुआ। चिट्ठी में कुछ बेहतरीन पंक्तियां और श्रेष्ठ गद्य था। मैं माफ़ी चाहूंगा कि हमें उसे पूरा पढ़ना पड़ा। हमने तुम्हारी तस्वीरों का भी अध्ययन किया। वही जो तुमने पेंट की थीं,” डॉ. मधुसूदन ने कहा।

मैं चकरा गई थी। सुवी को लिखी मेरी चिट्ठी उन तक कैसे पहुंची? मेरी पेंटिंग्स इन्हें कहां से मिलीं? हे भगवान! उस चिट्ठी में तो मैंने अपना दिल खोलकर रख दिया था। वह चिट्ठी सुवी के अलावा किसी के लिए नहीं थी। वह मुझे ऐसे कैसे धोखा दे सकती है? मैं आहत, नाराज़ और चिढ़ी हुई थी

लेकिन फिर भी मुझे अपने अंदर तेज़ी से एक तरह का सुकून भी फैलता महसूस हो रहा था, क्योंकि अब ऐसा कुछ नहीं था जो मैं डॉ. मधुसूदन से छिपा सकती थी। मैं एक बड़े ही अजीब ढंग से आजाद सा महसूस कर रही थी। मेरे सारे रक्षा मोर्चे ढह चुके थे। मैं एकदम सामने थी और मुझ पर आसानी से आक्रमण किया जा सकता था, लेकिन फिर भी मैं पूरी तरह सुरक्षित महसूस कर रही थी।

"अंकिता, जब तुम मुंबई में थीं, तो तुम्हारे पिता तुम्हारे बर्ताव को लेकर बहुत चिंतित थे। आत्महत्या की कोशिशें किसी भी बाप की तरह उन्हें भी परेशान कर रही थीं। तुम्हारे पिता बहुत जुझारू आदमी हैं और उन्होंने तुम्हारी दोस्त सुवी से संपर्क किया। उन्होंने उसे पूरी बात बताई। उन्हें परिस्थिति की गंभीरता के बारे में उसे बहुत समझाना पड़ा। आख़िरकार उसने उन्हें उस चिट्ठी की एक फ़ोटोकॉपी भेजी जो तुमने उसे लिखी थी, और वह यहां तुम्हारी फ़ाइल में मौजूद है। उसी चिट्ठी ने सबसे पहले तुम्हारे बाइपोलर डिसऑर्डर की ओर मेरा ध्यान दिलाया। तुम्हारा केस कोई आम सीधा-सादा केस नहीं है, अंकिता। इसीलिए तुम्हारा इलाज करने वाले पिछले डॉक्टर कुछ समझ नहीं पाए थे।"

मैं ख़ामोशी से बैठी उनकी सारी बातों को आत्मसात करती रही। मैं कल्पना कर रही थी कि किस तरह चिट्ठी का विश्लेषण और चीरफाड़ की गई होगी। मैं सोच रही थी कि किस तरह डॉक्टरों ने चिट्ठी पर बातचीत की होगी और फिर मैडिकल शब्दावली का प्रयोग करते हुए एक मनोवैज्ञानिक विकार के पैटर्न ढूंढ़े होंगे। यह सोचते हुए मेरा जी मिचलाने लगा था। मैं अपमानित महसूस कर रही थी। मैं अंदर ही अंदर कुढ़ रही थी। लेकिन इसी चीरफाड़ ने उन्हें संकेत दिया था कि मेरे अंदर क्या चल रहा है। इसी ने उन्हें सही दिशा दिखाई थी और वे इसे नियंत्रित करके मुझे इसकी पकड़ से बाहर निकाल पाए थे। अब मैं उलझन में पड़ गई थी और मेरे सिर में विचार गोल-गोल घूम रहे थे।

डॉ. मधुसूदन फिर से समझ गए कि मैं क्या सोच रही हूं। शायद उनके अंदर वह दुर्लभ समझ और संवेदनशीलता थी या शायद उनकी मेरे साथ ऐसी घनिष्ठता बन चुकी थी। ऐसा लगता था जैसे वे ठीक-ठीक जानते हैं कि मैं क्या सोच या महसूस कर रही हूं।

"अंकिता, तुम्हें एक बात पता है? रचनात्मकता और बाइपोलर डिसऑर्डर का बड़ा नज़दीकी संबंध है। यह बड़ी अजीब बीमारी है। बहुत सी मशहूर ऐतिहासिक शख़्सियतों और कलाकारों में यह पाई गई है। लेकिन फिर भी उन्होंने भरपूर ज़िंदगी जी और समाज और दुनिया को बहुत कुछ दिया। देखो, तुम्हारे अंदर एक प्रतिभा है। बाइपोलर डिसऑर्डर वाले लोग बहुत ज़्यादा संवेदनशील होते हैं। साधारण लोगों से कहीं ज़्यादा। वे भावनाओं को बहुत ही गहरे और उग्र रूप से महसूस कर सकते

हैं। इससे वे दुनिया को एक बहुत भिन्न नज़रिए से देखते हैं। ऐसा नहीं है कि वे वास्तविकता से संबंध खो बैठते हैं। लेकिन अत्यंत गहन भावनाएं नई चीज़ों के सृजन में सामने आती हैं। वे अपनी भावनाएं लेखन या कला या अपने चुने हुए किसी भी क्षेत्र के माध्यम से प्रकट करते हैं। तुमने विंसेंट वान गो का नाम सुना है, अंकिता?" उन्होंने पूछा। उनकी आवाज़ नर्मी और चिंता से भरी हुई थी

बेशक मैंने विंसेंट वान गो का नाम सुना था। मैं उनके काम की प्रशंसक रही थी और पहली बार उनके काम को देखने पर मैं उसकी सरलता और गहनता से दंग रह गई थी। बल्कि जब मैं स्कूल में थी, तो मैंने स्कूल की लाइब्रेरी से कला की एक किताब ली थी और उनकी पेंटिंग्स की नक़ल करने की कोशिश की थी।

"हां, बिल्कुल, डॉक्टर, वे मेरे मनपसंद कलाकारों में से एक हैं" मैंने उस याद पर मुस्कुराते हुए खुशी से कहा।

"उन्हें भी बाइपोलर डिसऑर्डर था," डॉ. मधुसूदन ने कहा।

"ओह!" मैंने कहा। इस बात ने मुझे पूरी तरह हैरत में डाल दिया था। मुझे वान गो की निज़ी ज़िंदगी के बारे में कुछ भी पता नहीं था। जो पुस्तक मैंने लाइब्रेरी से ली थी उसमें ज़्यादातर उनकी पेंटिंग्स का संग्रह था और उनकी निज़ी ज़िंदगी के बारे में कुछ नहीं बताया गया था।

डॉ. मधुसूदन के शब्द ठीक निशाने पर लगे थे और अब मैं बहुत महत्वपूर्ण और विशेष महसूस कर रही थी।

"तीव्र भावनाओं के एक दौरे में वान गो ने अपना कान काट डाला था," डॉ. मधुसूदन ने कहा।

यह जानकारी भी मेरे लिए नई थी, लेकिन पलक झपकते ही यह मुझे बीमारी की दर्दनाक वास्तविकता में वापस ले आई।

अब मैं पूरी तरह से समझ सकती थी कि उन्होंने ऐसा क्यों किया होगा। वे असहाय महसूस कर रहे होंगे, एक भंवर में फंसे होंगे, ठीक उसी तरह जैसे एक पखवाड़े पहले मैं थी, जब अपनी भावनाओं पर मुझे ज़रा भी नियंत्रण नहीं था। मैं उनकी बेचारगी और पीड़ा के अहसास को महसूस कर सकती थी।

"अंकिता, यह एक चक्र में तुम्हारे साथ होगा। कभी तुम शिखर पर महसूस करोगी और कभी रसातल में। जब तुम अपना सर्वश्रेष्ठ सृजन कर रही थीं तब तुम शिखर पर थीं। फिर तुम रसातल में चली गईं जिसने लगभग तुम्हारी जान ही ले ली थी। यहां हमारा काम यह है कि हम तुम्हें इसे नियंत्रित करने में मदद कर रहे हैं, ताकि तुम ख़ुद इसे संभाल सको। यह इसके साथ तुम्हारा पहला मुक़ाबला था। भविष्य में भी ऐसा होता रह

सकता है और तुम्हें इसके लिए तैयार रहना होगा। हम यहां मौजूद हैं तुम्हारी मदद करने के लिए," डॉ. मधुसूदन ने कहा।

उनकी बातों की गंभीरता धीरे-धीरे जज़्ब हो रही थी और मेरे दिमाग़ में सूर्यास्त के बाद के अंधेरे की तरह फैलती जा रही थी। तब तक मैंने यह नहीं सोचा था कि मुझे इससे फिर से लड़ना पड़ सकता है। मुझे तो लगने लगा था कि सबसे बुरा समय ख़त्म हो चुका था।

फिर भी मुझे डॉ. मधुसूदन के शब्दों में एक अनकहा सा विश्वास था। मुझे लगा कि अगर वे कहते हैं कि मैं इसे संभाल सकती हूं, तो मैं इसे संभाल लूंगी। उन पर मुझे पूरा विश्वास था। कभी-कभी इंसान को बस एक मजबूत सहारे की ज़रूरत होती है, किसी ऐसे व्यक्ति की जिस पर आप आंख मूंदकर विश्वास कर सकें। कोई ऐसा जो आपको रास्ता दिखा सके, जो हर समय आपके लिए मौजूद हो, जो आपको कभी निराश न करे। मेरे लिए डॉ. मधुसूदन ऐसे ही व्यक्ति थे। उनकी मौजूदगी मुझे शांत करती थी। उनके शब्द मुझे आश्वस्त करते थे। मैं उन पर पूरा भरोसा करती थी।

"तुम बहुत बहादुर लड़की हो, अंकिता," उन्होंने मेरे हाथ को थपथपाते हुए कहा।

विश्वास एक विचित्र और शक्तिशाली चीज़ है और यह चमत्कार कर सकता है।

मुझे जल्द ही इसका अंदाज़ा होने वाला था।

22

एक बार में एक क़दम

अगली सुबह जब डॉक्टर अपने राउंड पर आए, तो डॉ. नमिता भी साथ आईं। उनके हाथ में एक बड़ा सा प्लास्टिक का बैग था। जब डॉक्टरों के सामान्य सवाल पूरे हो गए और वे जाने लगे तो डॉ. नमिता रुक गईं।

“यह तुम्हारे लिए है, अंकिता। डॉ. मधुसूदन ने मुझसे कहा था कि यह मैं तुम्हें दे दूं,” उन्होंने वह पैकेट मुझे देते हुए कहा। “उन्होंने मुझसे हर रोज़ तुम्हारे साथ ढाई से साढ़े चार बजे तक काम करने को भी कहा है। मैं तुमसे यहां दोपहर ठीक ढाई बजे मिला करूंगी,” उन्होंने जाते-जाते कहा।

उनके जाते ही मैंने पैकेट को खोल लिया। इसमें बच्चों की किताबें थीं। वे पुरानी लेकिन बिल्कुल अच्छी हालत में दिखती थीं। ज़्यादातर अंग्रेज़ी में अनूदित रूसी किताबें थीं जिनमें बड़े सुंदर चित्र थे। शीर्षक बहुत दिलचस्प थे और मैंने ऐसी किताबें पहले कभी नहीं देखी थीं।

एक किताब का शीर्षक था ‘अंदर की ओर से या बाहर की ओर से, अपना कोट पहनता है ग़लत ओर से।’

एक और किताब का शीर्षक था ‘बाबा यागा एवं अन्य कहानियां’।

एक तीसरी किताब एलेक्जैंडर रैस्किन की थी जिस पर लिखा था ‘जब डैडी बच्चे थे’।

‘माशा निकिफ़ोरोवा के दिन’ नाम की एक और किताब किशोरों के लिए थी। ब्रेर रैबिट और विनी द पू की भी किताबें थीं।

मैं यह देखकर हैरान थी कि डॉ. मधुसूदन ने मुझे ऐसी भिन्न और दुर्लभ किताबों का संग्रह भेजा था। मैं समझ नहीं पा रही थी कि इसका क्या अर्थ निकालूं कि तभी मेरी नज़र उनके लिखे संदेश पर पड़ी।

“एक बार में एक क़दम, अंकिता। हम वहां पहुंच रहे हैं!” उन्होंने काग़ज़ के एक छोटे से टुकड़े पर अपनी मकड़े जैसी लिखाई में लिखा था जो पूरे काग़ज़ पर फैली हुई थी।

मैं ख़ुद को किताबें खोलने से नहीं रोक सकी। पहली किताब खोलने पर मैंने जो पहली चीज़ देखी वह किसी बच्चे की लिखाई में ये शब्द थे “यह किताब मधुसूदन जयराम और विभा जयराम की है।” इसके नीचे केरल का एक पता था। स्पष्ट था कि ये किताबें डॉ. मधुसूदन के बचपन की थीं। मेरा ख़्याल था कि विभा उनकी बहन रही होगी क्योंकि दोनों का उपनाम और पता एक ही था। मुझे दुख होने लगा क्योंकि मैं उस छोटी

बच्ची की कल्पना करने लगी जिसने बहुत साल पहले इस किताब को अपने हाथों में लिया होगा। कौन सोच सकता था कि वह ख़ुद अपनी ज़िंदगी ख़त्म कर लेगी? पन्ना पलटते हुए मैं भावुक हो गई।

मैंने जो देखा उससे मेरी सांस ही थम गई। उसमें जो चित्र थे वे शानदार थे और मैंने ऐसे चित्र पहले कभी नहीं देखे थे! मैं हैरत से उन सुंदर और अनोखी तस्वीरों को देखती रही। तस्वीरें बारीकियों से भरी हुई थीं। रंग जीवंत थे। कुछ चित्र ब्लैक एंड व्हाइट थे और उनमें एक भयानक, मौत जैसा भाव था, वे सीधी और आड़ी रेखाओं में छायांकन थे। मैं उन चित्रों को देखने में इतना खो गई कि समय के गुज़रने का अहसास ही नहीं रहा। अटैंडेंट आवाज़ लगा रहा था कि मनोरंजन कक्ष का समय हो गया है। मैंने बड़ी मुश्किल से उन किताबों को अलग रखा।

मेरे पास उनके बारे में सोचने के लिए ज़्यादा समय नहीं था क्योंकि हमें मनोरंजन कक्ष जाना था। मैं अनुज और सागर के साथ वहां चली गई। मैंने एक और तस्वीर पेंट की। इस बार मैंने कमरे का सोफ़ा पेंट किया। मैंने उन महिला की भी तस्वीर बनाई जो बुनाई कर रही थीं। मैंने उनके चेहरे के नैन-नक़्श नहीं बनाए थे लेकिन वे जो कपड़े पहने हुए थीं और जिस अंदाज़ में बैठी हुई थीं उससे स्पष्ट था कि मैंने उनकी ही तस्वीर बनाई है। अनुज और सागर ने एक बार फिर पूरी कर्तव्यनिष्ठा के साथ तारीफ़ की।

“तुम इसमें अच्छी हो! अच्छा पेंट करती हो तुम!” सागर ने कहा।

ये दोनों मेरे अहं के लिए अच्छे थे! मुझे तारीफ़ सुनकर ख़ुशी होती थी।

मुझे पता ही नहीं चला कि कब लंच का समय भी गुज़र गया और कमरे में वापस जाने का समय हो गया।

जब मैं लंच से वापस आई तो डॉ. नमिता पहले ही कमरे में मौजूद थीं।

“हाइ, अंकिता,” वे खुलकर मुस्कुराते हुए बोलीं।

“हैलो, डॉक्टर,” मैंने जवाब दिया। डॉ. मधुसूदन से बात होने के बाद मैं डॉ. नमिता की ओर थोड़ा मित्रतापूर्ण महसूस कर रही थी।

“मुझे नमिता बोलो। डॉक्टर बड़ा औपचारिक सा लगता है,” वे मुस्कुराईं। उनकी इस बात ने जैसे मुझे जीत लिया और मैं मुस्कुराने लगी।

“अंकिता, मैं यहां पढ़ने-लिखने में तुम्हारी मदद करने आई हूं,” उन्होंने सपाट भाव से कहा। इस कथन द्वारा न तो मुझे आंका जा रहा था और न ही इसमें दया या श्रेष्ठता का भाव था। मुझे यह अच्छा लगा। मैं विश्वास से नहीं कह सकती थी कि उनके मन में क्या है लेकिन मुझे एक हल्का सा अंदाज़ा ज़रूर था कि डॉ. मधुसूदन ने वे किताबें क्यों भेजी हैं।

“तुम ये किताबें पढ़ सकीं,” नमिता ने पूछा।

“मैं अभी तक बस तस्वीरें देख सकी हूं। मैंने इन्हें पढ़ने की कोशिश नहीं की।”

“चलो कोशिश करते हैं। कोई भी एक चुन लो।”

मैंने किताबों को देखा। एक समय में मेरी डेस्क कोटलर और मैनेजमेंट की अन्य किताबों से भरी पड़ी थी। अब मेरे सामने बच्चों की किताबें थीं। बता पाना मुश्किल है कि मैं कैसा महसूस कर रही थी। एक समय में पढ़ाई और शब्द मेरे अस्तित्व का सत्व थे। मुझे अपनी याददाश्त और बुद्धि पर नाज़ था। अब ऐसा लगता था जैसे मैं वापस शून्य पर पहुंच गई हूं। जैसे मैं एक छह साल के बच्चे के स्तर पर पहुंच गई हूं जिसने अभी पढ़ना सीखा ही है। यहां से निकलने का कोई रास्ता नहीं था। डॉ. मधुसूदन को मुझ पर विश्वास था। मुझे उनके इन आश्वासनों से सुकून मिलता था कि मैं फिर से पहले जैसी हो जाऊंगी। मैं उन्हें निराश नहीं कर सकती थी। मैंने फ़ैसला कर लिया। अगर अपनी पढ़ने और समझने की क्षमताओं को वापस पाने के लिए मुझे बच्चों की किताबें पढ़नी हैं, तो मैं ये किताबें ज़रूर पढ़ूंगी। मुझे कहीं न कहीं से तो शुरुआत करनी ही थी।

“ठीक है,” मैंने कहा और मैंने *माशा निकिफ़ोरोवा* के दिन उठा ली।

“मैं इस कमरे के लिए एक कुर्सी और मंगवा लेती हूं ताकि हम मेज़ पर बैठ सकें,” डॉ. नमिता ने कहा और अटैंडेंट की आवाज़ देकर एक कुर्सी लाने को कहा। वह तुरंत ही लकड़ी की एक कुर्सी लेकर आ गया।

डॉ. नमिता ने मेज़ को दीवार से हटाकर अपनी ओर खींचा और अपनी कुर्सी मेज़ के दूसरी ओर लगा ली। फिर उन्होंने इशारे से मुझे बैठने को कहा। यह लगभग ऐसा था जैसे कोई ट्यूटर अपनी एकमात्र छात्रा के साथ हो।

मैंने किताब खोली और पहली पंक्तियां पढ़ीं।

“मैं आज अपनी डायरी शुरू कर रही हूं। दरअसल मैंने डायरी शुरू करने के बारे में बहुत पहले फ़ैसला किया था, एक महीना पहले, या शायद उससे भी पहले। आज मुझे बीस कोपेक मिले थे। यह सिक्का फुटपाथ पर पड़ा था, और उसके पास कोई नहीं था।”

लेकिन दूसरे वाक्य के अंत तक पहुंचते-पहुंचते मुझे याद ही नहीं रहा था कि पहला वाक्य क्या था। मैं पढ़ रही थी लेकिन इसका मतलब समझे बिना। मैंने वापस जाकर फिर से पहला वाक्य पढ़ा। फिर दूसरा वाक्य दोबारा पढ़ा। लेकिन शब्द एक बार फिर मेरे दिमाग़ से उड़ गए और मैं कोई मायने, कोई मतलब समझने में या पैराग्राफ़ का अर्थ समझने में नाकाम रही। मेरी आंखों में हताशा के आंसू उबलने लगे।

मैं एक आम सा वाक्य पढ़कर समझ क्यों नहीं पा रही थी? क्या मेरी बाक़ी ज़िंदगी इसी तरह गुज़रेगी? मैं बच्चों की किताब तक भी क्यों नहीं समझ पा रही हूं?

मैंने किसी तरह अपने आंसू रोके और डॉ. नमिता से कहा, "मैं यह नहीं कर सकती। मैं आगे नहीं पढ़ पाऊंगी।"

"अंकिता, तुम्हें बस थोड़ी ज़्यादा कोशिश करनी होगी। चलो, एक बार फिर से पढ़ो," उन्होंने विनम्र लेकिन दृढ़ भाव से कहा।

मैंने फिर से कोशिश की। और फिर दोबारा कोशिश की। नतीजा वही ढाक के तीन पात। मेरी ध्यान-अवधि और एकाग्रता बुरी तरह प्रभावित हो चुकी थी। मैं बुरी तरह डर गई। क्या मेरा मस्तिष्क क्षतिग्रस्त हो गया। था? ऐसा क्यों हो रहा था?

मैं बार-बार वही दो वाक्य पढ़ रही थी, उनका अर्थ समझने की कोशिश कर रही थी, और बुरी तरह नाकाम हो रही थी।

डॉ. नमिता मेरी हताशा और मेरे मन की पीड़ा को समझ रही थीं।

"ठीक है, अंकिता, एक काम करते हैं। मैं इमला बोलती हूं और तुम उसे लिखो, ठीक है?" उन्होंने कहा।

"हां," मैंने बड़ी मुश्किल से किसी तरह कहा।

डॉ. नमिता ने ब्रेर रैबिट वाली किताब चुनी। उन्होंने एक बार में दो शब्द की इमला बोलना शुरू की। मुझे उन्हें लिखने में कोई दिक़्क़त नहीं हुई। फिर उन्होंने अगले दो शब्द बोले। इस बार भी उन्हें समझने में मुझे कोई समस्या नहीं हुई। जब मैंने पूरा वाक्य लिख लिया, तो मैं उसका अर्थ समझ गई। हम इसी तरह ख़ामोशी से लगभग पैंतालीस मिनट तक काम करते रहे। मैंने पूरी किताब लिख ली थी।

आखिर डॉ. नमिता ने कहा कि आज के लिए इतना काफ़ी है।

"अंकिता, तुम पिछले कुछ महीनों में बहुत ज़्यादा तनाव में रही हो। घबराओ मत। तुम अच्छी प्रगति कर रही हो। मैं कल फिर आऊंगी," कहते हुए वे चली गईं।

उनके जाने के बाद मैं अपने लिखे हुए शब्दों को देखने लगी। और फिर मैं फूट-फूटकर रो पड़ी। मेरा शरीर उत्तेजना भरी सिसकियों से कांप रहा था। यह चीख़ मेरे कानों को मदद के लिए पुकारती आदिम चीख़ सी सुनाई दे रही थी। यह विशुद्ध पीड़ा और बेबसी की चीख़ थी। मैं दुखी थी कि मेरी यह हालत हो गई है कि अपने दिमाग़ में किसी जानकारी को रोककर रखने के लिए मुझे बच्चों की किताब से लिखना पड़ रहा है। कभी मुझे अपनी बुद्धि पर गर्व था। एमबीए कोर्स में आईटी परीक्षा में टॉप करने और उससे

पहले मैनेजमेंट की प्रवेश परीक्षाएं पास करने पर मैं कितना ख़ुश थी। मैं तुलना करने लगी कि कभी मैं क्या थी और अब मैं क्या रह गई हूं और मेरे आंसू बहते रहे। धीरे-धीरे मेरी सुबकियां धीमी पड़ने लगीं। जब मैंने अटैंडेंट को आउटडोर समय के लिए पुकारते और दरवाज़े पर दस्तक देते सुना, तो मैंने उठकर अपना मुंह धोया।

अनुज और सागर ने मुझे एक नज़र देखा और मैं जान गई कि उन्होंने मेरी सूजी हुई सुर्ख़ आंखें देख ली हैं।

मुझे लगता है कि एक मानसिक स्वास्थ्य संस्था में रहने से आप दूसरों के प्रति पहले की तुलना में सौ गुणा ज़्यादा संवेदनशील हो जाते हैं। आप भावनाओं की कद्र करना सीख जाते हैं। आप दूसरों की चिंता करना सीख जाते हैं। आप सचमुच चिंता करना सीख जाते हैं। और सबसे बढ़कर यह कि आप उन चीज़ों पर ध्यान देना सीख जाते हैं जो दूसरे लोग आपको नहीं बताते हैं।

मैं चकित रह गई जब अनुज ने अपना हाथ मेरे कंधे पर कहा और बड़ी विनम्रता से नर्म आवाज़ में कहा, “अपने साथ बहुत सख़्ती मत करो। सब ठीक हो जाएगा।”

मुझे डर था कि उसकी दयालुता के नतीजे में फिर से मेरे आंसुओं की बाढ़ उमड़ आएगी लेकिन मैं किसी तरह ख़ुद को रोकने में सफल रही।

“वहां उस आदमी को देख रही हो?” सागर ने एक लंबे, छरहरे, दाढ़ी वाले आदमी की ओर इशारा करते हुए कहा।

मैंने सिर हिला दिया।

“वह स्टैनफ़ोर्ड यूनिवर्सिटी की एकेडमिक काउसिंल में सीनेट का सदस्य था। यक़ीन कर सकती हो? इसकी पत्नी और एक छोटा बच्चा भी है। वे वीकएंड पर इससे मिलने आते हैं। इसे नर्वस ब्रेकडाउन हो गया था, और यह इसीलिए यहां है और इससे उबर रहा है,” वह बोला।

“और उस महिला को जानती हो तुम? वह जो हमेशा स्टाइलिश कपड़े पहने रहती है?” अनुज ने पूछा।

मैंने फिर से सिर हिलाया।

“उसे खाने का विकार था। उसके भी दो बच्चे हैं। उसका पति और बच्चे उसके ठीक होने का इंतज़ार कर रहे हैं। जब वे बच्चे इससे मिलने आते हैं, तो उनके चेहरों की ख़ुशी देखने लायक़ होती है। मैंने भी इसे सिर्फ़ उसी समय मुस्कुराते देखा है,” अनुज ने कहा।

“तुम ये सब कुछ कैसे जानते हो?” मैंने पूछा।

“हम यहां तुमसे बहुत पहले से हैं,” अनुज बोला।

उनकी बातों की वजह से मैं उनके प्रति बहुत कृतज्ञ महसूस कर रही थी। लेकिन इससे भी बढ़कर मुझे यह अच्छा लगा कि उन्होंने उनकी या मेरी तकलीफ़ को बहुत बढ़ा-चढ़ाकर नहीं बताया था। उन्होंने अपने बारे में बात नहीं की थी। न ही उन्होंने मुझे कुरेदने या मुझे यह अहसास दिलाने की कोशिश की थी कि मैं अपने बारे में बताऊं। वे मुझे ‘सब ठीक है’ महसूस करा रहे थे। मुझे यह बहुत अच्छा लगा। यह ऐसी भावना थी जो मुझे बहुत लंबे समय से महसूस नहीं हुई थी। मैं इसके लिए उन दोनों की आभारी थी।

इसके बाद वह रुटीन जारी रहा जो मेरे लिए बनाया गया था। ज़िंदगी की गाड़ी रेलवे कार्यक्रम द्वारा चालित ट्रेन की तरह पटरियों पर चल रही थी। साइकोथेरेपी का समय होने तक अनुज और मैं बास्केटबॉल खेलते रहे और सागर अपनी बाग़बानी करता रहा। इस बार साइकोथेरेपी के लिए डॉ. मधुसूदन आए थे। हमने पढ़ने की मेरी कोशिश के बारे में बात की। डॉ. मधुसूदन ने मेरी तारीफ़ की और कहा कि यह सही दिशा में उठाया गया एक छोटा सा क़दम था। उन्होंने मुझे और ज़्यादा कोशिश करने और हताश न होने के लिए प्रोत्साहित किया। उन्होंने कहा कि मेरे सिस्टम को बहुत तगड़ा झटका लगा था और कि मैं अपनी सारी योग्यताएं वापस पा लूंगी—बस मुझे इसके लिए मेहनत करनी होगी। मुझे ऐसा लग नहीं रहा था, लेकिन मैं बुरी तरह उम्मीद कर रही थी कि काश उनकी बात सही हो। वे मुझे आशा नाम का एक झुनझुना दे रहे थे और मैंने उसे कसकर पकड़ लिया था।

इसी तरह पूरे छह हफ़्ते बीत गए। मैं हर दिन बेहतर होती जा रही थी। छठे हफ़्ते के अंत में, मुझे अंदाज़ा हुआ कि अब मुझे पिछले वाक्यों को याद रखने के लिए किताब के अंश लिखने की ज़रूरत नहीं है। मेरी ख़ुशी का कोई ठिकाना न रहा। अगर कोई मुझसे कहता कि मैंने नेशनल लॉटरी जीत ली है, तो भी शायद मुझे इतनी ख़ुशी नहीं होती। यह वास्तव में पिछले बहुत लंबे समय में मेरे साथ सबसे अच्छी बात हुई थी।

मैंने एक ही बैठक में *माशा निकिफ़ोरोवा* को दिन शुरू से अंत तक पढ़ ली। मैं रुक ही नहीं पा रही थी! एक किताब को पूरा पढ़ने और अच्छी तरह से समझ लेने जैसी कोई खुशी मैंने इससे पहले कभी नहीं जानी थी। मुझे विश्वास ही नहीं हो रहा था! मन करता था कि मैं चिल्ला-चिल्लाकर सारी दुनिया को बताऊं और हर आने-जाने वाले से कहूं, “देखो, मैं पढ़ सकती हूं देखो, मैं याद रख सकती हूं!”

लेकिन मैंने अपनी भावनाओं को क़ाबू में रखा और ऐसा जाहिर किया जैसे यह मेरे लिए एक सामान्य सा दिन है। मेरे आनंद की गहराई और

ख़ुशी की सीमा को कोई नहीं समझ सकता था, जब तक कि वह ख़ुद उस सबसे न गुज़रा हो जिससे मैं गुज़री थी। मैंने अपने इस राज़ को अपने सीने में छिपा लिया और किताबों को इस तरह सहेज लिया जैसे कोई कंजूस अपना ख़ज़ाना सहेजता है। मैं बेताब थी कि बस मुझे एकांत मिले और मैं सारी किताबें पढ़ डालूं। मैं एक ऐसे प्यासे मुसाफिर की तरह थी जो मरीचिकाओं से छुटकारा पाकर आख़िरकार नख़लिस्तान तक पहुंच गया हो।

उस शाम मैंने यह ख़बर डॉ. मधुसूदन को दी। वे भी इसे सुनकर मेरी ही तरह ख़ुश हो गए।

"यह तो वाक़ई बड़ी अच्छी बात है, अंकिता! शाबाश!" वे बोले। फिर उन्होंने पूछा कि क्या मैं अपने माता-पिता से मिलने को तैयार हूं। वे कहने लगे कि मेरे माता-पिता अक्सर उनसे संपर्क करके मेरे बारे में पूछते रहते हैं। लेकिन मैं अभी भी तैयार नहीं थी। मैंने उनसे कहा कि अभी कुछ दिन और टाल दें। मैंने डॉ. मधुसूदन से यह भी पूछा कि क्या वे मेरे लिए और किताबें ला सकते हैं और इस बार मुझे बच्चों की किताबें नहीं चाहिए थीं।

"हां, मेरे पास किताबों का एक संग्रह है। मैं डॉ. नमिता के हाथ भिजवा दूंगा," उन्होंने वादा किया।

नियमित रूप से वरजिश और रुटीन ख़ामोशी के साथ मेरे वज़न को फ़ायदा पहुंचा रहा था। एक सवेरे जब मैंने आईना देखा तो मैं अपना चमकता रंग और शांत भाव देखकर हैरान रह गई। मैं बालों में कंघी करते-करते मुस्कुराने लगी। अचानक मुझे जीवित रहना अदभुत लगने लगा। और मैं कृतज्ञ महसूस करने लगी।

उस शाम अनुज और सागर ने मुझे एक उपहार दिया। मैं चकित रह गई और बहुत प्रभावित हुई।

"अवसर क्या है?" मैंने यह अंदाज़ा लगाने की कोशिश करते हुए पूछा कि उस अच्छी तरह से रैप किए हुए पैकेट के अंदर क्या है।

"दूसरों को अच्छा महसूस कराने के लिए किसी अवसर की ज़रूरत नहीं होती, अंकिता। ज़िंदगी एक जश्न है!" अनुज बोला।

"तुम तो नए दौर के किसी गुरु की तरह बात कर रहे हो। बस कुछ गेरुआ कपड़े और पहन लो," मैंने उसे छेड़ा।

लेकिन मैं मन ही मन उनकी इस कोशिश से ख़ुश थी। उनके तोहफ़े में दो कैसेट थे जो "दुनिया के महानतम प्रेमगीत" के पहला और दूसरा वॉल्यूम थे। सारे क्लासिक गीतों के अलावा कुछ बिल्कुल नए गाने भी थे। सारे ही गाने हल्के-फुल्के क़िस्म के थे।

“बहुत ख़ूब! शुक्रिया।” मैंने कहा।

“और तुम इन्हें आज ही रात को सुन सकती हो—टा-डा,” कहते हुए अनुज ने अपनी पीठ के पीछे से एक टेप रिकॉर्डर निकाला। “यह तोहफ़ा नहीं है! यह मैं बस तुम्हें उधार दे रहा हूं,” उसने जल्दी से स्पष्ट किया और मैं मुस्कुराने लगी।

उस रात मैं एल्विस प्रेस्ले की उदास आवाज़ में “आर यू लोनसम टुनाइट?” सुनते हुए नींद में डूब गई।

आर यू लोनसम टुनाइट?

डू यू मिस मी टुनाइट?

आर यू सॉरी वी ड्रिफ़्टेड अपार्ट?

उसकी आवाज़ ने कमरे की भर दिया और मेरा मन तेज़ी से उन यादों की ओर चला गया जब वैभव ने मेरे जन्मदिन पर “नथिंग्ज गोन्ना स्टॉप अस नाउ” बजाया था।

मैं यह सोचे बिना नहीं रह सकी कि मैं तब से कितना दूर निकल आई हूं और कितनी बड़ी हो चुकी हूं। लगता था जैसे एक पूरी ज़िंदगी बीत चुकी है।

ज़िंदगी बेशक अप्रत्याशित थी और यह सच था कि यह अचानक एक आकस्मिक मोड़ ले सकती है। उस रात नींद के आग़ोश में जाते हुए मैं ख़ामोशी से सोचती रही जबकि मेरा एक हाथ अपनी क़ीमती किताबों पर रखा हुआ था जिन्हें मैंने अपने तकिए के पास रखा हुआ था।

23

मेरा भाग्य मेरे हाथ में है

आख़िरकार, जाने का समय आ गया। मुझे ख़ुशी के साथ हल्की सी घबराहट का भी अहसास हो रहा था। मुझे ख़ुशी थी कि मेरी तकलीफ़ ख़त्म हो चुकी है और अब मैं 'आज़ाद' हूं। लेकिन मुझे उस दुनिया को छोड़कर जाते हुए बुरा लग रहा था जो पिछले कई सप्ताह से मेरा घर बनी हुई थी।

डॉ. मधुसूदन ने मुझे अच्छी तरह से तैयार किया था। उन्होंने कहा कि मैंने उल्लेखनीय प्रगति की है और यह सिर्फ़ मेरी मज़बूत इच्छाशक्ति और दृढ़ता के कारण संभव हो सका था कि मैंने इतनी तेज़ी से वापसी कर ली थी। मैं अभी भी लीथियम पर थी जो मुझे अगले दो महीने तक दिन में सिर्फ एक बार लेनी थी। उसके बाद के लिए उन्होंने कोर्स को धीरे-धीरे कम कर दिया था और मुझे यह अगले दो हफ़्ते तक हर दूसरे दिन लेनी थी। फिर हर तीसरे दिन। और आखिर में हफ़्ते में दो बार, फिर हफ़्ते में एक बार और फिर मैं इस लेना पूरी तरह बंद कर सकती थी।

डॉ. मधुसूदन ने कहा था कि दवाई बंद न करना मेरे लिए बहुत ही महत्वपूर्ण है। उन्होंने मुझे चेतावनी दी थी कि मैं अच्छा महसूस करूंगी और मुझे लगेगा कि अब मैं दवाई बंद कर सकती हूं। उन्होंने मुझे बहुत से लोगों के बारे में बताया जिनकी हालत सिर्फ़ इसलिए अचानक बिगड़ गई थी कि उन्होंने या तो दवाई लेना बंद कर दिया था या फिर बहुत जल्दी हार मान ली थी।

"और अंकिता, तुम्हारे अंदर लेखन और पेंटिंग की ज़बर्दस्त प्रतिभा है। इनके लिए कुछ करो। इन्हें बर्बाद मत करना। हर कोई प्रतिभावान नहीं होता। तुम हो और यह तुम्हारा सौभाग्य है," उन्होंने कहा।

"हा हा। हो सकता है मैं कभी कोई किताब लिख डालूं, डॉक्टर। और अगर लिखी, तो मैं आपके बारे में ज़रूर लिखूगी," उनकी तारीफ़ को दरकिनार करते हुए मैंने मज़ाक़ किया। मैं थोड़ी शर्मिंदा सी थी और मेरी समझ में नहीं आ रहा था कि अपनी तारीफ़ के जवाब में क्या प्रतिक्रिया दूं।

उन्होंने मेरी आंखों में देखा। "अगर तुमने ऐसा किया, तो मुझे तुम पर बहुत गर्व होगा, अंकिता," उन्होंने कहा।

मेरी समझ में नहीं आया कि क्या बोलूं, इसलिए मैंने जवाब में कुछ बेतुका सा बड़बड़ाते हुए किसी तरह धन्यवाद बोला।

फिर मैंने वह कार्ड निकाला जो मैंने पिछले दिन मनोरंजन कक्ष में उनके लिए बनाया था।

मैंने कार्ड के ऊपर एक जलती हुई लौ बनाई थी, जो चारों ओर एक नीलाभ लिए हरी सी रोशनी से घिरी हुई थी। अंदर मैंने लिखा था:

डॉ. मधुसूदन के लिए, जिन्होंने अपने कर्तव्य से आगे बढ़कर मदद की।

मुझ पर आपका बहुत बड़ा ऋण है। आपने मुझे जीवन का मूल्य सिखाया है, और आपने मुझे सिखाया है कि प्यार और समय इंसान को मिलने वाले सबसे बड़े तोहफ़े हैं। मैंने अपनी बनाई इन पेंटिंग्स में ढेर सारा समय और उससे भी कहीं ज्यादा प्यार डाला है। एक समय था जब मैं न तो पेंट कर सकती थी और न ही लिख सकती थी। अब मैं ये दोनों कर सकती हूं और ये मुझे अपनी ज़िंदगी से भी ज़्यादा प्रिय हैं। मेरा मानना है कि मेरी इस बात के मतलब को आप पूरी तरह समझ सकते हैं। मेरे लिए यह सबसे बड़ा तोहफ़ा है जो मैं किसी को दे सकती हूं। उम्मीद करती हूं आपको यह पसंद आएगा।

प्यार और हार्दिक सम्मान के साथ,

अंकिता

पिछले कुछ समय में मैंने जो पेंटिंग बनाई थीं, उनमें से मैंने सबसे अच्छी तीन को चुना था और उन्हें बड़ी सावधानी से पुराने अख़बारों में लपेटा था।

डॉ. मधुसूदन ने कार्ड को वहीं खोल लिया। उन्होंने पहले कार्ड को पढ़ा और फिर पेंटिंग्स को देखा। फिर वे उन्हें डेस्क पर फैलाकर देखने लगे।

वे काफ़ी देर तक ख़ामोश रहे। मैं देख सकती थी कि वे प्रभावित हुए हैं।

फिर उन्होंने एक गहरी सांस ली और बोले, "अंकिता, मैं इन्हें हमेशा अपने दिल के क़रीब रखूंगा। ये बहुत सुंदर हैं। शुक्रिया। मैं इन्हें फ़्रेम करके अपने ऑफ़िस की दीवारों पर लगाऊंगा। और मैं तुम्हें तुम्हारी ज़िंदगी के लिए शुभकामनाएं देता हूं। मेरी बात याद रखना, तुम बहुत आगे जाओगी।"

मैंने डॉ. नमिता के लिए भी एक कार्ड बनाया था। यह एक सामान्य सा थैंक यू कार्ड था जिस पर एक फूल बना हुआ था।

मैंने अनुज या सागर के लिए कार्ड नहीं बनाए थे बल्कि उन्हें अपनी पेंटिंग्स भेंट करने का फ़ैसला किया था। सागर के लिए मैंने दो तस्वीरें चुनी थीं जिनमें उसके वे प्रिय बग़ीचे दिखाए गए थे जिनमें काम करना उसे बेहद

पसंद था। अनुज के लिए मैंने एक पेंटिंग चुनी थी जिसमें बास्केटबॉल का कोर्ट दर्शाया गया था और एक अन्य पेंटिंग जिसमें वह बिल्डिंग दिखाई गई थी जो पिछले कई सप्ताह से हम सबके लिए घर बनी हुई थी।

वे मेरे तोहफ़ों से बहुत ख़ुश हुए।

“शुक्रिया, अंकिता,” सागर ने कहा और मुझे कसकर आलिंगनबद्ध कर लिया। उसने मुझे लगभग कुचल ही डाला था और जवाब में मैंने भी उसे गले से लगा लिया। मैं उस आलिंगन में उसके प्यार और उसकी सच्ची दोस्ती को समझ सकती थी।

“और मुझे गले नहीं लगाओगी? तुमसे गले मिलने का मौक़ा क्या सिर्फ़ इसी को मिलेगा?” अनुज ने नक़ली ग़ुस्से के साथ कहा।

मैंने हंसते हुए उसे भी गले से लगा लिया और उसके गाल को किस किया। एक पल को वह चकित रह गया और फिर उसने मुझे दोनों गालों पर किस कर लिया। फिर वह ज़ोर से हवा में उछला और अपनी मुट्ठी को लहराता हुआ “वू हू” चिल्लाया, और मैं उसकी हरकतों पर ख़ुशी से हंसती रही।

“वैसे, यह ठीक बात नहीं है,” सागर ने कहा।

“क्या? इसे किस करना?” मैंने हैरत से पूछा।

“नहीं, बुद्धू! तुम यंहा हमारे बाद आईं और हमसे पहले जा रही हो। अब हम तुम्हारे बिना क्या करेंगे?” सागर ने कहा।

“मुझे यक़ीन है तुम भी जल्दी ही चले जाओगे। या तुम चाहते हो कि मैं यहीं रुकी रहूं?” मैंने मज़ाक़ में पूछा। मेरा एक भाग अभी भी रुकना चाहता था।

“ऐसा मज़ाक़ में भी मत कहना,” अनुज बोला।

“पता है, अंकिता, जब लोग मज़ाक में कहते हैं कि काश उन्हें मानसिक स्वास्थ्य अस्पताल में दाख़िल करा दिया जाए या काश कि उन्हें वेलियम पर रखा जाए, तो मुझे मुस्कुराने के लिए भी बड़ी भारी कोशिश करनी पड़ती है,” सागर ने कहा।

मैं जानती थी वह क्या कह रहा है। मैं उम्मीद कर रही थी कि अनुज और सागर भी जल्दी ही वहां से चले जाएं। यह ऐसा विषय नहीं था जिस पर हम बात करना चाहते थे, इसलिए हमने इसे बदल दिया और हमेशा की तरह फ़िल्मों वग़ैरा की बातें करते रहे।

उस शाम हम बहुत देर तक बातें करते रहे। ऐसा लगता था जैसे हम चाह रहे हों कि ये बचे हुए क़ीमती घंटे कभी ख़त्म ही न हो।

आख़िर जब चलने का समय हुआ, तो मैंने फिर से उन दोनों को गले लगाया और उन्हें गुडबाइ कहा।

अगले दिन जब मेरे माता-पिता मुझे लेने के लिए आए, तो बारिश हो रही थी।

वे मनोरंजन कक्ष में इंतज़ार कर रहे थे। डॉ. मधुसूदन भी वहां मौजूद थे।

मेरे माता-पिता अचानक मुझे पहले से कहीं ज़्यादा बूढ़े लग रहे थे। यह बहुत ही भावुक क्षण था। हमारे परिवार में अपने प्यार को व्यक्त करने का बहुत ज़्यादा चलन नहीं था, इसलिए उनके गले लगने की बजाय मैं वहीं मूर्खों की तरह अपने पैरों की ओर देखती हुई खड़ी रही।

डॉ. मधुसूदन ने संक्षेप में फिर से लीथियम लेते रहने के महत्व को दोहराया। फिर उन्होंने मेरे पिता से फ़ोन पर संपर्क में रहने को कहा। मेरे माता-पिता भी इस व्यक्ति के प्रति दिल से उतने ही आभारी थे जितनी मैं थी। मेरे पिता ने संपर्क में रहने का वादा किया।

हम उसी दिन की फ़्लाइट से मुंबई वापस चले गए।

अब मेरे माता-पिता मेरी बहुत ज़्यादा चिंता और देखभाल कर रहे थे, जैसे मैं बहुत नाजुक होऊं। मुझे उनकी सेवा-टहल अच्छी तो लग रही थी, लेकिन हक़ीक़त यह थी कि अब मैं पहले से कहीं ज़्यादा मजबूत थी।

पहले मेरी महत्वाकांक्षा एमबीए पूरा करने और ख़ुद को कॉरपोरेट दुनिया में साबित करने की थी। लेकिन मेरे साथ जो कुछ हुआ था, उसके बाद अचानक मुझे यह सब अर्थहीन सा लगने लगा। मैं एमबीए में वापस जाने के विचार को ही सहन नहीं कर पा रही थी। कोर्स जॉइन करने से लेकर अब तक मैं कई मायनों में बहुत बड़ी हो चुकी थी। मैं अपने सहपाठियों और प्रोफ़ेसरों के बारे में सोचती। मैं किताबों और केस स्टडीज़ के बारे में सोचती। और मैं इन चीज़ों के बारे में जितना सोचती, ये मुझे उतनी ही अर्थहीन लगतीं। ऐसा लगता था जैसे मैं पहले ज़िंदगी को किसी कीहोल से देख रही थी और मुझे बस एमबीए नज़र आ रहा था। लेकिन अब सारा दरवाज़ा खुल गया था। मेरा नज़रिया काफ़ी हद तक बदल चुका था। ज़िंदगी के बारे में मेरे रवैये में बहुत बड़ा बदलाव आ चुका था।

डैड ने मुझे वापस जाने के लिए समझाने की भरसक कोशिश की। उन्होंने मुझे याद दिलाया कि वे उस साल की फ़ीस भी दे चुके हैं। मुझे इस पर दुख हुआ लेकिन मैंने कह दिया कि मैं वापस नहीं जाऊंगी। मैंने कोर्स से ड्रॉप करने का फ़ैसला कर लिया था। किसी बड़ी संस्था से एमबीए करना ही ज़िंदगी में सब कुछ नहीं था। जिंदगी कहीं ज़्यादा बड़ी थी। इन पिछले कुछ हफ़्तों में मैंने ज़िंदगी के मूल्य को जान लिया था।

मैं अपने माता-पिता को यह बात कैसे समझाती? उन्हें कैसे बताती कि मैं बदल चुकी हूं, बड़ी हो चुकी हूं? मैं जिन हालात से गुज़री थी वे उन्हें कैसे समझेंगे? बच्चों की किताबों तक की समझने के लिए उनका एक-एक पेज लिखने की पीड़ा उन्हें कैसे बताती? उन्हें कैसे बताती कि मैंने कितना बड़ा पहाड़ फतेह किया है? उन्हें कैसे बताती कि अब मैं अपनी पेंटिंग्स और पढ़ने व अपने शब्दों की क्षमता को किसी भी दूसरी चीज़ से ज़्यादा महत्व देती हूं?

मैंने डैड को बताया कि मैंने इस बारे में सोचा है और फ़ैसला कर लिया है। मैं दो महीने ख़ाली रहूंगी और फिर रचनात्मक लेखन के कोर्स में दाख़िला लूंगी। यह ऐसी चीज़ थी जिसमें मुझे हमेशा से रुचि रही थी। मेरी आगे पढ़ने की इच्छा ज़रूर थी लेकिन अब से मैं सिर्फ़ वही काम करूंगी जिनसे मुझे प्रसन्नता हो और जो मुझे ख़ुशी से भर दें।

मेरे माता-पिता समझ गए कि मैं बदल गई हूं और अब वे मेरे अंदर ताक़त को देख पा रहे थे। अब मुझे पूरा विश्वास था कि मुझे ज़िंदगी में क्या चाहिए। अपने चाहे काम नहीं करने के लिए ज़िंदगी बहुत क़ीमती थी। मैंने बॉम्बे यूनिवर्सिटी में पूछताछ की और उस कोर्स में दाख़िला ले लिया जो दो महीने में शुरू होने वाला था। यह एक साल का पोस्ट ग्रेजुएट डिप्लोमा था और इसमें किसी मीडिया हाउस के साथ एक प्रायोगिक कार्यकाल भी शामिल था। आप अपनी इच्छानुसार किसी अख़बार या मैग़ज़ीन के लिए लेख लिख सकते थे। यह मेरे लिए बड़ी उत्साहजनक बात थी क्योंकि इसका अर्थ था कि मेरे शब्द हज़ारों पाठकों तक पहुंचेंगे। दो महीने बाद मेरी दवाइयां भी पूरी तरह बंद हो जाएंगी। मुझे कोर्स के शुरू होने का बेताबी से इंतज़ार था।

मेरे माता-पिता ने बताया कि जब मैं अस्पताल में थी, तो वैभव का कई बार फोन आया था। उन्होंने उसे नहीं बताया था कि मैं अस्पताल में हूं। उन्होंने उससे कह दिया कि मुझे ब्रेक चाहिए था और इसलिए मैं अपने रिश्तेदारों के पास केरल गई हुई हूं। उसने कोई नंबर मांगा जिस पर वह मुझसे बात कर सके, तो मेरी मां ने कहा कि मैं गांव में हूं जहां फ़ोन नहीं हैं। मेरी रक्षा करना चाहने के लिए मुझे उन पर प्यार आ गया। अब मैं अपने माता-पिता को एक नई रोशनी में देख रही थी। मैंने उन्हें जो दुख-तकलीफें दी थीं, उनके लिए मुझे ख़ेद हो रहा था। मैं अब समझ सकती थी कि मुझे इस सबसे गुज़रते देखना उनके लिए कितना कठिन रहा होगा। लेकिन इसकी वजह से हम सभी पहले से ज़्यादा शक्तिशाली हो गए थे।

मेरे माता-पिता अब मेरे दोस्तों की ओर ज़्यादा खुले दिमाग़ से काम ले रहे थे। शायद उन्हें अहसास हो गया था कि मेरी जिंदगी में मेरे दोस्तों ने कितनी अहम भूमिका निभाई थी।

लेकिन हम इस बारे में बात नहीं करते थे। यह अनकहा था लेकिन हम इसे समझते थे।

अब बस एक काम बचा था। मुझे वैभव को लिखना था और अपनी लंबी ख़ामोशी का कारण समझाना था।

जब मैंने लिखने के लिए काग़ज़ और पेन निकाला और लिख पाने और ख़ुद को व्यक्त कर पाने की खुशी को आत्मसात करने के लिए कुछ क्षण को रुकी, तो मैं शक्तिशाली और विजयी सा महसूस कर रही थी। लेखन ऐसी चीज़ थी जिसे मैं पहले एक सामान्य सी चीज़ समझती थी। मैं इसके बारे में सोचती तक नहीं थी, लेकिन अब मैं हर शब्द को एक कीमती रत्न जैसा महत्व देने लगी थी।

मैंने एक सुंदर सा हैंडमेड काग़ज़ लिया और लिखना शुरू कर दिया।

डियरेस्ट वैभव,

मुझे तुम्हें कुछ लिखे हुए बहुत लंबा समय हो चुका है और मुझे विश्वास है कि तुम मेरी ओर से कुछ सुनने की उम्मीद छोड़ चुके होगे। मेरी मां ने बताया कि तुमने कई बार फ़ोन किया था। तुम्हारी फ़िक्र और चिंता के लिए शुक्रिया। इन पिछले कुछ महीनों में बहुत कुछ हो गया है। समझ में नहीं आता कहां से शुरू करु।

मैंने शायद अपनी पिछली चिट्ठी में तुम्हें अपने कोर्स के बारे में बताया था और यह भी कि मैं कितना अच्छा कर रही हू। लेकिन, मेरी ओर से ताज़ा ख़बर यह है कि मैंने एमबीए से ड्रॉप करने का फ़ैसला कर लिया है। हाँ—मैं तुम्हारे हैरान होने और क्यों पूछने की कल्पना कर सकती हू।

यह बड़ी लंबी कहानी है, वैभव। शायद तुम्हें समझाने के लिए मुझे तुमसे घंटों बात करनी पड़ेगी।

कभी-कभी हम पूरी तरह समझ नहीं पाते हैं कि हमारे पास क्या है जब तक कि हम उसे खो नहीं देते। मेरे साथ भी ऐसा ही हुआ है। एमबीए में दाख़िला हो जाने पर मुझे लगने लगा था कि मैं सबसे महान हूं। मुझे अपनी समझदारी और बौद्धिक क्षमता पर गर्व था। शायद अपने अहं में मैं ख़ुद को बहुत से ऐसे लोगों से श्रेष्ठ समझने लगी थी जो क्वालिफ़ाई नहीं कर पाए थे—कौन जाने! मुझे लगता था कि कॉरपोरेट कैरियर बना लेना ज़िंदगी में सबसे अहम चीज़ है। सीढ़ी पर चढ़ना, किसी ऊंची पोजीशन पर पहुंचना, आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर होना और ढेर सारे पैसों में लोटना, जो कैंपस प्लेसमेंट से आपको मिल सकता है

लेकिन वैभव, मैं अब कहीं ज्यादा समझदार हो चुकी हूं। मैं पहले जैसी आंखों में सितारे समेटी अंकिता नहीं रही हूं जिसने अपने कोर्स में फ़्रेशर्स

का इंडक्शन प्रोग्राम अटैंड किया था। मैं कई तरीक़ों से और कई ऐसे स्तरों पर बदल चुकी हूं जो मेरी समझ से कहीं ज़्यादा गहरे हैं।

मेरे पिछले कुछ सप्ताह एनएमएचआई में ऑक्युपेशनल थेरेपी में बीते हैं, मैं आत्महत्या की दो कोशिशों से बच गई हूं। मैं जहन्नम में जाकर वापस आई हूं और उससे भी बढ़कर यह कि मैं अपनी कहानी सुनाने के लिए जीवित हूं।

अगर तुम नहीं जानते हो, तो एनएमएचआई भारत में मानसिक स्वास्थ्य का सबसे अच्छा अस्पताल है। दुनिया भर से लोग वहां इलाज के लिए आते है। और आश्चर्य की बात यह है, वैभव, कि ओ.टी. विंग में बीते मेरे आख़री कुछ हफ़्ते मेरी ज़िंदगी के सबसे खुशी भरे हफ़्ते थे। ज़िंदगी में पहली बार मुझे ऐसा महसूस हुआ कि मैं अपने समय का सदुपयोग कर रही हूं।

मुझे नहीं लगता कि कोई भी तब तक यह समझ सकेगा कि मेरे साथ क्या हुआ था जब तक कि वह ख़ुद उस सबसे न गुज़रे जिससे मैं गुज़री थी। मैं बज़ाहिर एक 'समझदार, प्रतिभाशाली लड़की' थी जिसके साथ अचानक कुछ 'मानसिक स्वास्थ्य के मुद्दे' आ गए और फिर उसे ड्रॉप करना पड़ा। मैं जानती हूं कि दुनिया इसे इसी तरह देखेगी। लेकिन अब मुझे किसी बात की फ़िक्र नहीं है।

मानसिक संतुलन और असंतुलन के बीच बड़ी बारीक रेखा होती है। कौन फ़ैसला कर सकता है कि कोई असंतुलित है और बाक़ी 'सामान्य' हैं? अगर कोई व्यवहार के निर्धारित मानदंडों को न माने, तो समाज उसे सनकी, अजीब, पागल और झक्की कहने लगता है। क्या यह उचित है? मानसिक स्वास्थ्य से जुड़ी किसी भी चीज़ से एक कलंक सा जुड़ा है। इसके बारे में न जाने कितने डर हैं और न जाने कितनी ग़लतफ़हमियां हैं। मैं जानती हूं, क्योंकि मैं ख़ुद यह देख चुकी हूं।

वैभव, ओ.टी. विंग में रह चुकने के कारण मैं ज़िंदगी की ख़ूबसूरती को देख सकती हूं। मुझे लगता है कि हर दिन एक जश्न मनाने लायक़ तोहफ़ा है। अगर आप एक दिन न हंसें, अगर आपने किसी और के दिन को ज़्यादा ख़ुशगवार नहीं बनाया, अगर आपने अपने साथ हुई किसी अच्छी चीज़ की क़द्र नहीं की और अगर आपने जीवित होने के लिए शुक्रगुज़ार महसूस नहीं किया, तो आपने पृथ्वी पर अपनी ज़िंदगी का वह दिन बर्बाद कर दिया। काश मैं छतों से चिल्ला-चिल्लाकर ये सारी बातें कह सकती! काश मैं सड़क पर हर किसी को झिंझोड़-झिंझोड़कर यह कह सकती। लेकिन मैं ऐसा नहीं कर रही हूं क्योंकि मैं नहीं चाहती कि मुझे 'झक्की' कहा जाए। (आंख मारकर)

मैं पिछले कुछ महीनों में कुछ उल्लेखनीय लोगों से मिली हूं और मैंने कुछ बहुत अच्छे दोस्त बनाए हैं। मैंने बहुत कुछ सीखा है वैभव। बहुत कुछ। मैंने जाना है कि प्यार और विश्वास सचमुच चमत्कार कर सकते हैं। मैंने जाना है कि प्यार और दोस्ती में वाक़ई ताक़त होती है।

मैं जल्दी ही रचनात्मक लेखन का एक कोर्स जॉइन करूंगी। मैंने हमेशा से यही करना चाहा है।

काश मैं तुमसे संपर्क में रहने का वादा कर पाती। लेकिन हक़ीक़त यह है कि अब मुझे पता नही। मैं बड़े ही गहरे मायनों में बदल चुकी हूं और उस व्यक्ति से एकदम भिन्न हूं जिसे तुम जानते थे। अब तुम मुझे पहचान नहीं सकोगे। मैं अब वह लड़की नहीं रही हूं जिससे कभी तुम्हें प्यार हो गया था।

अपना ख़्याल रखना—और तुम हमेशा मेरे लिए बहुत अहम रहोगे। मैं तुम्हें कभी गुडबाइ नहीं कह सकती और इसलिए मैं बस इतना कहूंगी कि अगर तुम मुझे ख़त लिखोगे तो मैं तुम्हें जवाब दूंगी।

हमने जो समय साथ बिताए थे उनके लिए,

प्यार

अंकिता।

जब मैं वैभव को लिखी अपनी चिट्ठी पोस्ट करने के लिए लगभग उछलती हुई जा रही थी, तो मैं अपने दिल को गाते हुए महसूस कर सकती थी। मुझे ख़ुद पर गर्व था। रास्ते में मैं अभी-अभी खिले गुलदाऊदी के फूलों को निहारने के लिए रुक गई। मैं हवा में गहरी-गहरी सांसें लेने लगी। मैं उस सनसनी से अंदर तक उल्लसित थी।

और जब बारिश शुरू हुई, तो मैं खुशी से मुस्कुराने लगी! मुझे ज़मीन पर गिर रही हर बूंद प्यारी लग रही थी।

मैं ज़िंदा होने का जश्न मना रही थी और मेरे दिल में एक शक्तिशाली भावना थी कि यह जश्न जिंदगी भर जारी रहेगा।

उपसंहार

पंद्रह वर्ष बाद—आख़िरकार क्या हुआ

अंकिता ने आगे चलकर छह और शैक्षिक डिग्रियां प्राप्त कीं। ज्ञान के लिए उसकी प्यास अतृप्य थी। ऐसा लगता था जैसे उसका पढ़ना कभी पूरा ही नहीं होगा, जैसे उसकी शिक्षा कभी पूरी ही नहीं होगी। उसकी डिग्रियों में से एक कला थेरेपी में मास्टर्स डिग्री थी। इसी दौरान वह एक संवेदनशील आदमी से मिली, उससे प्यार करने लगी और फिर उसने उससे शादी कर ली। वह अच्छी तरह समझता था कि वह किन हालात से गुज़री थी और इस वजह से वह उसका और भी ज़्यादा सम्मान करता था। उनका एक चार साल का बच्चा है और वह अभी से कलात्मक प्रतिभा दिखा रहा है। अब वह बंगलौर में रहती है, और एक स्वतंत्र कला थेरेपिस्ट के रूप में स्कूलों के लिए काम करती है और कॉरपोरेट क्लायंट्स के लिए सैशन्स भी करती है। अपने बाइपोलर डिसऑर्डर को वह अपने बेहद मददगार पति और बहुत क़रीबी दोस्तों की मदद से बिना दवाई के संभालती है।

वैभव अमेरिका चला गया और उसने यूनिवर्सिटी ऑफ़ मैसाचुसेट्स से मास्टर्स डिग्री की और कंप्यूटर साइंस में मेजर किया। वह और अंकिता कुछ समय तक पत्राचार करते रहे लेकिन धीरे-धीरे उनका संपर्क टूट गया। वैभव अपने कोर्स में किसी से मिला और वे क़रीब आ गए और अब वह विवाहित है। आगे चलकर वैभव ने अपनी आईटी कंपनी स्थापित की और अब वह अच्छा कर रहा है और अमेरिका में ही बस गया है।

सुवी जिस बहुराष्ट्रीय कंपनी के लिए काम करती थी, आगे चलकर उसके बोर्ड ऑफ़ डाइरेक्टर्स में शामिल पहली महिला बनी। उसने अपने क्षेत्र में काफ़ी सफलता पाई और अब वह हमारे दौर के सबसे बड़े बिजनेस लीडरों में गिनी जाती है। वह अभी भी अविवाहित है और सही व्यक्ति के इंतज़ार में है।

डॉ. नमिता अब एनआईएमएच में ओ.टी. विंग की प्रमुख हैं। उन्हें अपने काम से प्यार है और दुनिया की किसी भी चीज़ के लिए वे इसे नहीं छोड़ना चाहतीं।

डॉ. मधुसूदन रिटायर हो चुके हैं। उन्होंने आगे चलकर केरल की पहली आत्महत्या हैल्पलाइन की स्थापना की। इसकी देखरेख उनके द्वारा चुने और प्रशिक्षित स्वयंसेवी करते हैं। अपनी स्थापना के बाद से यह सैकड़ों जानें बचा चुकी है।

सागर ने तमिलनाडु के कुन्नूर में अपना एक बड़ा डेयरी फ़ार्म खोल लिया है। इसमें एक बड़ा सा हॉलीडे रिज़ॉर्ट भी है जिसमें सुंदरता से तराशे हुए बग़ीचे हैं जिन्हें लोग बहुत पसंद करते हैं। उसने ईको-टूरिज़्म का प्रचलन शुरू किया जो बहुत सफल रहा और अपनी पहल के लिए उसे भारत सरकार से पुरस्कार भी मिला। वह शादीशुदा है और पिछले साल उसकी पत्नी ने जुड़वां बच्चों को जन्म दिया और अब वह दो प्यारे-प्यारे लड़कों का पिता है।

अनुज ने एक आउटडोर ट्रेकिंग कंपनी स्थापित की जिसकी विशेषता ट्रेकिंग हॉलिडेज में है। वह अक्सर सैलानियों के दलों के साथ पेरू, नेपाल और यूगांडा जैसे स्थानों पर जाता है। उसने शादी की थी लेकिन उसकी शादी कुल तीन साल चली। अब वह ख़ुद को आज़ाद मुसाफ़िर और मंगेतर-मुक्त कुंआरा कहता है।

छाया, जिग्ना, उदय और जोजेफ़ ने अपना एमबीए पूरा किया और अब बहुराष्ट्रीय कंपनियों में अच्छे पदों पर आसीन हैं।

लेखकीय टिप्पणी

यह एक कल्पित कहानी है लेकिन वास्तविक जीवन के कुछ अनुभवों पर आधारित है। मगर पहचान छिपाने के लिए सभी व्यक्तियों, संस्थाओं और कुछ अन्य चीज़ों के नाम बदल दिए गए हैं।

यह पुस्तक सिर्फ़ बाइपोलर डिसऑर्डर के बारे में ही नहीं है, यह साहस, दृढ़ निश्चय और परिपक्व होने की कहानी भी है। यह इस बारे में भी है कि किस तरह जीवन हमारे सोचे हुए रास्ते से बिल्कुल ही भिन्न रास्ता अपना सकता है, लेकिन फिर भी किस तरह इसमें भी सफलता पाई जा सकती है। यह आस्था, विश्वास और धैर्य की, और अपनी नियति ख़ुद बनाने की कहानी है।

मानसिक स्वास्थ्य से जुड़े मुद्दे आज भी एक वर्जना हैं, विशेषकर भारत में। पश्चिम में इस बारे में अधिक जागरूकता है और इसे 'सेलिब्रिटी विकार' तक का दर्जा दे दिया गया है क्योंकि कर्ट कोबेन, शिनीड ओकॉनर, मेल गिब्सन, एक्स्ल रोज़ और ऑज़ी ऑज़्बर्न, और इन जैसी कई अन्य हस्तियों ने इससे पीड़ित होना स्वीकार किया है। भारत में लोग अब भी इसके बारे में बात न करना पसंद करते हैं और अगर कोई इससे पीड़ित भी होता है, तो मानसिक स्वास्थ्य से जुड़ी अन्य चीज़ों की तरह ही इसे भी छिपाकर रखा जाता है।

बाइपोलर डिसऑर्डर मस्तिष्क का एक गंभीर विकार है जो मूड, ऊर्जा स्तर, व्यवहार और रोज़मर्रा के काम करने की क्षमता में नाटकीय बदलाव लाता रहता है। यह मूड के उन सामान्य बदलावों से बहुत भिन्न होता है जिसे अक्सर सभी लोग अनुभव करते हैं। यह आमतौर से किशोरावस्था के अंतिम या वयस्कता के शुरुआती दौर में होता है। इसके लक्षण बहुत गंभीर होते हैं और सामान्यतः इसकी पहचान करना मुश्किल होता है, क्योंकि यह पहचान पाना कठिन होता है कि इसकी शुरुआत कब हुई। इसके लक्षण अक्सर व्यक्तित्व के सामान्य बदलावों जैसे होते हैं जिन्हें इंसान अपनी रोज़ाना की जिंदगी में अनुभव करता है।

बाइपोलर डिसऑर्डर इतना ज़्यादा गंभीर हो सकता है कि इसका नतीजा रिश्तों में बिगाड़, व्यवसाय या शिक्षा में ख़राब प्रदर्शन और आत्महत्या तक हो सकता है। इसे रचनात्मकता से भी जोड़कर देखा गया है। इस विकार से पीड़ित लोग गहन भावनात्मक अवस्था का अनुभव करते हैं जिसमें 'हाई एपिसोड' नामक उन्मादी अवस्था और फिर 'लो एपिसोड' नामक अवसादी अवस्था का बारी-बारी से अनुभव होता है। उन्मादी अवस्था में व्यक्ति बहुत ज़्यादा प्रसन्न, ज़िंदादिल और उच्च ऊर्जा स्तर से भरा महसूस करता है। रचनात्मकता अपने पूरे चरम पर होती है।

उद्देश्यपूर्ण गतिविधियों में ज़बर्दस्त वृद्धि होती है और व्यक्ति आमतौर पर बहुत बेचैन रहता है और उसे नींद की बहुत कम आवश्यकता होती है। ऐसा व्यक्ति हर चीज़ के लिए बहुत ऊर्जावान, आशापूर्ण और उत्साहपूर्ण हो जाता है।

इसके विपरीत, अवसाद की अवस्था में एक ऐसी मूल्यहीनता या ख़ालीपन की तीव्र भावना मन में आ जाती है जिसका वर्णन करना कठिन होता है। व्यक्ति थका हुआ महसूस करता है और उसके लिए एकाग्रता बनाए रखना या चीज़ों को याद रखना या फ़ैसले ले पाना मुश्किल होने लगता है। सैक्स सहित अन्य ऐसी चीज़ों में भी रुचि कम होने लगती है जिनमें यह व्यक्ति कभी आनंद का अनुभव करता था। व्यक्ति अक्सर मौत के बारे में सोचने लगता है, और ऐसे में आत्महत्या के प्रयास असामान्य नहीं हैं।

बाइपोलर डिसऑर्डर के कई रूप हैं। अधिक जानकारी के लिए कृपया नेशनल इंस्टीट्यूट ऑफ़ मेंटल हैल्थ की वेबसाइट पर लॉग ऑन करें (वेबसाइटः http://www.nimh.nih.gov)। ऊपर दी गई जानकारी भी इसी वेबसाइट से ली गई जानकारी का संक्षिप्त रूप है।

केवल भारत और चीन में ही सवा से डेढ़ करोड़ लोग बाइपोलर डिसऑर्डर से पीड़ित हैं। (स्रोतः डिप्रेशन एंड बाइपोलर सपोर्ट एलायंस द्वारा उद्धृत बाइपोलर आंकड़े)

इस पुस्तक के माध्यम से मैं यह संदेश भी देना चाहती थी कि बाइपोलर डिसऑर्डर से पीड़ित होने का यह अर्थ नहीं है कि इससे पीड़ित व्यक्ति 'झक्की' या 'पागल' है, जैसा कि लोग बिना सोचे-समझे कह देते हैं। इस विकार का अर्थ यह नहीं है कि सब कुछ ख़त्म हो गया। इसे बहुत से तरीकों से क़ाबू किया जा सकता है और इससे प्रभावित लोग बहुत सकारात्मक और पूर्ण जीवन बिता सकते हैं।

लेखन अपने आप में एक अत्यंत गहन ओर एकाकी अनुभव है। पात्रों के चरित्र में घुसे बिना इस तरह की पुस्तक लिखना आसान नहीं था, जिसके कारण मैं अक्सर शारीरिक और भावनात्मक रूप से बुरी तरह थक जाती थी।

यह पुस्तक मेरे पति सतीश शेनॉय (जिन्हें मैं अपने सबसे क़रीबी दोस्तों में से एक मानती हूं) के सहयोग के बिना कभी नहीं लिखी जा सकती थी और उनसे विवाह होने के लिए मैं ख़ुद को सौभाग्यशाली मानती हूं। वे घर चलाने के व्यावहारिक पक्षों को पूरी तरह अपने हाथ में ले लेते थे, बच्चों की देखभाल करते थे और मुझे जगह और समय देते थे जिसके बिना मैं एक मां, पत्नी, लेखक और कलाकार की भूमिकाओं को एक साथ कभी पूरा नहीं कर पाती। जब वे अंत में पूरी पुस्तक पढ़ने के लिए बैठे, तो

मैं यह देखकर धन्य हो गई कि वे पुस्तक में पूरी तरह खो गए और स्वयं को इससे तब तक अलग नहीं कर सके जब तक कि उन्होंने एक ही बैठक में पूरी पुस्तक पढ़ नहीं ली। यह मेरे लिए एक बड़ी प्रशंसा थी क्योंकि आपके सबसे बड़े आलोचक आमतौर पर वही लोग होते हैं जो आपके सबसे निकट होते हैं।

मैं अपने सबसे क़रीबी मित्रों में से एक अजय चौहान की भूमिका का भी उल्लेख करना चाहूंगी, जिन्होंने मुझे बहुत ज़्यादा प्रोत्साहित किया। वे मुझे लगातार मेल भेजते और पूछते रहते थे कि मैं अगला अध्याय कब लिख रही हूं और वे आगे लिखने के लिए मुझे प्रेरित करते रहे। उन्होंने मुझे ऐसा महसूस कराया जैसे मैं दुनिया की सबसे महान लेखक हूं। मुझे जब भी उनकी ज़रूरत हुई, उन्होंने निरंतर मेरा साथ दिया, और वे आज भी मेरे एक मज़बूत, भरोसेमंद दोस्त हैं। मैं कृतज्ञ हूं और प्रसन्न हूं कि वे मेरी जिंदगी का हिस्सा हैं।

मेरी सबसे करीबी दोस्त चौरिसा कैस्टेलीनो की मदद अमूल्य साबित हुई क्योंकि वे बार-बार मेरे मसौदों को पढ़ती रहीं। मैं उनके बिना अपने जीवन की कल्पना नहीं कर सकती और वे मेरे लिए मेरा सबसे बड़ा भावनात्मक सहारा हैं।

एक और बहुत प्रिय मित्र मयंक मित्तल को भी बहुत, बहुत शुक्रिया जिनकी अनगिनत अंतरराष्ट्रीय कॉल्स मुझे प्रेरित करती रहीं। उन्हें अंदाज़ा भी नहीं है कि उन्होंने मेरी कितनी मदद की है।

मेरे अन्य सभी दोस्तों को भी शुक्रिया (आप जानते हैं कि आप कौन हैं)।

डॉ. अनुभव नरेश की फ़ोन कॉल्स और टैक्स्ट संदेशों, और उनकी मदद के लिए उनका विशेष धन्यवाद।

मेरे ब्लॉग-पाठकों को हार्दिक धन्यवाद जो मुझसे पूछते रहे कि मेरी अगली पुस्तक कब आ रही है और मुझसे कहते रहे कि वे उसे पढ़ने के लिए बेताब हैं।

और इस सबसे ज़्यादा शुक्रिया आप सभी का जिन्होंने मेरी पहली पुस्तक को एक राष्ट्रीय बैस्टसैलर बनाया—आपके प्रोत्साहन से मदद मिली।

मेरी मां को जो हमेशा मुझे समझती हैं और मेरे दो प्यारे बच्चों अतुल और पूर्वी को धन्यवाद, जो जब 'मम्मी को लिखने की ज़रूरत' होती है तो हमेशा सहयोग देते हैं।

और सृष्टि की टीम को भी बहुत धन्यवाद।

अगर आप इस पुस्तक से प्रेरित हुए हैं और आपने इसका आनंद लिया है, तो मैं समझूगी कि मेरा उद्देश्य पूरा हो गया।

जब दुनिया में प्यार, दोस्ती, स्वीकार्यता और उम्मीद हो तो यह निश्चित रूप से अच्छी जगह है। इन सबका साथ हो, तो आप निश्चित रूप से किसी भी चीज़ पर फ़तेह पा सकते हैं! नियति पर भी।

प्रीति शेनॉय